प्रस्तावना.

देखां ! इस बसारसंसारसं मोक्षकं वर्ष तथा सर्व मनोयत वन्नोष्ट सिद्धिद योगविषयमें हठविया है जो प्राणियों के हितार्थ योगिराज शिवजीने पार्वतीके प्रति महाकाल
योगशाखमें वर्णन की है, उसी इठवियाका सेवन करके ब्रह्माजी ब्रह्मपदको प्राप्त हुए
हैं, श्रीकुष्णचंद्रजीने गीतार्मे ब्रह्मत्को व्यार श्रीमद्भागवतमें उद्धवको उपदेश कियाहै,
शायः ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नारद, चाज्ञवल्क्य इन समीने इसका सेवन किया है,
सस्येन्द्रनाथ जीर गोरखनाथजीने प्रथम शिवजीसे इठयोग श्रवण किया, इन्हीं गोरखनाथजीकी कुपास स्वात्मारामयोगिन्द्रने सर्वः ग्रमुखुष्ठों मोक्षप्राप्त्यर्थ "इठयोगपदीपिका" नामक अन्य चार उपदेशोंमें राचित किया, प्रथमोपदेशमें यम, नियम सहित
इटका प्रथममाग जासन, द्वितीयोपदेशमें प्राणायामप्रकरण, उतीयोपदेशमें ग्रद्धारकः
रण, चतुर्योपदेशमें प्रत्याहारादिरुप समाधिकम वर्णन किये हैं, उक्त अन्य "ज्योरका"
नामक संस्कृतदीका सहित तथा सर्व ग्रमुखुर्वों के लाभार्थ इमने पं मिहिरचन्द्रजीके
द्वारा याथातथ्य माषाटीका भी कराकर स्वच्छतापूर्वक छापके प्रकाशित किया है।
जाशा है कि, सर्वसज्ञन इसके द्वारा इठयोगका रहस्य जानकर लाम उठावेंगे
व्यार इमारे परिश्रमको सफल करेंगे।

आपका कृपाकांक्षी− खे**मराज श्रीकृष्णदास,** अव्यक्ष "श्रीवेडन्टेश्वर" स्टॉम् वेस-सुम्बई-

अथ इठयोगमदीपिकाविषयानुक्रमणिका ।

विषय.	श्लोक.	7명.
अथ प्रथमोपदेशः १.		
१ मंगलाचरण	8	٤
२ गुरुनमस्कार मंगलाचरण	ą	3
३ हठयोगसे राजयोगसिद्धि	¥	8
ध (ज्ञानकी सातभूमि अर्थसहित) पंक्ति ६	23	77
५ हठविद्याकी श्वामा	8	Ę
६ महासिद्धनके नाम	9.	9
७ योगीनको भाषार हठ	80	8
८ इठविद्याकृं गोप्यपना	११	80
९ हठाभ्यासके योग्यदेश	. 65	63
१० मठळक्षण	8.5	१इ
११ मठमें कर्तव्यकर्म	88	१६
१२ योगाभ्यासके नाज्ञकर्ता	१५	80
१३ योगकी सिद्धिके कर्ता	१६	11
१४ यमनियम	(११२)	१।
१५ आसनप्रकरण	१७	27
१६ स्वस्तिकासन	१९	8
१७ गोष्ठखासन	20	٤.
१८ वीरासन	२१	37
१९ कूर्मासन	२२	33
२० वृतकुटासन	२३	21
२१ उत्तानकृमीसन	28	۶
२२ घनुरस्त	24	22
२३ मत्त्येद्रासन	२६	27
२४ मत्स्येन्द्रासनका फळ	20	ঽ
२५ पश्चिमतानासन	36	2
२६ पश्चिमतानासनका फल	28	Ş
२७ मयूरासन	30	3
२८ मयूरासनके गुण	३१	2
२९ प्रयोजनसाहित श्वासन	३२	3
३० सिद्धासनादि चार आसनेंकी श्रेष्ठता	\$ \$	31
३१ चार आसनीके नाम और सिद्धासनकी श्रेष्टता	₹ 8	2

विषयानुक्रमाणिका ।

विषय.	श्रोक.	पृष्ट.
३२ सिद्धासन	३५	२,३
३३ मतांतरका सिद्धासन	₹€	₹8
३४ सिडासनके पर्याय नाम	रुड़	73
३५ सिद्धासनकी श्राघा	\$9-8	२५
३६ पद्मासन	88	२७
३७ मत्स्येन्द्रनाथाभिमत पद्मासन	धद	72
३८ सिंहासन	40	śο
३९ महासन	45	\$6
४॰ हठाभ्यासका ऋम	५ ६	27
४१ योगीनको मिताहार	46	३२
४२ योगीनको अपन्य	49	\$ 3
४३ योगीनको पथ्य	६२	३५
४४ योगीनको भोजनानियम	६ ३	75
४५ सम्यासते सिद्धि	€8	27
४६ योगांगसनुष्ठानकी सनि	६७	३७
द्वितीघोपदेशः २.		
४७ श्राणायामप्रकरण	१	35
४८ प्राणायाम प्रयोजन	२	2)
४९ मळशुद्धिसे हुठयोगकी सिद्धि	8	şς
< मरुशुद्धिकर्त्ता प्राणायाम	Ę	:7
५१ मळ्शोधक प्राणायामका प्रकार	b	80
५२ प्राणायाममें विशेषता	٩	23
५३ प्राणायामका अवांतर फल	१०	કર
५४ प्राणायामके अभ्यासका काल जीर लंबाध	११	85
५५ उत्तम मध्यम कनिष्ट शाणायाम	१२	22
५६ श्राणायामते श्रस्तेद होनेमें विशेषता	83	86
५७ अभ्यासकारुमें दुःघादिनियम	88	27
५८ प्राणवायको शनैः २ वश करना	१५	8ફ
५९ यक्तायकको प्राणायामीके फरू	१६	27
६० नाडीशुद्धिके लक्षण	88	શક
६१ मेदके अधिक होनेमैं खपाय	28	37
६२ घोति आदि पट्कर्म	29	36
६३ षट्कमीका फर्ल	२३	33

विषय.	श्लोक.	पृष्ट.
६४ धौतिकर्म फलसहित	२४	86
६९ विस्तकर्म ग्रुणसिहित	२६	86
६६ नेतिकर्म गुणसहित	3,9	65
६७ त्राटककर्म गुणसाहित	३ १	93
६८ नौछिकमे गुणसहित	33	43
६९५ॅक्नेपाळमातिकर्म ग्रणसाहित	34	48
७॰ पट्कर्म प्राणायामके उपकारी	38	27
७१ मतांतरमें पट्कमें असंमत	30	77
७२ गजकरणी	36	99
७३ प्राणायामाभ्यासकी आवश्यकता	99	97
७४ वायु आदिकी अनुस्टलतॉम कार्लिनभैयता	80	27
७५ नाडीचकके शोधनसे सुखपूर्वक वायुका प्रवेश	65	95
७६ मनोन्मनी अवस्थाका छक्षण	હર	97
७७ विचित्र कुंभकोंका मुख्यफल	83	40
७८ कुंभकके भेद	. 88	99
७९ सर्व कुंभनकी साधारण ब्रक्ति	86	37
८० सूर्यमेदन ग्रणसहित	86	99
८१ (योगाभ्यासऋम)	33	23
८२ छन्नायी	98	६३
८३ सीत्कारी कंमक	48.	६५
८४ शीतकी गुणसहित	90	६६
८५ मखिका पद्मासनसहित	99	६७
८६ आमरीकुंमक	६८	৬१
८७ मूच्छीकुंम्क	. ६९	23
८८ प्छाविनीकुंभक	90	७३
८९ प्राणायामके भेद	७१	29
९० हठाभ्यासतें राजयोगप्राप्तिका प्रकार	<i>७७</i>	199
९१ हठयोगसिद्धिके रुक्षण	. 66	७६
वतीयोपदेशः ३.		
९२ केंडलाक सर्वयोगका आश्रय	٤	68
९२ कुंडलीके बोधका फल	. 8	22
९४ सुप्रनाके पर्यायनाचक नाम	8	· · · 66
१५ दश महासदा	Ę	196
९६ महासुद्राके फल	6	33

		, - ,
विपय	श्लोक.	पृष्ठ.
९७ (अष्टसिद्धिनके अर्थ) पंक्ति ८	6	96
९८ महामुद्रा	१०	90
९९ महामुद्राभ्यासकम	. १५	£ ?
९०० महामुद्रानके गुण	१६	63
१०१ महाबन्ध	88 .	63
१०२ महावेष	2,6	29
१०३ इन तीनोंमुद्रानका पृथक् साधन विशेष	\$6	-
१०४ स्टब्स्यरक्षणसहित खेचरी		60
१०५ सेचरीसाधन	9, ₹ 2, ₹	23
१०६ खेचरीके गुण	∮€ 48	66
२०७ गोमांस स्रोर समरवाहंणीका सर्थ	7°	90
१०८ अर्थसाहित डिंडियानबन्भ	99	63
१०९ मूलवन्ध		60
१९० मतांतरका मूलवन्ध	६१	66
१९१ मूलवन्धके गुण	Ę\$	800
११२ जालन्यरबन्य	६ ४	27
११३ जारुम्बरपदका सर्वे	Us .	१०३
१९४ जारू-४२५५मा स्थ १९४ जारू-४२३ गुण	७१	23
	৬২	१०३
११५ तीनी विन्यनका उपयोग	હ્ય	21
११६ देहका जराकरण	৬৬	१०४
११७ गणसहित विपरितकरणी	90	१०६
११८ फल्सहित वजोली	45	१०७
११९ वज्रोठीके अभ्यासमें उत्तरसाधन	<6	8 = 5
१२० वज्रोलीके गुण	66	११०
१२१ सहनोळी	65	385
१२२ अमरोली	46	885
१२३ ह्यानिकी वज्रोही साधन	80	385
१२४ स्त्रीनकी वज्रोठीके फल	200	27
१२५ कुण्डलीकरके मोक्षदार क्रिमेदन	१०४	११५
१२६ शक्तिचालन-(शक्तिचालनमुद्रा)	१११	११८
१२७ वन्द्रका स्थानस्यरूप	११३	21
१२८ राजयोगिवना आसनादिक व्यर्थ	१२६	655
१२९ मुद्रोपदेखा ग्रुस्की श्लाचा	१२१	853

्ठयोगमहोपिका-विषयानुकर्माणका ।

(0)

विषय.	श्लोक.	वेह
चतुर्योपदेशः ४.		
१३० मंगलाचरण	٩	650
१३१ समाधिकम्	ą	856
१३२ समाधिपर्यायवाचक शब्द	<u>ş</u> −8	856
१३३ राजयोगकी श्वाचा	-6	256
१३४ समाघिसिद्धीस् अमरोल्यादिक सिद्धि	88	838
१३५ हठाभ्यासविना ज्ञान और मोक्षकी सिद्धि नहीं	१५	632
१३६ प्राण और मनकी रूपरीति	१६	183
१३७ प्राणके लयसूं कालका जय	१७	૧૪૬
१३८ रूपका स्वरूप	\$8	१५१
१३९ ज्ञांभवीमुद्रा	३६	१५२
९४० छन्मनी सुद्रा	39	१९४
४१ डन्मनीविना और तिखेको उपाय नहीं	80	19
४२ उन्मनीभावनाळू कार्लनियमका अभाव	ઘ ર	१५६
१४३ खेचरी मुद्रा	83	१६७
१४४ मनके छयस्ं द्वेतकामी छयहै	Ę٥	१६३
१४५ नादानुसंघानहरूप मुख्योपाय	बृ ष्	१६५
८६ शांभवीकष्ठद्राकरके नादानसंघान	8,9	१६६
८७ पराङ्गुस्तिमुद्राकरके नादाह्यसंघान	६ ८	27
४८ नाइकी चार अवस्था	ĘS	१६७
४९ आरंभावस्था	190	33
५ ० घरावस्था	७२	366
९१ परिचयावस्था	108	१६९
५२ निष्पत्तिअवस्या	હફ	53
५३ प्रत्याहारादि ऋमकरके समाधि	63	909
५४ नानाप्रकारके नाद्	29	१७३
५५ उन्मनी अवस्थामं योगीकी स्थिति	१०६	860
९६ योगीनकू ही ज्ञानपाप्ति	888	828

. इति ह्ठयोगप्रदीपिकाविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

अथ हठयोगप्रदीपिका।

संस्कृतटीका-भाषाटीकासमेता।

->%0%

प्रथमोपदेशः १.

श्रीआदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै येनोपदिष्टा इठयोगविद्या ।ः विश्रानते प्रोन्नतराजयोगमारोडुमिन्छोरिधरोहिणीव ॥ ७ ॥

ग्ररुं नत्वा शिवं साक्षाह्रह्मानंदेन तन्यते ॥

हटप्रदीपिकाज्यात्स्ना योगमार्गप्रकााज्ञेका ॥ १ ॥ इदानीतनानां सुबोधार्थमस्याः सुविज्ञाय गोरक्षसिद्धांतहार्दम । मया मेहजाखिनसुख्याभियोगात्सुद्धं कथ्यतेऽत्यंतगृहोऽपि मावः ॥ २ ॥ मुमुक्षजनहितार्थे राजयोगद्वारा कैवल्यफलां हठप्रदीपिकां विधितसः परमकारुणिकः स्वातमारामयोगींद्रस्तरप्रत्युहनिवृत्तये हटचोगभवर्षकश्रीमदादिनायनमस्कारलक्षणं मंगरू वावदाचरति-श्रीआदिनायायेत्यादिना ॥ तस्मै श्रीआदिनायाय नमोऽस्त्वित्यन्वयः इः वाटिखासी नायस्य जादिनायः सर्वेश्वरः शिव इत्यर्थः । श्रीमान वाटिनायः तस्मैः श्रीबादिनायाय । श्रीशब्द बादिर्यस्य सः श्रीबादिः श्रीबादिश्रासौ नायश्र श्रीब्यान नायः तस्मै श्रीजादिनायाय । श्रीनायाय विष्णव इति वार्थः । श्रीजादिनायायेत्वज्ञ यणमायस्त 'अपि मार्च मर्च कुर्याच्छेदोभंगं त्यजेहिराम्' इतिच्छेदोपिदां संप्रदायाह -चारणसीष्टवाचीते वोध्यम् । वस्तुतस्तु असंहितपः उस्वीकारापेक्षया श्रीआदिनायाचेतिः पाठस्वीकारेऽ प्रवृत्तानित्यविष्युद्देश्यवावर्छद्कानाकांवत्वेन परिनिधितत्यसंभवात संग्र-त्युवाहतदृष्टांतद्वयस्यापीद्यविषयवेषम्याज्ञित्यसाहित्यमंगजनितदोषस्य शान्दिकानस्त्र मतत्वाचासंमृष्टविधेर्याशतारूपदोषस्य साहित्यकौररुक्तवेऽपि कचित्रापि स्वीकृतत्वेन्द्र शाब्दिकाचार्येरेकाजित्यादी कर्मधाग्यस्वीकारेण सर्वयानाहतत्वाच ठाधवातिश्य इति स्वियो विमावयातु । नमः प्रह्वीमावोडस्तु । प्रार्थनायां छोट् । तस्मै कस्मे इत्यपेक्षा-यामाह—यनेति । येन आदिनाथेन उपादेश 'गिरिजाये हठयोगविद्या हश्च ठश्च हठें। सर्वनंद्री तयोवींगो हठयोगः । एतेन हठशन्द्वाच्ययोः सूर्यनंद्राख्ययोः प्राणापान-चोरिक्यलक्षणः प्राणायामं हठयांग इति हठयोगस्य रुक्षणं सिद्धम् । तथा चोक्तं बोहसनाथेन सिद्धारिद्धांतपद्धती-"हकारः कीर्तितः सर्वष्ठकारश्चंद्र उच्यते । सर्वान्द्र-

्ट्रमसोयांगाह्वरयोगो निमयते ॥ " इति । तत्मित्वपादिका विद्या इट्योगिविया इट-योगशास्त्रमिति यावत् । गिरिजाये आदिनायकृतो हठवियोपदेशो महाकाल्योगशा-स्त्राद्वी प्रसिद्धः । प्रकर्षण उन्नतः प्रोन्नतः मंत्रयोगहरयोगादीनामधरसृमीनासृत्तरसृमि-त्याद्वाजयोगस्य प्रोन्नतत्वम् । राजयोगश्च सर्वदृत्तिनिरोधलक्षणोऽपंप्रज्ञातयोगः । तिम-च्छोर्सुप्रशोरिधरोहिणीव अधिरुहतेऽनयेत्यिधरोहिणी निःश्रेणीव विश्चाजते विशेषण भ्याजते शोभते । यथा प्रोन्नतसौधमारोहुनिच्छोरिधरोहिण्यनायासेन सौधमापिका अवति एवं इटदीपिकापि प्रोन्नतराजयोगमारोहुमिच्छोरनायासेन राजयोगप्रापिका मद-स्त्रीति । उपमालंकारः । इंद्रवज्ञाख्यं कृत्वम् ॥ १ ॥

नत्वा साम्बे ब्रह्मरूपं भाषायां योगवोधिका ॥ मया मिहिरचंद्रेण तन्यते हठद्रीपिका ॥ १ ॥

मोक्षक अभिलापी जनोंके हितार्थ राजयोगकेद्वाग मोक्ष है फल जिसका ऐसी हटयोग-अदीपिकाको रचतेहुये परमद्यासु स्वात्माराम योगीह गंथमें विव्रतिवृत्तिके स्थि इठयोगकी प्रमू-चिके कर्ता जो श्रीमान आदिनाय (शिव) जी हैं उनके नमस्कारूप मंगळको ग्रंबके प्रारं-अमें करते हैं कि, श्रीमान जो आदिनाय अर्थात सनातन स्वामी हिएनजी हैं उनको नमस्कार हो अथवा श्रीकान्द है आदिमें जिसके ऐसा जो नाय (विष्णु) वा श्री छद्भीसे यक्त जो नाय विष्णु हैं उनके अर्थ नमस्कार हो कदाचित कहा कि श्रीआदिनायाय इस पदमें श्रीकाञ्चके चैकारको यण्विभायक सूत्रसे यकार क्यों नहीं होता सी ठीक नहीं, क्योंकि छंदके ज्ञाताओंका यह संप्रज्ञय है कि, चाहे मापके स्थानमें भी मपपटको लिखे परंतु छंडका भंग न की न्त्रीर जन्नारण करनेमें भी सुगमता है इससे सूत्रसे प्राप्त भी यकार प्रथकारने नहीं किया सिद्धांत तो यह है कि, श्रीआदिनायाय इस पाठकी अपेक्षा श्रयादिनायाय यह पाठ छाघवसे उक्तहे क्यों के आदिनायाय इस पाठमें व्याकरणके किसी सूत्रकी प्राप्ति नहीं है इससे यह परिनिष्ठित (सिद्ध हुआ) हे और श्रीआदिनायाय इस पाठमें 'इकोयणाचि' इस सूत्रकी प्राप्तिकी जारा वनी रहतीहै-ओर जो वो ब्यान्त दिये हैं (माप मप-उज्जारणमें सुगमता) वे भी ऐसे विपयस विषम हैं अर्थात् सूत्रकी प्राप्तिको नहीं हटा सकते और व्याकरणज्ञास्त्रके ज्ञाता साहित्य (छंद) के भंगका जी दोप उसको नहीं मानते-और असंग्रुप्ट (शास्त्रसे व्यगुड़) विधानरूप दीप यद्यपि साहित्यके रचनेवाळीने कहाहि तथापि कहीं २ उन्होंने भी मानाह-और व्याकरणशास्त्रके साचार्याने (एकान्) इस पाठके स्थानमें कर्मधारय समास करके (एकान्) असंगृष्ट विधानको नहीं माना है-इससे श्यादिनायाय इस पाठ-महीं रायन है इस बातका शुद्धमान मनुष्य विचार करे-तात्पर्य यह है कि, उस आदिना-अको नमस्कारहै जिसने पार्वतीके प्रति हठयोगविद्याका उपदेश किया और जिसप्रकार शिव-जीने पार्वतिके प्रति हरुयोगका उपदेश किया है वह प्रकार महाकाल योगशास्त्रमें प्रसिद्धेहै क्षीर हरुयोगितिया शन्दका यह अर्थ है कि, ह (सूर्य) ठ (चंद्रमा) इन दोनोंका जो स्रोग (एकता) अर्थात सूर्यचंद्रमारूप जो प्राण अपान हैं उनकी एकतासे जो प्राणायाम

प्रणम्य श्रीग्रुहं नायं स्वात्मारामेण योगिना ॥ केवछं राजयोगाय इठविद्योपदिङ्यते ॥ २ ॥

एवं परमपुरुनमस्कारलक्षणं मंगळं कृत्व। विज्ञवाहुरथे मंगळवाहुरयस्याप्यपिक्षेत्र त्वात्स्वग्रु इनमस्कारात्मकं मंगळमाचरलस्य ग्रंथस्य विषयप्रयोजनादीन्मदर्शयाति—प्रणम्योति ॥ श्रीमंतं ग्रुरुं श्रीगुरुं नायं श्रीग्रुरुनायं स्वग्रुरुमिति यावतः । प्रणम्य प्रकर्णणं भाक्तिपूर्वकं नत्वा स्वात्मरामेण योगिना योगोऽस्यास्तीति तेन । केवळं राजयोगाय केवळं राजयोगार्थं इठाविद्योयािद्दश्यत इत्यन्वयः । इठाविद्याया राजयोग एव सुख्यं फळं न सिद्ध्य इति केवळयदस्यामिमायः । सिद्धयस्त्वासुर्वाविच्यः । एकेन राजयोगफळसाहितो इठ्योगोऽस्य ग्रंथस्य विषयः । राजयोगद्वारा केवल्यः चास्य फळम् । तत्कामध्याधिकागि । ग्रंथविष्ययोः प्रतिपाधप्रतिपादकमावः संबंधः । ग्रंथस्य केवल्यस्य च प्रयोज्यप्रयोजकमावः संबंधः । ग्रंथामिधेयस्य सफळयोगस्य केवल्यस्य च प्रयोज्यप्रयोजकमावः संवंधः । ग्रंथामिधेयस्य सफळयोगस्य च प्रयोज्यप्रयोजकमावः संवंधः । ग्रंथामिधियायस्य सफळयोगस्य च प्रयोज्यप्रयोजकमावः संवंधः । ग्रंथामिधिक्यस्य सफळयोगस्य च प्रयोजक्षायः संवंधः । ग्रंथामिधिक्यस्य सफळयोगस्य च प्रयोजक्यस्य च प्रयोजक्षायः संवंधः । ग्रंथामिधिकायः स्वयंधिकायः च प्रयोजक्षायः स्वयंधः । ग्रंथामिधिकायः स्वयंधायः स्वयंधः स्वयंधः स्वयंधः । ग्रंथामिधिकायः स्वयंधः स्वयंधः स्वयंधः स्वयंधः । ग्रंथामिधिक्यस्य सक्यस्य स्वयंधः स्वयंधः स्वयंधः स्वयंधः स्वयंधः स्वयंधः । ग्रंथामिधिकायः स्वयंधः स्

भाषार्थ-इस प्रकार परमगुरुको नमस्कार करके अधिक विश्वेंकी आशंकामें अधिकही मंग-छकी अपेक्षा होती है इस अभिप्रायसे अपने गुरुके नमस्कारकर मंगलको करते हुये ग्रंथ-कार ग्रंथके विषय, संबन्ध, प्रयोजन, अधिकारियोंको दिखाते हैं कि, श्रीमान जो अपने ग्रुक्ताय (स्वामा) हैं उनको मिक्कूर्वक नमस्कार करके स्वात्माराम नामका जो में थोगी हैं वह केवल राजयोगकी प्राप्तिके छिये हर्शवियाका उपदेश (कथन) करता हैं-अर्थात हर्शवियाका गुरूप फल केवल राजयोगही है सिद्धि नहीं है। क्योंकि सिद्धे तो स्वलंक विना प्रसंगतेही होजाती है। इससे यह सूचित किया कि, राजयोगाक्ष प्रकलाहित हरयोग इस ग्रंथका विषय है और जनयोगाद्धारा मोक्ष फल (प्रयोजन) है और फलका अभिलाधी अधिकारी है और प्रन्य और विषयका प्रतिपाद्यप्रतिपादकुमाव सम्बन्ध है अर्थात् ग्रंय विषय यका प्रतिपादक है और विषय प्रतिपाद्य है और ग्रन्थ और मोक्षका प्रयोज्य प्रयोजकमान. संबंध है क्योंकि प्रत्यभी हटयोगबेद्धारा मोक्षका कारण है, और अंथ और अभिवेय (विषये) फल योग और मोक्ष इनका साव्यसाधनमान मंबद है ये सब बात इस क्षेत्रकें कहीं है। भावार्थ-यह है कि, में म्यात्माराम योगी अपने श्रीग्रहनाथको भर्छाप्रकार नमस्कार करके केवल राजयोगके लिये हटविद्याका उपदेश करताहूं ॥ २ ॥

भ्रांत्या बहुमतध्याते राजयोगयजानताम् ॥ इठप्रदीपिकां घत्ते स्वात्मारामः कृपाकरः ॥ ३ ॥

मैत्रयोगसगुणध्याननिर्ग्रणध्यानमुद्रादिभिनेव राजयोगासिकी हठविद्योपदेशेनेत्याशंक्य ब्युत्थिताचेत्तानां मंत्रयोगादिमी हेईठयोगादेव राजयोगिसिद्धं वदन् अर्थं प्रातिज्ञानीते-भ्रांत्यिति गादिवहमतरूपे व्वांते गाढांधकारे या भ्रांतिर्भ्रमस्तया । तस्तिरुपायै राजयोगार्थ प्रव-चस्य तत्रतत्र तद्लामात् । वश्यति च 'विना राजयोगम्'इत्यादिना । तया राजयोगम् अजानतां न जानेवीत्यजानंवः वेपास अजाननां प्रेक्षां राजयोगजानमिति होपः । करी-वीति इतः क्रुपायाः इतः क्रपाहरः । क्रुपाया आकर इति वा । ताहराः । अनेन हट-मदीपिकाकरणे अज्ञानुकेरेव हेतुरित्युक्तम् । स्वात्मन्यामते इति स्वात्मागमः इटस्य इठयोगस्य प्रदीपिकेत प्रकाशकत्वात् इटप्रदीपिका तात् । अथवा इट एव मदीपिका राजयोगमकाशकःवात् । तां धत्ते विधत्ते करोतीति यावत् । स्वात्माराम इत्यनेन ज्ञानस्य सप्तमभूमिकां प्राप्ती ब्रह्मविद्वरिष्ट इत्युक्तम् । तथा च श्रुतिः-" आत्मकीड जात्मरातिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्टः' इति । सप्त भूमयश्रीका योगवासिष्टे-'ज्ञानमामः समेच्छाख्या प्रथमा ससुदाहता । विचारणा द्वितीया स्याचुर्वीया तनुमानसा ॥ सन्धापचिश्रद्वयीं स्याचतोऽसंसक्तिनाभिका । पग-याभाविनी षष्टी सप्तमी त्रवेगा स्ट्रता ॥' इति । अस्यार्थः । ग्रभेच्छा इत्याख्या यस्याः सा शुमेच्छाख्या । विवेकवराग्ययुता शमादिपूर्विका तीत्रसुनुक्षा प्रयमा ज्ञानस्य भूमिः मुमिका उदाहता कविता योगिमिरिति शेपः १ विचारणा श्रवणमननात्मिका हितीया ज्ञानभामः स्यात र । अनेकार्थप्रादकं मनो चदाऽनेकार्यान्धानवस्य सदेकार्यवृत्तिप्रवान हबद्रवाति तदा तनुमानसे यस्यां सा तनुमानसा निदिष्यःसनस्या तृतीया ज्ञानभूमिः स्यादिति शेषः रे । इमास्तितः साधनसूमिकाः। आसु मृतियु साधक इत्युच्यते । तिसामभूमिकाभिः शुद्धसन्बेंऽतः करणेऽहं ब्रह्माऽस्मीत्याकारिकाऽपराक्षवातिकपा सन्वाप-जिनामिका चतुर्थी ज्ञानसृभिः स्तात् । चतुर्थीयं फलसूमिः । अत्यां योगी इह्मविदि-त्युच्यते । इयं संप्रज्ञातयोगमूमिका ४ । वस्यमाणास्तिकोऽसंप्रज्ञातयोगमूमयः । सत्तावचरनंतरा सत्तावचिसंज्ञिकायां मूमाद्वपरियतासु सिद्धिपु असंसत्तस्यासंस-िक्तनाभिका पंचमी ज्ञानमृष्टिः स्यात् । यस्यां योगी स्वयमेव स्युत्तिष्ठते । एतां

सूमें प्राप्तो ब्रह्मविद्दर इत्सुच्यते ६ । परब्रह्मातिरिक्तमर्थं न भावयति यस्यां सा परार्थाभाविनी पष्टी ज्ञानसूमिः स्यात् । अस्यां योगी परप्रवोधित एव ब्रुष्टियतो भवित । एतां प्राप्तो ब्रह्मविद्दरीयानित्युच्यते ६ । द्वयंगा नाम सप्तमी भूमिः स्मृता । अस्यां योगी स्वतः परतो वा न ब्युत्थानं प्राप्तोति । एतां प्राप्तो ब्रह्मविद्दरिष्ट इत्सुच्यते तत्र प्रमाणसूता श्वतिरंशेवोक्ता । 'पृर्वभयमेव जीवन्युक्त इत्युच्यते, स एवात्र स्वात्मा-रामपदेनोक्तः' इत्युच्यते वहुकेन ॥ ३ ॥

नाषार्य-कदाचित् कहो कि. मंत्रयोग सगुणव्यान निर्गुणव्यान मुद्रा आदिसेही राजयोग सिंद्र होजायगा हुठयोगिविद्याके उपदेशका क्या फल है सो ठीक नहीं, क्योंकि जिनका चित्त त्र्युंस्थित (चंचल) है उनको मंत्रयोग खादिसे राजयोगकी सिद्धि नहीं होसकती इससे हठ-योगके द्वाराही राजयोगकी सिद्धिको कहते हुए अंथकार अंथके आरंभकी प्रतिज्ञा करते हैं कि मंत्रयोग आदि अनेक मतीका जो गाढ अंधकार उसके विपे अमसे राजयोगको जो नहीं जानते हैं उनकोभी राजयोगका ज्ञान जिससे हो ऐसी हठयोगप्रवीपिकाको कृपाके कर्ती (.द्रयाख्) स्वात्मारामयोगी अर्थात् अपने आत्मामें रमणकर्ता स्वात्माराम करते हैं अर्थात् हुउयोगके प्रकाशक प्रथका रहने हैं । अथवा राजयोगके प्रकाशक जो हट (सूर्य चन्द्र) **एन**के प्रकाशक प्रथको रचने हैं न्यात्मागम इस पदसे यह सूचित किया है कि, ज्ञानकी सात-वी भूमिकाको प्रात ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हे सोई इस श्रुतिमें लिखा है कि, आत्मामें है क्रीडा और रमण जिसका ऐसा जो कियाबाद है वह बद्धज्ञानियों में श्रेष्ट हे और सात मुमि योगवासि-ष्टमें कही हैं कि, हाभेच्छा १, दिचारण २, ततुमानसा ३, सत्त्वापत्ति ४, असंसक्ति ५, परार्थी-साविती ६, तुर्येगा ७ ये सात जानभूमि योगकी हैं इन सातोंमें छुभेच्छा है नाम जिसका लीर निनेक और नैराग्यसे युक्त और इस्मद्म आदि हैं पूर्व जिसके और तीव (प्रवल) है मीक्षकी इच्छा जिसमें ऐसी जानकी सामे प्रथम योगीजनीने कही है १-और अवण मनन आदिकूप विचारणा ज्ञान श्रे इसरी मुम्मे होती है २ अनेक विपयोंका माहक मन अनेक निपयोंको त्यागकर एक (बद्धा) विपयम ही जितके प्रवाहवाया होजाय ततु (सूक्ष्म) है मन जिसमें ऐसी दह निविद्यासनहार ततमानसा नामकी तीसरी भूमि होती है ३ ये तीन साघ-नस्मि,कहाती हैं; इन स्मियें में योगी साधक कहाता है। इन तीन समियोंसे शुद्ध हुये अंत:-करणमें में ब्रह्माई यह जो ब्रह्माकार अपरेक्ष (प्रत्यक्ष) इति है वह सत्त्वापति नामकी चौथी। सूमि कहाती है ४ इन चारोंसे लगळी जो तीन सुमि है ये असंप्रज्ञात योगसूमि कहाती हैं सत्त्वा पीतके अनंतर इसी सत्त्वापत्ति भूमिमें उपस्थित (प्रात) हुई जो सिद्धि हैं उनमें असंसक्त योगी-का असंसक्ति नामकी पांचर्वी ज्ञानश्रमि होती है । इस शुमिमें योगी स्वयंही व्युत्यित होता (उउता) है और वह ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ट कहाता है । ६ जिसमें पत्रहासे भिन्नकी भावना (विचार) न रहे वह परार्थाभाविनी नामकी छठी सुमि होती है इसमें योगी दूसरेके उठाने-सेही टउता है और ब्रह्मज्ञानियोंमें ब्रुपत श्रेष्ठ कहाता है इऔर जिसमें तृगिय पद्में योगी पहुँचनाय वह तुर्यगा नामकी सांतर्भी ज्ञानजूमि है इसमें योगी स्त्यं वा अन्य पुरुपसे नहीं उठता है इसमें प्रप्त हुआ योगी इन्न्यज्ञानियोंमें सत्यंत श्रेष्टसेभी उत्तम कहाताहै इसमें प्रमाणकर यह श्रुतिही.

कहीं है कि, पहिछी भूमियोंमें इसकोही जीवन्छक्ति कहते हैं और उसकोही इस सातवीं भूमि-में स्वात्माराम कहते हैं-इस प्रकार अधिक कहनेसे पूर्ण हुये अर्थात् अधिक नहीं कहते हैं। भावार्य यह है कि, अनेक मतींके कियोहण् अंधकारमें राजधागको जो नहीं जानसकते अनके लिये दयाके सम्बद्ध स्वात्माराम " हरुयोगप्रदीपिका" को करने हैं ॥ ३ ॥

हुउविद्यां हि मत्स्येंद्रगोरसाद्या विजानते ॥ स्वात्मारामोऽथवा योगी जानीते तत्त्रसादतः ॥ ७ ॥

महत्सेवितत्वाद्यठविद्यां प्रशंसन्स्यस्यापि महत्सकाशाद्यठविद्यालामाद्रीरवं द्योतयितः हठविद्यां होति ॥ होति प्रसिद्धम् । मत्त्येंद्रश्च गोरक्षश्च तो व्याची येपां ते मत्त्येंद्रगो॰ रक्षायाः आयश्चेतन जालंधरनायभर्तहरिगोपीचन्द्रप्रस्तयो ग्राह्याः । ते हठविद्यौ हठयोगविद्यां विजानते विशेषेण साधनलक्षणभेदफलैजीनंतीत्यर्थः । स्वात्मारामः स्वा॰ स्मारामनामा । अथवाज्ञव्हसमुखये । योगी योगवान् सत्यसादतः गोरक्षप्रसादाज्ञानीत इत्यन्वयः । परममहता ब्रह्मणापीय विद्या सेवितेत्यत्र योगियातवन्वयस्सृतिः-'हिर-ण्यामीं योगस्य बक्ता नान्यः पुरातनः । रहिते । बस्तृत्वं च मानसञ्यापारपूर्वकं भव-सीति मानसो न्यापारोऽर्थोदागमः । तथा च श्रुतिः-'यन्मनसा ध्यायति तदाचा बद्ति ' इति । मगवतेयं विद्या भागवतानुद्धवादीन् प्रत्युक्ता । शिवस्तु योगी प्रसिद्ध एव । एवं च सर्वोत्तमैत्रस्विष्णुशिवैः सेवितेयं विद्या । न च ब्रह्मस्त्रकृता व्यसिन योगी निराकृत इति श्रेकनीयम् । प्रकृतिस्वातेज्यविद्विमेद्र्।श्रामात्रस्य निराकरणात् । न तु मारनाविशेषरूपयोगस्य । भावनायाश्य सर्वेशंमतत्वाचां विना सुखस्य।प्यसंभवात् **ठयोकं** भगवद्गीतासु-⁴नास्ति द्वाद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य मावना । न चाभावयतः शांतिरशांतस्य कुतः मुखम् ॥ ['] इति । नारायणवीर्षेरप्युक्तम्-' स्वातंत्र्यसत्यत्वमुखेप-थाने सत्यं च चिद्धेदगतं चवावयैः।व्यासो निराचष्टन भावनारूपं योगं स्वयं निर्मितन्नहा सुत्रैः ॥व्यपि चातमपद्ं योर्गं व्याकरोन्मतिमान्स्वयम्। भाष्यादिषु तरस्तत्र आचार्यप्रसुर्तैः मेतः ॥ मतो योगो भगवता गीतायामधिकोऽन्यतः । कृतः शुकादिभिस्तस्मादत्र संतो तिसादराः ॥ इति । वेदेषु यहोषु तपःसु चैव दानेषु यतपुण्यकलं प्रदिष्टम् । अत्येति वत्सवीमदं विदिरवा योगी परं स्थानसुपैति चाद्यम् ॥ ' इति सगवद्रक्तेः । किं वहना जिज्ञासुरपि योगस्य शन्दब्रह्मातिवर्तते ['] इति वदता भगवता योगजिज्ञासोरप्यी-त्कृष्ट्यं वर्णितं क्रिमुत योगिनः ।' नारदादिमक्तभेष्टैर्याज्ञवल्क्यादिज्ञानिमुख्येश्वास्याः सेवनाद्रक्तज्ञानिनामप्यविरुद्धेत्युपरम्यते ॥ ४ ॥

मापार्थ-महाच पुरुषोके माननेसे हटनियाकी प्रशंसा ब्रस्तेहुथे ग्रंथकार अपनेकोमी महत्तुरुषोसेही हटनियाका छाम हुआ हे इससे अपनामी गीरत (बहाई) योतन करते हैं कि, मत्स्पेंद्र और गीरत आदि हटनियाको निश्वयसे विशेषकर जानते हैं यहां आवाशन्यके पदनेसे जालंघरनाय, भर्तहरि, गोपीचंद आदि भी जानते हैं यह सूचित किया-अर्थात साधन, रुक्षणभेद, फल इनको भी जानते हैं अथना स्वात्माराम योगी भी गोरक्षआदिके प्रसादसे हर्तविद्याको जानता है-और सबके परम महान ब्रह्मानेनी इस विद्याका सेवन किया है इसमें यह योगीयाज्ञवल्तयकी स्मात प्रमाण है कि. सबसे प्रगने योगके वक्ता हिम्ण्यमर्भ हैं अन्य नहीं हैं-और कहना तभी होता है जब मानसञ्चापार (मनसे विचार) पहिले होचका हो वह मानमुन्यापार आगम (बेद) छेना सोई इस श्रुतिम छिखा है कि जिसका मनसे ध्यान करना ' है उसकोही दाणींसे कहता है-भगवानने भी यह विद्या उद्ववशादि भागवर्तीके प्रति कही है-और शिवजी तो योगी प्रसिद्ध ही है इससे इहा विक्यु शिव इन्होंनेभी इस हरुयोग विद्याका सेवन कियाहे-कदाचित् कहो कि, ब्रह्मसूत्रोंके कर्ता व्यासने योगका खंडन कियाहे सो ठीक नहीं, क्योंकि प्रकृतिको स्वतन्त्र मानते हुए उन्होंने नेदम्दप आशंकाका ही खण्डन कियांते व्हा भीवना विशेषका योगवा खंडन नहीं कियाँहै-और भावना तो व्यासकी भी इसमें संमत है कि भावनाके विना प्रख नहीं होसकता सोई भगवहीतामें कहा है जो योगी नहीं है उनका शाही नहीं है और न उसको भावना होती है और-भावनाके विना शांनि नहीं होती और शांतिसे गोग जिसको नहीं उसको सुख कहासे होसकताहै । नारायणवीवीने भी कहा है कि स्वतंत्र सराज र है मुख्य जिसमें ऐसा सुरय जो नितनके नेदसे प्रधान (प्रकृति) में प्रभीत होताहै उसका खंडन वाक्योंसे व्यासभीने वित्यहि वह अपने रचेहए बहसूर्वासे वर्णन किय भावना नामके योगका खंडन व्यासनीने नहीं वियाह । और आत्माके प्रापक्योगका कथन बहिमान व्यासनीने स्वयं किया है और तिसीसे भाव्य आदिमें आचायेआदिकानि मानाह और सगणन श्रीक्राप्ण-चन्द्रने गतिमें अधिक योग माना है-और शकेदव आविकाने भी योगको न्वाह-तिससे इस योगमें यहत सन्तोंका अत्यंत आटर है-और भगवानने गीतामेंभी कहाहै कि वेद-यज्ञ-तप-और दान इनमें जो प्रण्य फल कहाँहै-उस सचकी योगी इस योगको जानकर छंघन क-रताहै-और उत्तम जो समातनका स्थान (ब्रह्म) है उसकी प्राप्त होताहि-और योगको जान नेका अभिरूपी भी शब्दब्रह्में अधिक होताहै यह कहते हुए भगवानने योगके जिज्ञासकोभी इतम वर्णन क्रियहि-याना ना इतम वया न होगा और भक्ताम श्रेष्ठ नारद आदि सुनियाम सुख्य याज्ञवल्क्य आदिकांने भी इस हठविद्याका सेवन कियाहे इससे भक्त और ज्ञानियाँकाभी इस विद्याके संग बुट्ट विरोध नहीं-इससे अविक वर्णन करनेसे उपरामको प्राप्त होते हैं। भावार्य-यह है कि, मत्त्येन्द्र और भोरक्षनाय आदि हठविद्याकी जानते हैं और उनकी कपासे. स्वात्माराम योगी (भें) जानताई ॥ ४ ॥

> श्रीआदिनाथएत्स्येंद्रज्ञावरानंद्भेरदाः ॥ चौरंगीमीनगोरक्षविद्धपक्षविद्यज्ञायाः ॥ ५ ॥

इठयोगे प्रवृत्तिं जनियतुं इठिवेचया प्राप्तेश्वर्योग्निसद्यानाइ-श्रीव्यादिनाथेत्याः दिना ॥ आदिनाथः शिवः सर्वेवां नाथानां प्रथमो नाथः । ततो नाथसंप्रदायः प्रकृतः इति नाथसंप्रदायोगे वद्वि । सत्स्येद्रास्यश्च ब्यादिनाथाशेष्यः । अत्रैवं किंवदंती । क्सिन्यानाथां किंस्स्यानाथां किंस्स्यानथां किंस्स्याथां कि

खरात् । तीरसमीपनीरस्यः कथन मस्यः वं योगोपदेशं श्वता एकाप्रचित्तो निष्यदः क्रस्योऽवतस्य । तं तादशं दृष्टानेन योगः श्वत इति तं मत्या कुपाछरादिनायो जलेन अभितवात् । म च प्रोक्षणमात्राहित्यकायो मस्येद्रेः सिद्धोऽभृत् । तमेव मस्येद्रेनाय इति वद्ंति । शावरनामा कथिरिसदः । यानद्मैरवनामान्यः । एतेपामितरेतरद्वेदः । इकि वद्ंति । शावरनामा कथिरिसदः । यानद्मैरवनामान्यः । एतेपामितरेतरद्वेदः । इकि वद्देति । तद्यविद्यादिनायाङ्ग्ययो-क्ष्यस्य धुवं परेटतो मस्येद्रेनायस्य कृपावछोकनमात्राक्त्रश्रचित्रायं स्थितथीरंग्यं कृरितः । इद्देवपादो वभूव । स च तत्कृपया संजातहरूवपादोऽहमिति मत्या तत्पाद्योः प्रणिपत्य ममाद्यम् कृषीति प्रार्थिववात् । मस्येद्रोपि चमतुग्रहितवान् तस्यात्रमहाधीरंगीति । असिस्यः सिद्धः सोऽभृत् । मीनो मीननायः गोरक्षो गोरक्षनाथः विरूपक्षनामा विरुक्षयः । नामा च । वौरंगीयम्वतीनां इद्वयसः ॥ ५ ॥

आपार्थ-अब हरयोगमं श्रीताओंकी प्रवृत्तिक हेतू उन सिद्धांका वर्णन करते हैं कि, जिनकी हराविद्यासे ऐश्वर्य मिळाहे और श्रीआहिनाथ अर्थात सब नायोंमें प्रथम शिक्की, शिक्कीसिही-बायसीपत्राय चलाहे । यह नायसंप्रदायों लोन कहतेहैं-और शिष्य मस्पेन्ट्र-यहां यह इति-हास है किसी समयम आदिनाय किसी डॉपमें स्थित थे वहां जनरहित देश समझकर पाँव-विक्ति मति योगका उपटेश करनेथे तीरके समीप जलमें टिकाहुआ कोई मस्स्य उस योगोपदे-दाकी सनकर एकाप्रविद्या होते होतर पाँच अर्थन होतर वस्ति होतर पाँच अर्थन होतर विक्रिक करा पत्र मस्स्यकर पाँव-विक्ति होतर पाँच अर्थन होतर वस्ति हें समझकर पाँव-विक्ति होतर पांच अर्थन होतर निक्का अर्थन करने देखकर ब्लीर इसने योगका अर्थन किया यह मानकर छुपालु आहिनायजीने उसके उपर जलका सिंचन किया प्रोवण करनेसिही वह मस्स्यन्त्र सिद्ध होत्या उसकेही मस्स्य आदिनायसे मिला है योग जिनको एस योगन्द्रनाथ सिर्मेग एक्सेथ उन्होंनी छुपासे किसी वनमें टिकेंड्र वौरोगिको लेखा उनके देखनेसिही वार्यों में सिर्मेश कीर कार्यों के स्थान करने वेद्यनेसिही वार्यों में सिर्मेश करने वार्यों में प्रणाम करके यह प्रार्थन करने वरणोंमें प्रणाम करके यह प्रार्थना करने वरणोंमें प्रणाम करके यह प्रार्थन वस्ति वह वौरोगि नामका सिद्ध मित्र मार्थ । विक्री समस्य में साम के अर्थन अर्थन होत्री सामकर करने वरणोंमें प्रणाम करके यह प्रार्थना वस्ति वह वौरोगि नामका सिद्ध मित्र स्था । विक्री समस्य में साम के अर्थन अर्थन होत्री साम करने यह विक्री साम करके यह व्यार्थन स्था । विक्री साम करने वस्ति साम करके यह विक्री साम करने यह विक्री साम करके यह विक्री साम करने यह विक्री साम करके यह विक्री साम करने विक्री साम करने यह विक्री साम करने साम करने

मंथानो भैरवो बोगी विद्धिष्ठेदश्च कंयिहः ॥
कारंटकः सुरानंदः विद्धिपादश्च चपेटिः ॥ ६ ॥
कानेरी पूर्वपादश्च नित्यनायो निरंजनः ॥
कपाठी विद्वनायश्च काकचंडीश्वराह्नयः ॥ ७ ॥
अञ्चानः प्रसुदेवश्च घोडा चोठी च टिटिणः ॥
भातुकी नारदेवश्च खंडः काषाठिकस्तथा ॥ ८ ॥

Š

इत्यादयो महासिद्धा इठयोगत्रभावतः ॥ खंडियत्वा काल्दंडं ब्रह्मांडे विचराति ते ॥ ९ ॥

मन्यान इति ॥ मेथानः भेरवः योगीति मेथानप्रसर्तानां संवंपां विशेषणम् ॥ ६ ॥ कानेरीति ॥ काकचंडीधर इत्याह्यो नाम यस्य स तथा अन्ये स्पष्टाः ॥ ७ ॥ अहाम इति ॥ तथाशब्दः समुचये ॥ ८ ॥ इत्याद्य इति पूर्वोक्ता आदमो येपां वे तथा । आदिशन्देन तारानायादयो प्राह्माः । महांतश्च तिद्धाश्च अप्रतिहतेश्वर्यो इत्यर्थः । इठयोगस्य प्रभावात्सामर्थ्योदिति इठयोगप्रभावतः । पंचम्यास्तिसङ् । कालो मृत्युः तस्य दंडनं दंडः देहपाणवियोगानुकूलो व्यापारः तं (बंडियत्वा छित्त्वा । मृत्युं जित्ते-त्यर्थः। ब्रह्मांडमध्ये विचरंति विशेषेणाव्याहतगत्या चर्रतीत्यर्थः । तहुक्तं भागवते-'योगेश्वराणां गतिमाहुरंतर्वहिःखिळोक्याः पवनांतरात्मनाम्' इति ॥ ९ ॥

भाषार्थ-मन्यान-भेरत्र-सिद्धि-सुद्ध-कन्यडि-कोरंटक-स्तानंद-सिद्ध-पाद-वर्षदी-कानेरी-फुन्यपाद-नित्यनाय-निरंजन-कपाछि-बिन्डनाय-काकचण्डीखर-अद्याम-प्रभु-देव-बोडा-चोछी-टिटिणि-भातु-की-नारदेव-खण्डकापाँछिक ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ इत्यावि पुत्रीक्त महासिद्ध यहां आदि-पद्से तारानाय आदि हेन हरुयोगके प्रभावसे कारुके खण्डन करके अर्याद देह सीर प्राण वियोगक जनक मृत्युको जीतकर बद्धांडके मध्यमं विकरते हैं अयीत अपनी इच्छोके अनुसार ब्रह्मांडमें चाँह जहां जा सकते हैं सोई भागवतमें इस वचनसे कहा है कि पनक मध्यमें हैं मन जिनका ऐम योगांखांकी गति क्रिलेकीके भीतर और बाहर होती

音川の川

अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठः ॥ अशेषयोगयुक्तःनामाचारकमठो इटः ॥ ३० ॥

हरस्याज्ञेषतापनाज्ञङ्कत्वमञ्जूषयोगसाधकत्वं च मठकमरुख्यक्षेणाह-अशेषेति ॥ व्यशेषाः वाध्यात्मिकाधिमौतिकाधिदैविकमेदैन त्रिविधाः । तत्राध्यात्मिकं दिविधम् । शारीरं मानतं च । तत्र शारीरं दुःवं व्याधिजं मानतं दुःवं वामादिजम् । आधि-मोतिकं व्याप्रसपीदिजनितम् आधिदैविकं ग्रहादिजनितम् । ते च ते तापाश्र तैस्त-प्तानां संतप्तानां पुंसां हटो हटयोगः सम्यगाश्रीयत इति समाश्रयः वाश्रयः वाश्रयभूतो मटः मट एव । तथा हुठः अशेषयोगयुक्तानां अशेषयोगयुक्ताः मंत्रयोगकर्मयोगाः-दियक्तास्तेपामाधारभुतः कमठः एवम । त्रिविधतापतप्तानां प्रवास आश्रयो हठः यया च विश्वाधारः कमठः एवं निखिलयोगिनामाधागे हठ इत्यर्थः ॥ १० ॥

भाषार्थ-अब हठयोगको संपूर्ण तापाँका नाजक और संपूर्ण योगोंका साधक मठ कमठ--रूपसे वर्णन करते हैं कि, सम्पूर्ण जो आव्यारिमक आधिमीतिक आधिदेविक तीन प्रकारके ताप उनसे तपायमान मनुष्योंको हटयोग समाश्रय मठ (रहनेका घर) रूप है । उन तापाँमें आज्यात्मिक ताप दो प्रकारका है-जागिर और मानस । उनमें ज्ञागिका हुःख व्याधिसे होता है और मनका हुःख काम आदिसे होता है और व्याव्य सर्प आदिसे उत्पन्न हुये हुःखको आधि-भौतिक कहते हैं और सूर्य आदि प्रहोंसे उत्पन्न हुये हुःखको आधिदैविक कहते हैं इन तीन प्रकारके तापींसे तत मनुष्यांको हठयोग इस प्रकार हुखकाओं है। जैसे सूर्यसे तपायमान मनु-प्यांको घर होता है और अज्ञेप (संपूर्ण) योगोंसे युक्त जो पुरुप है उनका आधार इस प्रकार हठयोग है जैसे सम्पूर्ण जगतका आधार कमठ है अर्थात् कच्छपक्रप मगवानक्रप है। भावार्य यह है कि, सम्पूर्ण तापांसे तपायमान मनुष्यांका आश्रय मठक्रप और सम्पूर्ण योगि-योंका आधार (आश्रय) कमठक्रप हठयोग है॥ १०॥

इडिवद्या परं गोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता ॥ भनेद्वीर्थेवती ग्रुप्ता निर्वीर्था तु प्रकाशिता ॥ ११ ॥

व्याखिळविद्यापेक्षया इठविद्याया व्यक्तिगोप्यत्वमाह-इठविद्यति ॥ सिद्धिमणिमा-चैश्वयोमच्छता यहा सिद्धिं केवस्यसिद्धिमच्छता वाञ्छता योगिना हठयोगविद्या परः मत्यंतं गोप्या गोपनीया गोपनार्हास्तीति। तत्र हेतुमाह-यतो ग्रप्ता हठविद्या वीर्यवत्य-प्रतिहत्तेश्वर्यजननसमर्था स्यात्। केवल्यजननसमयो केवल्यसिद्धिजननसमयो वा स्यात्। वय योगाधिकारी । 'जिनक्षांय शांताय सक्ताय मुक्ती विहीनाय दोषेरसक्ताय मुक्ती। स्रदीनाय दोषेतरैरुक्तकर्त्रे प्रदेशो न हेयो इटश्चेतरस्मै ॥ ' याज्ञवलक्यः-'विब्युक्तकर्म-संयुक्तः कामसंबल्पवर्जितः । यमेश्र नियमेर्युक्तः सर्वसंगविवर्जितः ॥ कृतविद्यो जितकोधः सत्यर्धर्मपरायणः । गुरुशुश्रवणस्तः पितृमानुपरायणः ॥ स्त्राश्रमस्यः सदाचारो विद्वद्विश्व सुनिक्षितः ॥' इति । 'शिश्रोदररतायैव न देयं वेषधारिणे ' इति क्रिजीचेत् । यत्र योगचिंतामणिकाराः यद्यपि-'ब्राह्मणक्षत्रियविज्ञां स्त्रीराद्राणां चं पावनम् । शांतये कर्मणामन्यद्योगान्नाहित विगुक्तये दत्यादि पुराणवाक्येषु जाणिमात्रस्य योगेऽधिकार उपलभ्यते । तथापि मोक्षरूपं फलं योगे विरक्तस्यैव मवाते । अतस्तस्यैव योगाधिकार उचितः । तथा च वायुसंहितायाम्-"इष्टे तथानुश्रविके विरक्तं विषये मनः । यस्य तस्याधिकारोऽस्मिन्योगे नान्यस्य कस्य-वित ॥ " सुरेश्वराचार्याः-'इहाम्रज विरक्तस्य संसारं प्रजिहासतः ।' जिज्ञासोरेव क्र्यापि योगेऽस्मिन्नधिकारिता ॥ ' इत्याहुः । वृद्धैरप्युक्तम्-"नैतहेर्यं हुर्विनीताय जातु ज्ञानं गुप्तं तांद्ध सम्यक्फलाय । अस्याने हि स्थाप्यमानेव वाचां देवी कोपाञ्चि-र्देहेन्नो चिराय ॥' इति ॥ ११ ॥

भापार्थ-अब संपूर्ण विद्याजोंकी अपेक्षा हठयोग विद्याको अत्यंत ग्रुप्त करने योग्य वर्णन करते हैं-सिद्धि अर्थात अणिमा जादि ऐक्षर्य वा मोक्षके अभिलाषी योगीको हठविद्या अत्यंत ग्रुप्त करने योग्य हे क्योंकि, ग्रुप्त कीहर्इ हठविद्या वीर्यवाली होती है अर्थात् ऐसे ऐक्षर्यको पेदा करती है कि, जो कदाचित न डिगसके और प्रकाश करनेसे बीर्यस रहित हो जाती है ÷

÷

=

अब प्रसंगसे योगीके अधिकारीका वर्णन करते हैं कि जितोन्द्रिय क्रान्त भोगोंमें आसक्त न हो कीर दोपींसे रहितहों और मुक्तिका अभिरापी हो और दोपींसे अन्य जो संसारके धर्म हैं जनसे हीनं न हो और आज़ाकारी हो उसको ही हटयोगविद्या देनी अन्यको नहीं । याज्ञव-ल्क्यने भी कहा है कि जाबोक्त कमेंसे एक कामना और संकल्पसे रहित यम और निय-मसे यक्त और संपूर्ण संगास बाजत और विद्याने यक्त कीवरहित सत्य और धर्ममें परायण एककी सेवानें रत पिता और माताका नक्त अपने गृहस्य आहे आश्रममें स्थिन श्रेष्ट आचारी भीर विद्वानीने निसको मर्थाप्रकार जिल्ला ही हो ऐसा पुरुष योगका अधिकारी होता है और यह भी कहीं हिस्स है कि, जो योगीका वेपचारी कामदेव और उदस्के वजीसत हो उसकी योगका उपदेश न करें ? इस विषयमें योगचितामाणिके कर्ता तो यह कहते हैं कि, यदापि इत्यादि प्रराणवचनोमं प्राणिमाञको योगमं अधिकार मिलता है कि ब्राह्मण क्षात्रिय देश्य रूद की इनको परित्र करनेवाला क्रमाँकी झांतिके लिये और मुक्तिके अर्थ योगमे अन्य नहीं हैं तो भी मोक्षकाप जो फरू है वह योगसे विनक्तकोही होता है। इससे विनककोही योगका शायकार जानेत है सोही पायमहितानें रिस्ता है कि स्वीकेक और वेदोक्त विपयोंमें जिसका मन विरक्त हैं उनकाही इस योगमें अधिकार है अन्य किसीका नहीं है । सुरक्षराचार्यने भी कहा है कि इस लेक और परलेकके विपर्यमें की विरक्त नकुत्र संसारके स्यागका अभि-रुपी है ऐसे किसीही जिज्ञाम पुरुषका योगमें अधिकार है-इति । इद्वीने भी कहा है कि. यह योग दुरिनीत (कोशी) को कदाश्वित न देना क्योंकि गुप्त क्यलाहुआ योग भारी प्रका-रके फलको देता है और अस्थान (क्रुपान) में स्थापन करतेही कोशहुर्य। वाणी उसी सनय दुग्य करती हैं कुछ चिरकाठमें नहीं, भाषार्थ यह है कि मिडिका अभिराधी योगी हराव-बाको भदीपकार एत स्वसी क्योंकि एत रहनेसे वीर्यवाली और प्रकाश करनेसे वीर्यवित होता है ॥ ११ ॥

सुराज्ये धार्मिके देशे सुशिक्षे निरुपद्रवे ॥ धनुःममाणपर्यतं विरुप्ताप्रेनस्विते ॥ एकाते मटिकामच्ये स्थातच्यं इटयोगिना ॥ ३२ ॥

अय इडाम्यावयोग्यं देशमाइ सार्थेन-सुराज्य इति ॥ राज्ञः कमं भावो चा राज्यं तच्छोमनं यस्मिनस सुराज्यस्तिस्मिनसुराज्यं । यया राजा तथा मजा दित महुहुक्तेः राज्ञः शोमनत्वासम्मानापि शोमनत्वं सचितम् । धार्मिके धमेशित अनेन हर्याप्रयासिनोऽनुक् छाहारादिलामः स्वितः । सुमिन्न इत्यनेनानायासेन तह्यामः स्वितः ।
निरुपद्वे चौरव्यामानुष्युवर्यहेते । एतेन देशस्य दीर्थेकालशासयोग्यता स्विता । धनुषः
प्रमाणं धनुः प्रमाणं चतुर्वस्तामं तत्यर्थेतं शिलाधिकल्बािते शिला प्रस्तरः
अग्निर्वेद्वः जलं तोयं तैर्विलिते रहिते यशासनं तत्यर्थेत्समात्रे शिलाधिकलानि
न स्युरिर्यर्थः । तेन श्रीतीष्णविक्तासमानः स्वितः । एकाति विजने । अनेन जनसमागमामानात्वल्वासमानः स्वितः । जनसमिर्दे तु कल्कािन्कं स्पादेव । तदुक्तं

-भागवते - वासे बहुनां क्ला भवेद्वार्ता ह्योगिए इति । ताहको मिठिकामध्ये । अल्पो मिठिका । अल्पोयासे कत् । तस्याः मध्ये हृदयोगिना हृद्राभ्याक्षी योगी हृद्रयोगी तेन । शाकपार्थिबादिवसमासः । स्थातव्यं स्थातुं योग्यम् । मिठिकामध्य इत्यः नेन शीतातपादिकानिवक्केशाभावः स्वितः । अत्र ' युक्ताहारविहारेण इट्योगस्य सिद्ध्ये । इत्यर्थ केनचितिक्षसत्याच च्याख्यातम् । मुल्ल्क्षोक्षानोभव व्याख्यानम् । प्ल्ल्क्षोक्षानोभव व्याख्यानम् । प्ल्ल्क्षोक्षानोभव व्याख्यातम् । मुल्ल्क्षोक्षानोभव व्याख्यानम् । प्ल्ल्क्षेत्रपि ये मया न व्याख्याताः स्त्रोका हृद्रपदीपिकायासुपलभ्येरंस्ते सर्वे क्षिप्त। इति बोद्धन्यम् ॥ १२ ॥

भाषार्थ-अव इंड श्लोकसे हडयोगाभ्यासके योग्य देडाका वर्णन करने हैं कि, जिस देशमें अञ्चा राजा है। क्योंकि जैसा राजा वैसीही प्रजा इस महान पुरुपीके वचनसे जोभन गजीके होनेपर प्रजानी ज्ञामन होगी यह सूचित समझना । और जा देखा धर्मजान हो इससे यह स्चित किया कि, धार्मक देशमें हठयोगके अभ्यासीको अनुकूछ भोजन आदिका छान होता रहेगा और जिस डेजुमें भिक्षा अच्छी मिलर्ना हो इसम यह सूचित किया कि, विना परिश्रम सिक्षाका छाम होगा और जो चोर और व्याव आदिके उपद्रवेंसि गहत हो इससे यह स्मृचित किया कि, वह देश दीर्घ कारतक वर्मन योग्य है और जहां आसन हा उसके नारी तरफ, धतुप प्रमाण पर्यंत (४ हायभर) हिल्ला आग्ने जरु ये न हीं इससे शीत उप्णके विकारका ध्यमाय सूचित किया और जो एकांत (विजन) हो इससे जनांवे समागमाभावसे करूह खादिका अभाव सूचिन किया, क्योंकि जहां जनीका समृह होता है वहां करह आदि होते हीं हैं सेही मागवनमें कहा है कि: बहुत मनुष्योंके वासमें करूह होता है और दो मनुष्योंकी भी बात होने व्याती हैं ऐसे पूर्वोक्त देशमें जो मठिका (छोटा ग्रह) उसके मध्यमें हटयोगका अभ्यासी योगी अपनी स्थिति करने योग्य है इससे ज्ञीत ध्रप आदिके क्लेशका अभाव सू-चित किया । यहां किसीने यह आधा श्लोक प्रक्षित (चनाकर) व्यिखा है उसका हमने अर्थ नहीं ढिखा कि, वह प्रक्षित है, क्योंकि मूळके श्लोकोंकाही व्याख्यान हमने कियाहै इसी प्रकार आगे भी जिन श्लेकोंका हमने व्याख्यान नहीं किया और वे हरुदीपिकामें मिछनाय तो वे सब प्रक्षित्र जानने । भावार्थ यह है कि, जहाँ धुंदर गज्य हो जो धार्मिक हीं जहाँ सुभिक्ष हो उपद्रव न हो और नहां धतुपके प्रमाणक्येत ज़िल आग्ने नल ये न हो और जो एकान्त हो ऐसे टेज़में छोटासा मठ वनाकर हठयोगी रहे ॥ १२ ॥

> अल्पद्रारम्रंश्रगतंतिवरं नात्युचनीचायतं सम्यग्गोमयसाद्रिक्षसम्बं निःशेषनंतुञ्जितम् ॥ बाह्यं मंडपवेदिक्ष्पष्ठचिरं प्राकारसंबेधितं प्रोक्तयोगमठस्यठभुण्मिदंसिद्धर्द्यान्यापिभुः ॥ १३ ॥

अद मठलक्षणमाह-जरपहारामीति ॥ अरुपं द्वारं यस्मिस्तत्तादशम् । रेब्रो खराक्षादिः गर्तो निम्नप्रदेशः विवरो मुपकादिविलं ते न संति यस्मिस्ततादशम् । अत्युवं च तन्नीचं चात्युवनीचं तच तदायतं चात्युवनीचायतम् । विशेषणं विशेष्येणः वहुलमित्यत्र वहुलमहणादिशेषणानां कर्मधारयः । नन्नवनीचायत्रवन्दानां मिचार्यकानां कर्मधारयः । नन्नवनीचायत्रवन्दानां मिचार्यकानां कर्मधारयः । तत्युक्तप्राणानां कर्मधारयः । नन्नवनीचायत्रवन्दानां मिचार्यकानां कर्मधारयः । तत्युक्तप्राणान्यत्रवन्द्वाने मध्ये त्रिष्टा स्थानाधिकरण्यासंभवात् । न चात्युवनीचायतं नात्युवनीचायतं नङ्गवन्देन तमासान्नलेषाभावः नेति पृथक् पदं वा । अत्युवे आरोहणे अमः स्याद्वतिनीचेऽवरोहणे अमा भवेत् । अत्यायते दूरं द्विधाँच्छेनिवराकरणार्थयुक्तं नात्युवनीचायतिमिति । सम्यवसमीचोनतया गोमधेन गोप्रुरीपेण सांद्रं यथा भवति तथा लिसम् । अमलं निर्मेलं निर्मेशं निर्वेशया गीप्रियत् गोप्रुरीपेण सांद्रं यथा भवति तथा लिसम् । अमलं निर्मेलं निर्मेशं निर्वेशया विशेष परित्तो भिष्टियुक्तः महत्तं वाह्ये मध्यमत्रवृक्तिः संदर्तं वाह्ये मध्यमत्रवृक्तिः संदर्ते वाह्ये मध्यमत्रवृक्तिः संदर्वे वाह्ये मध्यमत्रवृक्तिः संविद्वेशया त्रिष्टे परित्तो भिष्टियुक्तः भित्यर्थः । ह्यभ्योत्याविभिः ह्ययोगाभ्यतम् निर्वेश्वः सिर्वेशया विशेष सर्वेशया स्वर्वे परित्ते भिष्टियुक्तः भित्यर्थः । स्वर्वेशया स्वर्वे गोप्यत्यास्य मनोत्रं गोधवासितम् । प्रुपमोदाविष्ठस्य क्रिसेन्तर्वाद्वस्य मनोत्रविष्ठस्य । प्रुपनितिथोन्वत् । स्वर्वेशया स्वर्वेशया

भागाये-अब मठके ठक्षणका वर्णन करते हैं कि, जिसका छोटा इन है। और जिसमें गयाझ आदि रंग (छिद्र) न हीं और गर्न (गया) न हो और जिसमें ग्रंम आदिका विकर (बिछ) न हो और न अरथन्त अंबा हो और न अरथन्त नीचाहो और न अरथन्त पिनाम्मे युक्त हो क्योंकि अरथन उदेवर चढ़ेनेमें और अरथन नीचहो और न अरथन्त दिक्तर संयुक्तमें हर हार्य जातिहै इससे इन सब आसनीका निपेष किया है । कदाबित कहीं कि, अरयुक्त नीच आयत इन तीनी शब्दोंका अर्थ भित्र २ है इससे इनका कमीचारय समास किस होना वर्गीकि कमीचारय समास किस होना वर्गीकि कमीचारय समास जिम वर्गे एक हुआ करती कि होना वर्गीकि कमीचारय समास जिम कर पहले हैं से ठीक नहीं क्योंकि मठमें तिनी पढ़ोंका सामानाशिकरण तरपुरुपको कमीचारय कहते हैं से ठीक नहीं क्योंकि मठमें तिनी पढ़ोंका सामानाशिकरण कर प्यांच अरथा अरखक्ते संग नशब्दको समास होताहे और न लोग नहीं होता अथवा न यह पृथहही पद है इससे यह विशेषण विशेष्यके संग समासका महा होताहे इस तुक्ते कमेचारय समास करोंने कोई भी शंका नहीं है। और जो मठ मछण आदि चंत्रोंसे रहित हो और जो मठके बाहर देशेंसे (सक्ट) हो और जो मठक बाहर वेशेंस

ष्वंविषे मठे स्थित्वा प्रश्विताविवर्जितः । गुद्धपदिष्टमार्गेण योगमेव समभ्यसेत् ॥ ३८ ॥

मठलक्षणमुक्तवा मठे यस्कर्तव्यं तदाइ-प्रवंतिय इति ॥ एवं पूर्वोक्ता विधा प्रकारो यस्य तथा पूर्वोक्तलक्षण इत्यर्थः । तिस्मिन्स्यत्या स्थितिकृत्य सर्वा याश्चितास्ताभि-विशेषण वर्तिया रहितोऽशेषचिन्तारहितः । गुरुणोपिदृष्टो यो मार्गः इटाम्यासम्बारः रूपस्तेन सदा नित्यं योगमेवाम्यसेत एवंशव्देनाभ्यासातास्य योगे विश्वकरत्वं सचितम् । तदुक्तं योगविज-'मरुक्तयो यस्य सिद्धस्तं सेवेत गुरुं तदा । गुरुक्कमसादेन क्ष्यांत्राण्णामयं वुधः॥' राजयोगे-'वेदांततक्षिक्तिमागमेव्य नानाविष्यः जास्वकर्द्वकैव्य । ध्याना दिभिः सरकर्णानं गम्यविज्ञामणिद्धान्तुरुष् विश्वय ॥ 'स्कद्वपुराणे-' व्याचार्याचोगासः वैस्तमवाष्य स्थितम् ॥ युरेश्वर्तामाणिद्धान्त्रम् । युरोक्तं लमते तेन प्रामोत्यपि च निर्वेतिम् ॥ युरेश्वर्ताचार्यः-'गुरुक्तवाद्धमते योगमद्यार्थात्रम् । श्विवमसादास्थयते योगसिक्तं च शाः व्यत्ताम् ॥ यस्य देवे परा मिक्तियया देवे तथा गुरो । तस्यते कथिता ह्याः प्रकार्वाते महास्मनः ॥ इति । श्वतिश्व 'ब्रावार्यवान्युरुषो देव् ' इति च ॥ १४॥

भाषार्थ-मडके छदाण कहकर महमें करने योग्य कमोंको कहते हें कि, संदर्श चिताओंसे रहित मतृष्य इस प्रकारके महमें स्थित होकर पुरुने उपदेश किया जो मार्ग उससे सदैव योगका जन्मास करें। और यहां एवं पदसे यह सुचित किया कि, अन्य कर्मका अभ्यास विप्रकारी होता है सोई योगबीजमें कहा है कि, जिसने वायुको जीत स्वखाहो उस पुरुकी सदैव सेवा करें और बुद्धिमार मनुष्य गुरुके मुखार्यवंद्के प्रसाद्ते प्राणांका नय करें । शनयोगमें भी लिखा है कि, वेदांत ऑर तर्कोंके वचन वेद और नाना प्रकारके शाखोंके समृह ओंग ध्यान ध्यादि और वशीर्य इंट्रिस इन्से चिन्तामणि (योग) की प्राप्ते एक गुरुको छोडकर नहीं होता अयात गुरुके हाग हि योगको प्राप्ति होती है । स्कंदपुराणमें भी लिखा है कि, स्थिर बुद्धि मनुष्य खाचाय गुरुके योगके सर्वत्व (पूर्ण) को जानकर यथीता (शाखांक) फलको प्राप्त होताहि और निवास के स्वाप्त योगके प्रसाद्ते अर्थानसहित योगको प्राप्त होताहै और शिवक्ति प्रसाद्ते अर्थानसहित योगको प्राप्त होताहै और शिवक्ति प्रसादे सत्तानकी जो योगनिसिद्ध उसको प्रहादि तिक होताहै निवासी हेनतामें परम मिक्ति है और निवास है विशेष है कि। स्वाप्त होते है अप स्वाप्त स्वाप्त होते हैं अप स्वाप्त स्वाप्त होते हैं अप स्वाप्त स्वाप्त होते हैं अप स्वाप्त स्व

अत्याहारः प्रपाष्टश्च प्रजल्पो निषमप्रहः ॥ जनसंगश्च छोल्यं च पङ्गभयोंगो विनर्पति ॥ १५ ॥

व्य योगाभ्यासम्रतिवंशकानाह—मत्याहार हति ।। स्रतिशयित बाहारोऽस्याहारः । श्रुधापेसयाधिकमीजनम् । प्रयासः श्रमजनतानुकूले व्यापारः । प्रकृष्टो जलपः मजलपो बहुभापणं शीतीदकेन मातःसाननक्तभोजनफलाहराःदिरूपानियमस्य ग्रहणं नियमग्रहः । जनानां संगा जनसंगः कागादिज करदात् । छोलस्य भावः छोलस्य चांचलयम् । प्रश्नाभरत्याहारादिभाभ्यानम्रतिवंशान् । योगो विनन्नयति विशेषण नक्ष्याते ॥ १८ ॥

भाराय-भव योगाभ्यातके प्रतिवंबकोंको कहते हैं कि अत्याहार अर्थात क्षवासे आपिक भोजन प्रयास अर्थात परिशम जिसमें हो ऐसा व्यापार प्रजल्प (बहुत बोळना) नियमोंक प्रह्म अर्थात श्रीतळ जळसे प्रातःकाळकान, रातिमें ही भोजन फळाहार शादिका नियम करना और जनोंका संग क्योंकि बहुमी कान आदिको पदा करता है और चंचळता इन अत्याहार आदि छः इसे योग विशेषकर नष्ट होता है ॥ १९ ॥

उत्साहारसाहसाद्धेर्योत्तरवज्ञानाच निम्बयात् ॥ जनसंगरीरत्यागात्पड्डाभेर्योगः प्रसिद्धचति ॥ १६ ॥

जय योगिसिद्धिकतानाह्—उत्माहान्ति ॥ विषयपत्रणं चित्तं निरोत्स्याम्येवेद्यमम् उत्साहः। साव्यत्वाराध्यते परिमान्य सहता महातिः साहतम् । यावजीवनं तेत्स्यत्येव-त्यतेवेद्ये धेर्यम् । विषया सृगत्न्याज्ञल्यद्रश्तः, ब्रह्मैत सत्यामिति वास्तविकं ज्ञानं वर्षः ज्ञानं योगानां वास्तविकं ज्ञानं वर्षः । ज्ञाज्ञत्यत्येषु विश्वासो निश्चयः श्रद्धेति यावता जनानां योगाभ्यासः प्रतिकृत्यानां यः संवर्ष्तस्य परित्यागात् । पङ्भिरोभर्षे गः प्रकृषे-प्याविकंत्रेन सिद्धवर्तीत्ययेः ॥ १६ ॥

डिपटेडाः

भाषार्थ-अव योगके साधकोंको कहते हैं कि, विषयोंमें एमे चित्तकोभी रोकळुंगा यह उद्य-महत्त्व उत्साह और साध्य असाध्यवो विचार वर शीव्र प्रशतिकृप साहस और धेर्य जीवन पर्यतमें तो भिद्र होहीगा इस खेदके असावको धेर्य कहते हैं और मगुत्रणाके जलकी तत्य विषय मिथ्या है और ब्रह्मही सत्य है यह वास्ताविक (सत्य) ज्ञानरूप तत्त्वज्ञान और निश्चय अर्थात जाह्य और गुरुके बाक्योंमें विश्वास श्रद्धा और योगास्यासके विरोधी जनींका जो सम्प्र गम पारियाग इन हः वस्तओंसे योग शीव्र सिद्ध होता है ॥ १६ ॥

वय यमनियमाः।

" आहंसा सत्यमस्तेयं त्रह्मचर्यं क्षमा ज्वातः ॥ दयार्जवं मिताहारः श्रीचं चैव यमा दश ॥ १ ॥ तपः संतोष आस्तिक्यं दानमिश्रपूजनम् ॥ सिद्धातनाक्यश्रवणं हीमती च तपो हुतम् ।। २ ।। नियमा दश संशोक्ता योगशास्त्रविकारदैः ॥ "

भाषार्य-हिंसाका त्याग, सत्य, चोरीका त्याग, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धीरता, द्या, बद्धता, प्रमि-तमोजन और ग्राचिता ये दश यम बहाते हें-और तप, संतोप, आस्तिकता, (परहोकको मानना) दान, ईश्वरका पूजन, सिद्धांतबाक्योंका श्रवण, रूजा, ब्राह्म, तप और होम ये दका ानियम योगजासको पंडिताने कहे हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ये अबाई श्रीक प्रक्षित हैं ।

इउस्य प्रथमाङ्गरवादासनं पूर्वेमुच्यते ॥ कुर्यात्तदासनं स्थैर्वमारोग्यं चांग्रहाचदम् ॥ १७॥

खादावासनकथने संगतिं सामान्यतस्तत्फले चाह-हठस्योत ॥ इठस्य'बासने कंग्रक वित्रं मुद्राख्यं करणं तथा । अथ नादानुसंधानम् इति वश्यमाणानि चत्वार्यभानि । श्रत्याहारादिसमाध्यंतानां नादानुसंधानेऽतमीवः । तन्मध्ये बासनस्य श्रयमांगत्वात्पवन मासनमुच्यत इति संबंधः । तदासनस्थैर्थे देहस्य मनसश्चाञ्चल्यरूपरजोधर्मनाञ्चन रवेन स्थिरतां कुर्यात । ' आसनेन रजो हांते ' इति बाक्यात । आरोग्यं चित्रविक्षेप-करोगामावः । रोगस्य चित्तविशेषकत्वमुक्तं पार्वजलसन्ने-'व्याधिकत्यानसंशयप्रमादा-खस्याविरतिभ्रांतिदर्शनाङ्ब्धमूमिकत्वाऽनवस्थिवत्वानि चित्तविक्षेपास्तेंऽतरायाः'इति ३ वंगानां छाधवं छष्ठत्वं गौरवरूपतमोधर्मनाशकत्वमप्यतेनोक्तम् ॥ चकारात्सुदृबृद्धचा-दिकमि बोध्यम् ॥ १७ ॥

भाषार्थ-प्रथम आसनके कथनमें संगतिको और आसनके फलको कहते हैं कि, हठयोगका प्रथम अंग होनेसे आसनको प्रथम कहते हैं कि, ये योगके चार अंग कहेंगे कि, आसन कंमक (प्राणायाम) विचित्र मुद्राओंको करना और नादका अनुसंघान और प्रत्याहारसे समा-धिपर्यतीका अंतर्भाव नादमें है उन चारोंमें आसन प्रथम अंग है इससे उसकाही पहिले वर्णन करते हैं कि, तिस आसनकी स्थिरता इसिंध्ये करें कि, देह और मनकी चंचलतारूप जो रजीगुणका धम उसका नाज्ञक आसनहे क्योंकि इस वचनमें यह दिखाहै कि, योगी आसनसे रजीगुणको नष्ट करताहै और आरोग्यकारक है अर्थात चित्तको विक्षेपक रोग नहीं होताहे क्योंकि पतंजिकके इस सूत्रमें रोगकोभी चित्तका विक्षेपक कहाह कि, व्याधि उत्यान संशय-प्रमाद-आलस्य-अविरादि स्थांति दुर्गन-अख्व्यस्मि (पूर्वोक्त सुभयोंका न मिखना) अनवस्थित (च्यांक्त अविरादि स्थांति सुभांति वह लाव गोरवहरूप तमोगुणके धर्मका नाज्ञक है और चकारके पढनेसे क्ष्यांकी शक्त आदिमी समझने अर्थात ऐसा आसन हो जो स्थिर मंत्रोग अर्थांका लावन चरे और जिससे क्षयांन वह ॥१॥।

विष्टाचिश्र मुनिभिर्यत्स्येन्द्राचैश्र योगिभिः ॥ अंगीक्षतान्यासनानि कथ्येते कानिचिन्मया ॥ ३८ ॥

विसद्यदिसंमतासनमध्ये श्रेष्ठानि मयोच्यंत इत्याह-विसप्टिचीरीति ॥ विसप्ट आद्यो येषां याज्ञवल्क्यादीनां तैर्मुनिभिर्मननशीलैः । चकारान्मंत्रादिशरैः,। मत्स्पेंद्र आद्यो येषां जाल्ध्यरनायादीनां तैः । योगिभिः हठाभ्यातिभिः । चकारान्मुद्रादिशरैः । अंगी-कृतानि चतुरशित्यासनानि तन्मध्ये कानिचित् श्रेष्टानि मया कथ्यंते । यद्यप्युमयो-रिष मननहटाभ्यासी स्तस्तयापि विसिग्रादीनां मननै मुख्यं मत्स्येंद्रादीनां हठाभ्यासी मुख्य इति पृथग्रहणम् ॥ १८ ॥

भापार्थ-वसिष्ट आदिकोंके सभेत जो आसन हैं उनमें श्रेष्ट १ आसनोंके वर्णनकी मृतिका करते हैं कि, शिराह है आदिमें जिनके ऐसे मननके कर्ता मुनियोंने और चकारके पढ़िनेसे मंत्रके झाताओंने और चकारके पढ़िनेसे मंत्रके झाताओंने और मल्येंग्रहें आदिमें जिनके ऐसे योगियों (जालंघरनाथ आदि) ने अर्थात् हरुयोगके अन्यासियोंने और चकारके पढ़िनेसे मृत्र आदिके झाताओंने अंगीकार किये जो चीगाड़ी ८४ आसने हैं उनमें कितनेके श्रेष्ट आदिनोंकों में कहताहूँ यदापि दोनोंको मनन और हरयोगका अन्यास या तथापि बाईए आदिकोंका तो मनन मुख्य रहा और मत्सेंग्र आदिकोंका हरयोगका अन्यास मुख्य रहा इससे वोनोंको पृथक् पृथक् पढ़ाहै ॥१९८ ॥

जानूवींस्तरे सम्यक्कृत्वा पादत्तछे उसे ॥ ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्त्रचल्लते ॥ १९ ॥

तत्र सुकरत्वाराथमं स्वस्विकासनमाह--जानूबीरिते ॥ जानु च ऊरुष्ट्य । अत्र जानुक्विन जानुसीनिहितो जंवापदेशो प्राह्यः । जंधोवीरिति पाठस्तु साधी-यान् । तयोरंतरे मध्ये उमे पादयोरतछे तरुप्रदेशी ऋत्वा ऋतुकायः समकायः यत्र समासीनो मवेत्तदासनं स्वास्तकं स्वश्तिकारूयं प्रचक्षते वद्ति । योगिन इति क्षेपः । श्रीधरेणोक्तम्-'अरुकंधांतराधाय प्रपदे कानुमध्यमे । योगिनो यद्वसस्थानं स्वन्तिकं तहिहुर्चुधाः ॥ 'इति ॥ १९ ॥ मापार्थ-प्वास्तिक खासनको कहते हैं कि जातु (गोडे) और जंघाओंके वीचमें घरणतल सर्वात दोनों तरवाओंको लगाकर जो सावधानोपूर्वक वैठना उसे स्वस्तिक आसन कहते हैं ॥ १९ ॥

सन्ये दक्षिणग्रुल्फं तु पृष्ठपार्थे नियोजयेत् ॥ दक्षिणेऽपि तथा सन्यं गोसुखं गोसुखाङ्गति ॥ २०॥

गोसुलासनमाह—सन्य इति ॥ सन्ये वामे पृष्ठस्य पार्न्यं संप्रदायात्कदेरेघो भागे दक्षिणं गुरुकं नितरां योजयेत् । गोसुलस्याकृतियेस्य तत्ताहकं गोसुलसं इकमासनं भवेत ॥ २०॥

भाषार्थ-नोसुख आसनको कहते हैं कि, कटिके नामनागर्मे वहना ग्रुब्स टकना और दक्षि-णमागर्मे नामटकनेको छगाकर जो गोसुखके समान आकार होजाताहै उसे गोसुखआसन कहते हैं ॥ २० ॥

> एकं पादं तथैकित्मिनिन्यसेहरूणिं स्थितम् ॥ इतर्राहेंमस्तथा चोरुं वीरासनिमितीरितम् ॥ २३ ॥

वै रासनमाइ -एकमिति ॥ एकं दक्षिणं पादम् । तथा पादपुरणे । एकस्मिन्ना-मोरुणि स्थितं विन्यक्षेत् । इतरस्मिन्नामे पादे छहं दक्षिणं विन्यक्षेत् । तद्वै रासनमिन-सीरितं कथितम् ॥ २१ ॥

भागार्थ-वीरास्तको कहते हैं कि, एकचरणको बाम जंघापर और इसरेको दक्षिण जंघापर

रखकर वीरासन होताहै ॥ २१ ॥

युदं निरुद्ध्य गुल्फाभ्यां व्युक्तमेण समाहितः ॥ कूर्मासनं भवेदेतदिति योगविदो विद्वः ॥ २२ ॥

कूर्मोसनपाह—गुर्दामिति ॥ गुरुप्ताभ्यां गुर् निरुद्धच नियम्य व्युत्क्रीण यत्र सम्पर्गाहितः स्थितो मनेत् । एतत्कूर्भोसनं मनेत् । इति योगनिदो विद्वरित्यन्यः ॥ २२ ॥

मापार्थ-क्र्मोसनको कहतेहैं दोनां टकनीसे गुड़ाको विषयेत क्रमसे अर्थात दक्षिणसे वाम-माग वामसे दृक्षिण भागको रोककर जो सावधानीसे वठनाय उसे क्र्मोसन कहते है ॥ २२ ॥

पञ्चाधनं तु संस्थायप्य जानूबोरंतरे करो ॥ निवेक्य भूमो संस्थाप्य न्योमस्य कुनकुटाधनम् ॥ २३ ॥

कुनश्रुटासनमाह-पद्मासनं त्विति ॥ पद्मासनं तु उत्तरिपरि उत्तानचरणस्यापनरूवं ! सम्यक् स्थापित्वा । जानुपदेन जानुसंनिहितो जंवामदेशः । तच उत्तर्ध जानुरू त्ववेरितरे मध्ये करी निवेदय सुमी संस्थाप्य । करावित्यत्रापि संवच्यते । व्योगस्र्य रवस्यं पद्मासनमञ्ज्ञं यत्तरकाककटासनम् ॥ २२ ॥

भाषार्थ-अन इस्स्ट्रास्तको कहते हैं कि, पञ्चास्तको स्याकर अर्थात जंबाओंके उत्तर इसान (खंडे) दोनों चरणांको स्थापन करके और जातु (गोडे) और जंबाओंके मध्य-भागमें दोनों हार्योको स्याकर बीत उन दोनों हार्योको भूभिमें स्थापन करके आकार्यमें स्थित रहे पञ्चास्तको समान जो यह आसन है सो वृषक्यमन कहाता है अर्थात सुरगेके समान स्थिति करनी ॥ २३ ॥

दुक्कुटासनवंधरथो दोभ्यों संबध्य कंघराम् ॥ भवेरकूर्मवदुत्तान एतदुत्तानकूर्मकम् ॥ २४ ॥

डत्तानक्रुर्मकासनमाह-इवड्डटासनेति ॥ इवज्जटासनस्य यो वंधः पूर्वेस्ट्रोकोक्तरत-स्मिन् स्थितः दोभ्यो वाहुभ्यां कंथरां श्रीवां संवध्य क्रूमेवहत्तानो चास्मिन्मवेदेतसासः

नमुत्तानकूर्भकं नाम ॥ २४ ॥

भाषार्थं अब हुर्भासनको कहतेहैं कि, इसकुरासनके वंबनमें स्थित होकर वर्षात् वसकुर हासनको छगाकर भीर दोनों भुजाओंसे करूपरा (श्रीषा) को भछी सकार बांधकर दूर्म (कन्छप) के समान उनान (सीधा) है हो जाय तो यह उत्तानहुर्मासन कहाता है ॥ २८ ॥

पादांगुष्टे। तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि ॥ धनुराकपंणं कुर्योद्धनुरासनसुच्यते ॥ २५ ॥

चडुरासनमाह-पादांगुष्टी त्विति ॥ पाणिभ्यां पादयोरंगुष्टी गृहीत्वा श्रवणाविह्न कर्णपर्वतं चतुप बाकपणं यथा मवति तथा क्रपोत् । गृहीतांगुष्टमेकं पाणि मक्षारितं कृत्वा गृहीतांगुष्टमितरं पाणि कर्णपर्यतमाकुंचितं क्रपोदित्यर्थः । गृतद्वतुरासनष्ट्रच्यते ॥ २५ ॥

भाषार्थ-अन घनुरासनको कहते हैं कि दोनों पार्टीके अंगुठोंको हायाँसि पक्रडकर अन्नण (कान) पंरीत घनुषके समान आकर्षण करें (खोंचे) उसको घनुरासन कहते

हैं॥ २५॥

वामोरुमुळापितदक्षपादं नानोबेहिबेंछित-वामपादम् ॥ प्रगृह्म तिष्ठेत्परिवर्तितीनः श्रीमरस्यनाथोदितमासनं स्यात्॥ २६ ॥

सत्त्येद्रासनमाइ-बामोर्बिति ॥ वामोरुपृडेऽपितः स्थापितो रो दक्षपादः तं संमदा-चात्प्रष्ठतोगनवामपाणिना गुरुकस्योपरिमागे परिग्रुव जानोदेक्षिणपादजानोकेरिः प्रदेसे

ि उपदेशः

बेष्टितो यो बामपादस्तं वामपादजानोर्वेहिबेष्टितदक्षिणपाणिनांगुरे प्रयूहा । परिवर्तितांगः वामभागेन पृष्ठतो सुखं यथा स्यादेवं परिवार्वितं परावर्तितमंगं येन स तथा ताहक्को यत्र तिष्ठेत स्थिति कुर्योत्तदासनं मत्स्येंद्रनायेमोदिवं कथितं स्थात् । तद्दुदितत्वात्तनामकमेव बढीते । एवं दक्षोरुमुखापितवामपादं पृष्ठतोगवदक्षिणपाणिना अगृह्य वामजानोर्वहिचेहि-तदक्षपादं दक्षिणपादजानोविहिर्वेष्टितवामपाणिना प्रमुहा । दक्षमामेन प्रप्रतो सुखं यया स्पादेवं परिवर्तितांगश्चाभ्यसेत् ॥ २६ ॥

भापार्थ-अव मत्स्येंद्रासनको कहतेहैं कि, वाम जंघाके मूळमें दक्षिण पादको रखकर और जातसे बाहर वाम पादको हाथसे रूपेटकर और पकडकर और परिवर्तित अंग होकर अर्थात वाम भागसे पीठकी तर्फ मुखको करके जिस आसनमें टिके वह मत्स्येन्द्रनाथका कहा मत्स्ये-न्द्रासन होताहै । इसीप्रकार दक्षिणजंघाके मूख्ये वानपादको रखकर और पीठपर गये दक्षिण हायसे उसको ग्रहण करके और वामजानुसे वाहर हायसे छपेटे दक्षिणपादको दक्षिण पादकी जातुसे बाहर रुपेटे फिर उसको बाम हाथसे यहुण करके और दक्षिणमागसे पीटकी तरफ मुखको करके भी हठयोगका अभ्यास करे अर्थात यह भी एक मत्स्येन्द्रासन है ॥ २६ ॥

मत्स्येंद्रपीठं जठरप्रदीतिं प्रचंडरूग्मंडलखंडनाह्मस् ॥ अभ्यासतः कुंडिंगिश्वोधं चंद्रस्थिरत्वं च ददाति धुंसास् ॥२७॥

मत्स्येंद्रासनस्य फलमाइ-मत्स्येंद्रोति ॥ प्रचंडं दुःसई रुजां रोगाणां मंदछं समृहः तस्य (वंडने छेदनेऽख्नमखमिव तादशं मतस्येन्द्रपीठंमतस्येद्रासनम् अभ्यासतः मत्यद्वमाव-क्षेनरूपादभ्यासात् पुंसां जठरस्य जठराग्नेः प्रकृष्टां दीप्ति वृद्धि ददाति । तथा क्षंडलिन्या ब्याधारशक्तः प्रवोधं निद्रामार्वं तथा चंद्रस्य ताछुन उपरिमागे स्थितस्य नित्यं क्षरतः स्थिरत्वं क्षरणाभावं च ददातीत्यर्थः ॥ २७ ॥

भाषार्थ-अब मत्स्येन्द्रासनके फळके। कहते हैं कि, यह मत्स्येद्रासन जठराग्निका दीपक (अधिक) करताहै क्योंकि यह आसन प्रचंडरोगोंका जो समूह उसके नाशके लिये. असके समान है और छुण्डारिनी जो आधारजाकि है उसके' प्रबोध (जागरण) अर्थात निद्राके अभावको और तालुके उपरके भागमें स्थित जो चंद्र (नित्यक्ररेह) उसकी स्थिरताको अर्था-व झरनेके अमानको पुरुषोंको देताहै अर्थात करता है ॥ २७॥

प्रसार्य पादौ सुवि दंण्डह्मपौ दोभ्यी पदाश्रद्धित्यं गृहीत्वा ॥ **जानूपरिन्यस्त**रराट्यटदेशो वरोदिदं पश्चिमतानमाहुः ॥ २८ ॥

पश्चिमतानासनमाइ--प्रसार्वेति ॥ सुन्न सूसी दंडस्य रूपामव रूपं ययोस्ती दंडा-कारी श्किष्ठशुक्की प्रसाय प्रसारिती कृत्वा । दोम्यीमार्क्काचतवर्जनीभ्यां सुजाभ्यां पद्देश पदनोश्चात्रे अप्रभागी तयोद्धिययं द्वयमंग्रहप्रदेशसुम्मं वलादाकर्षणपूर्वकं यथा जान्य-घोषागस्य मुसेहत्यानं न स्यात्तवा गृहीत्वा । जानोरुपरिन्यस्तो छालटेदेशो चेन त्तादेशो यत्र वसेत् । इदं पश्चिमताननामकमासनमाहुः ॥ २८॥

भापार्थ—अब पश्चिमतानासनको कहते हैं कि, ढुंडके समान है रू.प जिनका ऐसे और मिले हैं गुरूफ जिनके ऐसे दोनों चरणोंको ग्रमिण फंटाकर और आहंचित (हुकड़ी) है तर्जनी जिनकी ऐसी भुजाओंसे दोनों पाढ़ोंके दोनों अग्रमागोंको ग्रहण करके अर्थात अँग्रा-ठोंको इस प्रकार पकड़कर जैने जानुआंके अर्थामागोंको छए न उठें और जानुआंके ऊपर रक्खा है ल्लाट (मस्तर) भाग जिसने ऐसा होकर जहां पुरुष वसे उस आसनको पश्चिमतान आसन कहते हैं ॥ २८ ॥

इति पश्चिमतानमासनाय्यं पवनं पश्चिमवाहिनं करोति ॥ उद्यं जठरानस्रस्य कुर्योद्धद्रे कार्र्यमरोगतां च ग्रंतास्॥२९॥

अय तत्क्रक्स्-इतीति ॥ इति पूर्वेक्सासनेष्वर्थं मुख्यं पश्चिमवानं पवनं प्राणं पश्चिमवाहिनं पश्चिमेन पश्चि न्यांगेण सुद्धुम्नामांगेण वहतीति पश्चिमवाही तं ताहर्शं करोति । जरानवस्य जरे संउनलोडग्निस्तस्योदयं वृद्धिं कुर्यात् । उदरे मध्य-प्रदेशे कार्र्य कुरासं कुर्यात् । वरोगतामारोग्यं चकासनाडीवरुनादिसाम्यं कुर्यात् ॥ २९॥

भागर्थ-अब इस आसन रू फटको कहते हैं कि, संपूर्ण आसनीमें मुख्य यह पश्चिमतान , नामका आसन प्राणकर पवन है पश्चिमियाही करता है अर्थात मुप्तमा नाडीके मार्गसे प्राण बहने खगता है और जटरादि न उत्पन्न करता है अर्थात् बहाता है और उद्देश मध्यमें कुशताको करता है और पुर्वादि अरोगता (रोगका अभाव) करता है और चकारसे नाडि-

योंके बरन आदिकी समता है, करता है ॥ २९ ॥

घरानवृष्टभ्य करद्वयेन तत्कूर्परत्थापितनासिषार्थः ॥ उद्यातनो दंडाात्थितः स्यान्मायूरमेतत्त्रवद्ति पीठव् ॥३०॥

अथ मयूरासनमाह-धरामिति ॥ करह्येन करवोईयं द्युग्मं तेन धरां सूर्मिमवद्द-भ्यावङंन्य प्रतारितांगुली गुःमसल्यावली सन्त्रिहितो करो कृत्वेत्वर्थाः । तस्य करह्-यस्य कूर्ययोर्धुजमध्यसंधिमागयोः स्थापिते धृते नामेः पार्थे पार्थमागौ येन स उचालन उच्छलतमासनं परिवतादद्याः । त्वे ज्ञूम्ये दंडवहंडेन तुल्पधृत्यित कर्ष्ये स्थितो यत्र भवति तन्माय्रं मयूर्स्येतरसंबंधित्वाचनामकं प्रवदंति । योगिल इति श्रेषः ॥ ३० ॥

भाषार्थ-अब मूर्यासनको बद्धते हैं कि, दोनों हायोंसे भूमिका अवखंबन करके अर्यात् फिछाये हुये हायोंसे भूमिका एका करके और उन हायोंका जो कूर्यर (भुजा, करका-संविभाग) जिसको मणिवंद वा गद्दा कट्टते हैं उसके उत्तर नासिक दोनों पार्थमायोंको स्थापित-करके वह इंडके समान उठा हुआ उज्जासन होता है इस जासनको योगीजन मायूर कहते हैं अर्यात मूलके समान इसमें स्थिति होती है ॥ ३०॥

इराति सक्तळरोगानाजु गुल्मोवरादी-नभिभवाति च दोषानासनं श्रीवयूरम् ॥ बहु कदशनभुक्तं भरम कुर्यादशेषं जनयति जटरात्रिं जारयेरकाळकूटम् ॥ ३३ ॥

मयुरासनगुणानाह-इरतीति ॥ गुरुमो रोमिक्सेपः उदरं जलोदरं ते आदिनी भेवां ब्रोहादीनां ते तथा तान्यकलरोमान् सकला ये रोमास्तानाशुः झाटीते हरित नाभ्यति श्रीमयुरमासनामिति सर्वत्र संवच्यते । दोपान्यातिपत्तकफानालस्पर्या-श्रामिभवति तिरस्करोति । बहातिभायतं कदभनं कदनं यहकं तद्शेपं समस्तं मस्म क्रयौत्पाचयेदित्यपैः । जठराशिं जठरानलं जनयति- प्राहुमीवयति - । कालकूर्ट विषे कालकटवरपकारकालं समस्तं जारयेजीणं क्रयोत्पाचयेदित्यर्थः ॥ ११ ॥

भाषार्थ-अब मसूरासनके गुणांको कहते हैं कि, गुल्म और जरोहर आहे और जो प्लीहा विद्वी आदि सब रोग हैं उनको शीव हरता है और संपूर्ण जो वात पित्त कफ आरम्स आदि द्वीप हैं उनका तिस्कार करता है। और अधिक वा इत्सित अब जो भक्षण करियों हीय तो उस संपूर्णको मस्स करता है और जरुराधिको चढाता है और कारुह्ट (विष्) को भी भी जीण करता है अपने समान अपकार करनेवाला जो अब है उसकोभी प्यानति ॥ ११॥

उत्तानं भववद्रभूमो भ्रयनं तच्छवासनम् ॥ भवासनं श्रांतिहरं चित्तविश्रांतिकास्कम् ॥ ३२ ॥

श्वासनमाहार्धेन-उत्तानमिति ॥ श्वेन नृतशरीरेण तुल्ये श्ववहुत्तानं भूमिसंव्यं पृष्ठं यथा स्थात्तथा शयनं निद्रायामिव सन्निवेशो यत्तव्यवासनं श्वाक्यमसनम् । श्वासनम्योजनमाह-उत्तरार्धेन । श्वासनं आंतिहरं आंति हठाभ्यासअमं हरतीति आंतिहरं चित्तस्य विआंतिर्विश्रामस्तस्याः कारकम् ॥ ३२ ॥

मापार्थ-अन शनासन और उसके फळको कहते हैं कि, शन (मृतके समान) समिपर पीठको छगार्कर उत्तान (सीधा) शयन निद्राके 'तुरुष निसमें हो यह शनासन होता है। और यह शनासन हटयोगके परिश्रमको हरता है और चित्तकी निश्नाति (निश्नाम) को करता है अर्थात इसके करनेसे चित्त स्थिर होजाता है॥ ३२॥

चतुरश्लीत्यासनानि शिवेन कथितानि च ॥ तेभ्यश्रद्धष्कमादाय सारभृतं त्रवीम्यहम् ॥ ३३ ॥

वश्यमाणासमचतुष्टयस्य अप्रत्यं वदसाह-चतुरक्षीतीति ॥ त्रिवेनेश्वरेण चतुराधि-कांशीतिसंख्याकान्यासनानि कथिवानि चकाराचतुरक्षीतिखक्षाणि च । तदुक्तं गोर सनायेन-'आसनानि च तांति यांवरयो जीवजातयः । एतेपामसिकान्मेदान्तिनानाति महेश्वरः [ध चतुरजीतिलक्षाणि एक्वैकं समुदाहृतम् । ततः शिवेन पीठानां पोढशोनं शर्तं कृतम् ॥ शिवेन पीठानां पोढशोनं शर्तं कृतम् ॥ शिवेन तिभ्यः शिवोक्तचतुरशीतिलक्षासनानां मध्ये प्रशस्तानि यानि चतुर्शत्यासनानि तेभ्य यादाय गृहीत्वा । सारमृतं श्रेष्ठभृतं चतुष्कमहं त्रवी-मीत्यन्वयः ॥ १३३॥

भापार्थ—अब चार आसतें। अधनावा वर्णन करते हैं कि, शिवनीने चीरासी आसन कहे हैं और चकारके पढ़नेसे उनके चीरासी छाख छक्षण कहे हैं सोई गोरक्षनाथने कहाँहें कि, नितनी जीवेंकी जाति हैं उतनेही आसन हैं इनके संपूर्ण भेदोंकी अश्वनी जानते हैं उनमेंनी एक २ चीरासी छक्ष कहाई निमसे शिवजीने चीरासी आसनहीं किये हैं, उनमें अष्ठ जो चीरासी,आसन हैं उनमेंसे छेकर श्रेष्ठ जो चार आसन हैं उनको में कहनाहूँ॥३३॥

> सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्रं चेति चतुप्रयस् ॥ श्रेष्ठं तत्रापि च सुखे तिष्ठेत्सिद्धासने सदा ॥ २४ ॥

तदेव चतुष्कं नाम्ना निर्देशित-सिद्धमिति ॥ सिद्धं सिद्धासनन । पद्मं पद्मा-सनग्र, सिंईं सिंहासनम्, भद्रं भद्रासनम् इति चतुष्टयं श्रेष्टमितशयेन प्रशस्यं तत्रापि चतुष्टयं सुले सुक्को सिद्धायने सदा तिष्ठेत् एतेन सिद्धासनं चतुष्टयेप्युत्कृष्टमिति सुचितम् ॥ ३४ ॥

भापार्थ-उन चारोंकेही नामोंको दिखाते हैं कि, सिडासन-पन्नासन-सिंहासन और भद्रान् सन ये चार आसन अर्खात श्रेष्ठ हैं। उन चारोंमें मुखका कर्ता जो सिडासन है उसमें सदैव योगी टिके-इससे यह सुचित किया कि, इन चारोंमेंभी सिडासन उत्तम है॥ ३४॥

योनिस्थानक्संभिपूळवितं कृत्वा दृढं विन्पसे-न्मेहे पादमथैकमेव दृदये कृत्वा दृढं सुन्यिस् ॥ स्थाणुः संपमितेद्रियोऽचलदशा पर्यदेश्ववीरंतरं स्रोतन्मोसकपाटभेदजनकं सिद्धासनं शोच्यते ॥ ३५ ॥

आसनचतुष्टियेप्युत्कृद्धवात्ययमं तिद्धासनमाह-चोनिस्थानकमिति ॥ योनिस्थानमेव चोनिस्थानकम् । सार्थे कप्रत्यवः । गुरोपस्थयोर्भध्यमप्रदेशे पदं चोनिस्थानं तत् अंधिवीमश्चरणस्वस्य मुळेन पार्ष्णमागेन घटितं संख्यं कुत्वा । स्थानांतरम् एकं पादं दक्षिणं पादं मेट्टेंद्रियस्योपिरमागे दृढं यथास्याच्चया विन्यसेत् । हृदये हृदयसापि हृद्यं खुक्ता । स्थानांतरम् एकं पादं दक्षिणं पादं मेट्टेंद्रियस्योपिरमागे दृढं यथास्याच्चया विन्यसेत् । हृदये हृदयसापि हृद्यं खुक्ता हृद्युद्ध्ययोश्चतुरंगुर्वमंतरं यथा मवति वथा कृत्वेति रहस्यम् । संयमितानि विषयेभ्यः परावृत्तानीद्भियाणि येन स तथा । ष्यच्छा या दक् दृष्टिस्तया भूत्रोरंतरं मध्यं पर्यत्। हि प्रसिद्धं मोक्षस्य यरक्षपाटं प्रतिवंधकं तस्य मेदं नाइं जनयतीति तादशं सिद्धानां योगिनाम् । आस्ते षत्रास्यतेऽनेनोति वा आसर्ने सिद्धासननामकामिदं मवेदित्ययैः ॥ १५ ॥

भावार्थ-अव वारों आसनोंमें उत्तम जो सिद्धासन उसके सक्तपक्का वर्णन करते हैं कि,
ग्रुवा और हिंग इन्द्रियका मध्यमाग जो बोनिस्थान है उससे वाम चरणके मूळ (एडी) की
निलाकर जोर दक्षिण दूसरे पाइको डढ पीतिस हिंग इन्द्रियके उत्तप रहां और इदयके
समीपभागमं ह्य चित्रुक वा (ठोडी) को मध्येपकार रिश्वर करके वर्शाद हुत और इदयक
प्राण्डका अंतर रखकर मध्येपकार विषयोंसे ग्रेकी हैं इन्द्रिये ,निसने ऐसा स्थाण
(तिश्रक) योगी अपनी अचल (एकरस) इष्टिसे श्रुव्धिके मध्यभागको देखता रहे ! यह
मोक्षके कपाट (अवरोष वा रोक) का जो भेदन (नाका) उसका करनेवाला योगिकनींने
सिद्धासन कहाँहै-अर्थाद सिद्धयोगी इस आसनसे वेटते हैं ॥ ३५ ॥

बेहादुपरि विन्यस्य सन्यं ग्रहफं तथोपरि ॥ ग्रहफांतरं च निक्षिप्य सिद्धासनमिदं भवेत ॥ ३६ ॥

मस्पेंद्रसेमनं सिद्धासनप्रस्वाध्नपर्धमतं वक्तुमाइ-मनातेरिकात ॥ तदेव दश्यित-मेद्रादिति ॥ मेद्रादुपरथाद्रपर्यूच्येभागे सन्यं वामग्रुवर्धः विन्यस्य तथा सन्यवदुपरि मुख्यपादस्योपरि न द्य सन्यगुरुषस्य । गुरुष्कांतरं दक्षिणग्रुवर्धः च निक्षिप्य वसेदिति क्षेत्रः। इवं सिद्धासनं मतांतारामिमतामस्यमेव इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

भाषार्थ-अन मत्सेन्द्रके संमत सिद्धासनको कहकर अन्य योगियाँके संमत सिद्धासनको कहते हैं कि, मतातरमें तो यह लिखाई कि, लिंग इन्द्रियके उपरके भागमें शामग्रहमको रखकर और तैसिही सूच (वाम) पादके उपर दक्षिण गुरूकको रखकर बैठे तो यह भी किसी

२ ने सिद्धासन कहा है ॥ ३६ ॥

एतस्विद्धासनं प्राहुरन्ये वज्रासनं विद्धः ॥ मुकासनं वदंत्येक प्राहुर्ग्वप्रासनं परे ॥ ३७ ॥

तत्र त्रयमं भहासिष्ट्रसंभवित्तात् रुपष्टीक्तुंभस्येव मवभेदांचामभेदानाह-एतिदिति ॥ एतत्पूर्वोक्तं सिष्ट्रासनं सिष्ट्रासनं प्रस्तुः । कोचिद्धित्यस्याहारः । अन्य ,वजासनं वजासनर्यंत्रकं विद्धः जानीति एके युक्तासनं युक्तासनामिधं वदिति । एरे युक्तासनं युक्तासनाम् । स्वाप्त्यार्थिकं विद्धः जानीति एके युक्तासनं युक्तासनामिधं वदिति । एरे युक्तासनं युक्तासनाक्ष्यं भादः । अत्राप्तानामिक्ताः । यत्र वामपादपार्धिण योनिस्थाने नियोज्य दक्षिणपादपार्धिण योनिस्थाने नियोज्य दक्षिणपादपार्धिण योनिस्थाने नियोज्य दक्षिणपादपार्धिणम् योनिस्थाने स्वाप्त्यते वद्धज्ञासनम् । यत्र व दक्षिणसच्यपा विद्याद्यप्रयोज्यात्रे । यत्र व प्रमुक्तासनम् । यत्र च पूर्वेद्यः स्वाप्त्यते विद्याद्यप्ते विद्याद्यप्ते विद्याद्यप्ते विद्याद्यप्ते । यत्र च पूर्वेदः स्वाप्त्यते मेहाहुपरि नियीवते वह्युक्तासनमिति ॥ ३०॥

मार्थार्थं-इसकोही कोई सिद्धासन कहतेहैं और कोई वजासन कहते हैं और कोई ग्रकासन और कोई ग्रजासन कहतेहैं अर्थांच इस सिद्धासनके दी ये भी नाम हैं और आसनके जो भळीमकार ज्ञाता है वे इन चारों आसनोमें यह भेद (फरक) कहते हैं जिसमें वाम पाइकी पार्ष्णिको हिंगके स्थानपर खनाकर और वृक्षिणपादकी पार्ष्णि (एडी) को छिंगके उपर रख-कर स्थित हो वह सिद्धासन कहाताहै और जहां बाम पार्ष्णिको छिंगके स्थानमें और वृक्षिण पादकी पार्ष्णिको छिंगके उपर छगाकर स्थिति करें वह बजासनमी कहाताहै अर्थात् इन दोमें भेद नहीं है और जहां वृक्षिण और बाम पादकी दोनों पार्ष्णियोंको उपर नीचे मिछाकरं योनिके स्थानमें छगाकर स्थितहै वह मुक्तासन कहाताहै और जहां पूर्वोक्त रीतिसे मिछाई दोनों पार्ष्णियोंको छिंगसे उपर स्खकर स्थित हो वह मुक्तासन कहाताहै ॥ ३७॥

यमेष्ट्रिव मित्ताहास्महिंसां नियमेष्ट्रिव ॥ मुख्यं सर्वासनेष्ट्रेकं सिद्धाः सिद्धासनं विद्वः ॥ ३८ ॥

अय सप्तामः श्लोकः तिख्तानं प्रशंताति-यमेष्टितत्यादिभिः ॥ यमेषु निताहार्गान । मिताहारो वस्पमाणः 'सु स्नग्यमधुराहारः' इत्यादिना । नियमेषु अर्हितामिव सर्वाणि याच्यासनानि तेख तिखाः एकं तिखासनं सुख्यं विद्वारिति संवंधः ॥ १८ ॥

भापार्थ-अब सात क्षोकेंसि सिद्धासनकी प्रशंसा करते हैं कि, जैसे दश प्रकारके यमेंमिं प्रमित मोजन मुख्य है और नियमोंमें आईसा मुख्य है इसी प्रकार संपूर्ण आसनीमें सिद्धासन सिद्धोंने मुख्य कहाहै । ओर प्रमित भोजन इस वचनसे कहेंगे कि, मकी प्रकार क्लिग्य (चिकना) और मगुर आदि जो भोजन यह मिताहार कहाताहै ॥ ३८ ॥

चतुरज्ञीतिपीठेषु सिद्धमेव स्दाभ्यसेत् ॥ द्वासप्ततिसहस्राणां नाडीनां मछज्ञोधनस् ॥ ३९ ॥

े चहुरक्षीतीति ॥ चतुरिधकाशीतिसंख्याकानि यानि पीठानि तेषु सिद्धमेव सिद्धा-सनमेव ६दा सर्वेदाभ्यसेत् । सिद्धासनस्य सदाभ्यासे हेतुगर्भे विशेषणम् । द्वासप्तिः सहस्राणां नाडीनां मळशोधनं शोधकम् ॥ ३९ ॥

भाषार्थ-चौरासी जो आसन हैं उनमें सदेव सिद्धासनका अभ्यास करे क्योंकि यह आसन

बहत्तर हजार नाडियोंके महोंका शोषक है ॥ ३९ ॥

आत्यन्यायी मिताहारी यानद्वादश्चनत्त्वरस् ॥ सदा सिद्धासनाभ्यासाद्योगी निष्पत्तिमान्तुयात् ॥ ४० ॥

जात्माच्यायीति ॥ आत्मानं ध्यायतीत्यात्मध्यायी मित जाहारोऽस्यास्तीति मिता-हारी यांवती द्वादश रत्तराः याबहृदशवत्तरस्य । ' यावद्वधारणे ' इत्यव्ययीमावः समासः । हादशवत्तरपर्यवमित्ययैः । सदा सर्वदा निष्द्वासनस्यान्यायायीयी योगा-भ्यासी निष्पति योगासिद्धिमाप्त्रयात्माप्त्रयात् । योगांतराभ्यासमत्वरेण भिद्धासनाः भ्यासमात्रेणं निर्द्धिमाप्त्रयादित्ययैः ॥ ४०॥

भापार्थ-आत्माके ध्यानका कर्ती और मिताहारी होकर हाद्शवर्ष पर्यंत सदेव दिहासनके अभ्यास करनेसे योगी योगकी सिहिक्को प्राप्त होता है कर्यात अन्ययोगोंके,अभ्यासके विनाही

केनर सिद्धासनकेही अभ्याससे सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ४० ॥

किमन्यैबेंड्डाभेंः पीटैः सिद्धे सिद्धासने सिति ।। प्राणानिले सावधाने बद्धे केवलकुंभके ॥ ४३ ॥

किमन्यौरीति ॥ बिखासने सिद्धे सत्कन्यैर्वहुमिः पीठरासनैः किस् । न किमपी-

त्यर्थः । सावधाने प्रागानिले प्राणवायो कैवलकुमके बद्धे सति ॥ ४१ ॥

भाषार्थ-सिद्धासनके सिद्ध होनेपर अन्य बहुतसे आसनोंसे क्या फळ है .अर्थात इन्छ नहीं है और इस सिद्धासनसे सावधान प्राणवायुके केवळ कुंभक प्राणायाम विधनेपर अन्य सब आ-सन क्या समझने ॥ ४१ ॥

उत्पद्यते निरायासात्स्वयमेवोन्मनी कला ॥ तबैक्तिस्प्रत्वेव दढे सिद्धे सिद्धासने सति ॥ वंधजयमनायासारस्वयमेवोपज्ञायते ॥ ४२ ॥

उत्पदात इति ॥ उन्मनी उन्मन्यसस्या सा कलेबाह्यादकरमाधद्रहेखेव निरायासाद्-नायासारस्यममेदोत्पदात उदोति—तथेति । तयोक्तप्रकारिणकारिमक्रीव सिद्धे इदे बद्धे सित् वैधवनं मूळवंधोद्धीयानवैधजालंधर्वधस्त्रममायासात् 'पार्षिणमार्गण' संपीदच योनि* मार्कुचयेद्ध्युदम्' इत्यादिवस्यमाणमूळवंधादिष्वायासस्तं विनेव स्वयमेवोपजायते स्वत एवोत्पदात इत्यथे: ॥ ४२ ॥

भापार्थ-और इस सिद्धासनके प्रतापसेही चंद्रमाकी कळाके समान जन्मनी कळा विनापरिश्रम उत्पन्न होजाती है और तिसमिकार एक डढ सिद्धासनके सिद्ध होनेपर मूळवंच जड़ी-यानवंच जाळंबरवंघरूप तीनों वंच विनाश्रम स्वयंही होजातेहें अर्थात पार्णिके मार्गसे योनि (छिंग) को मळी प्रकार ट्वाकर ग्रहाका संक्रोच करे इत्यादि वचनोंसे जो मूळवंच आदिमें परिश्रम कहा है उसके किये विनाही तीनों वंच सिद्ध होजाते है ॥ ४२॥

> नासनं सिद्धसहज्ञां न कुंभः केवछोपमः ॥ न खेचरीतमा सुद्धा न नादसहज्ञो छयः॥ ४३ ॥

नासनमिति ॥ विद्येन विद्वासनेन संदश्यासनम् । नास्तीति शेषः' । केवलेन केवल्रङ्गंभकेनोपमीयत १ति केवलोपमः कुंमः कुंमको नास्ति । खेचरीमुद्रासमा मुद्रा नास्ति । नादसदशो लयो लयदेतुनीस्ति ॥ ४३ ॥

मापार्थ-सिद्धासनके समान अन्य आसन नहीं है और केवल हंभकके समान हांभक नहीं है और खेचरी मुद्राके समान मुद्रा नहीं है और नाहके समान अन्य ब्रह्ममें लयका हेतु नहीं है ॥ ४३ ॥

व्य पद्मातनम् ।

वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा क्रसभ्यां दृढम् ॥

अंगुटो हृद्ये निषाय चित्रुकं नासायमाटोकपे-देतहचाधिविनाजकारि यमिना पद्मातनं प्रोच्यते ॥ ४८ ॥

पद्मासनं वक्तुमुपकमते-अधित । पद्मासनमाह-वामोरूपशित ॥ वामो च ऊरुस्त-स्थोपि दक्षिणम् । चकारः पादपूर्णे । संस्थाप्य सम्यगुत्तानं स्थापित्वा वामं सर्व्यं वस्या दक्षिणम् । चकारः पादपूर्णे । संस्थाप्य सम्यगुत्तानं स्थापित्वा वामं सर्व्यं वस्या दक्षिणवायावाद्द्द्रो दक्षिणो य ऊरुस्तस्योपित संस्थाप्य पश्चिमेन भागेन पृष्ठभागेनेति । विधिविधानं कर्त्योगित्यर्थात् । तेन बराग्यां इस्ताभ्यां इदं वयाः स्थात्ताया पादांगुष्ठे भूता गृद्धीता । दक्षिणं करं , पृष्ठतः कृत्वा । वामारुस्यतदिष्ठणः चरणाङ्गुद्धं गृद्धीत्वा वामकरं पृष्ठतः कृत्वा । दक्षिणोरुस्थितवामचरणांगुद्धं गृहित्वस्यवैश हृद्यं हृद्यसमीपे । सामीपिकाधारे संप्रमी । चित्रुकं इतुं निधायोसस्थातुंगुळातेर विद्वकं निधायोति रहस्य । नासाग्रं 'नासिकाग्रमाळाक्येस्पक्रीविधानं चोगिनां व्याधिविनाइं करोतीति व्याधिवास्यां । स्थानं स्वासन्यत्वसामकं प्राच्यति सिक्षीरिति क्रिष्टः ॥

भाषार्थ-अब पत्रास्तको कहते हैं कि, याम जंबाके उत्तर सीधे दक्षिण करणको मही-प्रकार स्थापन करके और तिसीप्रकार सीधे बान चरणको दक्षिण जंबाके उपर मछीप्रकार स्थापन करके और पुरुषागसे जो विधि उससे दोनों हार्यासे दढ रीति करणोंके अंगूर्वोको प्रकु ण (पकड) कर अर्थात पुरुषा किय दक्षिणहायसे बाम जंबापर स्थित दक्षिण करणके अँग-ठेको प्रहुण करके और पुरुष किये बाम हाथसे दक्षि जंबापर स्थित बाम चरणके अँगुरुको प्रहुण करके और दुवके समीप चार अंगुरुके अंतर चिकुक (हतु वा ठोडी) रखकर अपनी मासिकाके अग्रमाणको देखतारहे अर्थात ऐसी स्थिति जिसमें हो यह योगियोंको संपूर्ण व्याधि-र्थोंका विनाशकारक पद्यासन सिद्धांते कहाँह अर्थात इस आसनके स्थानिस संपूर्ण व्याधि नष्ठ होती है। ४ २४ ॥

वत्तानो चरणे। कृत्वा उद्दर्शस्यो प्रयत्नतः ॥ उद्दरमञ्जे तयोत्तानो पाणी कृत्वा ततो हशो ॥ ४५ ॥

मत्स्यंद्रनायाभिमतं पद्मासनमाह-उत्तान विति ॥ उत्तानी ऊरुसंख्यपृष्ठमाणी वरणी पादी भयत्ततः मकुद्दायत्नादुरुसंस्थावृत्तां सम्यक् तिष्ठत इत्युरुसंस्थी ताहको कुत्ता। उत्तीमेंक्ये उद्दमस्थी तत्त्र वार्थि । पाणी क्रायुत्तानी कुत्ता। उरुसंस्थीतानपादीम-यपार्धिणसंख्यपृष्टं सर्व्य पाणिसुत्तानं कृत्व तदुपि दक्षिणं पाणि चोत्तानं कृत्वेत्यर्थः । तत्स्तदनंतरम् । हशी हृद्धी ॥ ४५ ॥

भाषार्थ-अन मत्स्यंद्रनायके कहे पद्मासनको कहते हैं कि, उत्तान चरणोंको वह धल्लेस जंपाळांपर स्थित करके अर्थात वंयाओंपर हमा है पृष्ठमाग जिनका ऐसे चरणोंको उत्तम यल्लेस जंपाओंपर स्थित करके और जंपाओंके मध्यमें उत्तान (सीचे) हाथोंको स्वकर तात्पर्य यहहै कि, जंपाओंपर स्थित नो चरणोंकी दोनों गार्पण उसमें छमा है पृष्ठमाग जिसका ऐसे बामहायको उत्तान करके और उसके उत्तर दक्षिण पार्ण्यिको उत्तान करके और फिर दृष्टि (नेत्रों) को ॥ ४९ ॥

नासाये विन्यसेद्राबदंतपूछे तु बिह्नया ॥ उत्तंश्य चित्रकं वसस्युत्याप्य पयनं ज्ञानैः ॥ ४६ ॥

नासात्र इति । नासात्रे नासिकात्रे विन्यसेद्विशेषेण निश्चहतया न्यसोदित्यर्थः ॥ राजदेतानां देशणां सव्यदक्षिणभागे स्थितानां मुळे उमे मूळस्थाने जिङ्ग्यां एतंम्य उद्दर्भं स्वंमित्सा । ग्रुरुपुसाद्वगंतव्योऽयं जिङ्कादंधः चिछुकं वक्षासि निधायेति शेषः। झनैमेंदंभेदं पवनं वायुष्कत्याप्य । जनेन मूळदंधः प्रोक्तः । मूळदंधोऽपि ग्रुरुपुसादेवान् वर्गतव्यः । वस्तुतस्यु जिङ्कादंवीनयायं चरितार्थं इति इटरहस्यविदः ॥ ४६ ॥

माषार्थ-अपनी नासिकाके अग्रभागमें निश्चरुरूपते हुगा है और राजहन्तां (दाढ़) के मुहोंको जिह्नासे अपर स्तंभन (यांमना) करके और चिश्चकको वक्षस्यरूपर स्वकर यह जिह्नाका बंधन गुरुके गुरुक्ते जानने योग्य है-और इनिः २ पवनको उठाकर इससे मुरुक्ष कहा है यह भी गुरुके गुरुक्ते जानने योग्यहे हुरुह्स्य (सिह्नात वा तन्त्र) के ज्ञाता तो यह कहते हैं कि, जिह्नाके बन्धसही मुरुक्ष्य होसका है ॥ १६ ॥

इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वन्याधिविनाञ्चनम् ॥ दुर्ङमं येन केनापि धीमता उभ्यते भ्रुवि ॥ ४७॥

इदिमिति ॥ एवं यज्ञास्यते तदिदं पद्मासनं पञ्चासनामिधानं मोक्तम् । आसनद्गीरित शेषः । कीदशं सर्वेवां व्याधीनां विशेषेण नाञ्चनं चेनकेनापि मान्यदानेन दुर्छमम् । श्रीमता सुवि भूमी छभ्यते प्राप्यते ॥ ४७ ॥

मापार्थ-इस पूर्वेक्त प्रकारसे आसन छगान्त्र नहीं बेठे वह संपूर्ण व्याधियांका नाराक योगिनमाने प्रभासन वहा है ओर हुळैंग आसन निस किसी झुद्धिमान मनुष्यांको पृथिवीमें निरुता है अर्थात विरखाई। कोई इसको जानता है। अथवा जिस विप्सी मुखको दुर्छन है और इद्धिमानको तो मुभिके विष्कृ मिळसुबदा है॥ ४७॥

कृत्वा भंधु:देती करी दढतरं बद्धा तु पद्मासनं गाढं वक्षित्त सिष्ट्राय चित्रुकं च्यायंश्च तच्चतित्व ॥ वारवारमपानमुर्ध्वमनिर्छ प्रोत्सारयन्प्रितं न्यंचन्प्राणसुर्पेति बोधमतुर्छ शक्तिप्रभावाहरः ॥ ४८ ॥

एतच महायोगिसंमतामिति स्पष्टयिद्धमन्यद्वि पद्मासिते द्वत्यविशेषमाह—कृत्वेति ॥ संपुटिको संपुटीकृतो करानुत्संगस्थाविति शेषः । दृढत्मातिशयेन दृढं सुस्थिरं पद्मान् सनं वद्धा कृत्वेत्यर्थः । चित्रुकं हृतुं गार्ढं दृढं यथा स्यात्तथा वक्षासे वक्षःसमीपे संनि धाय सिनिहितं कृत्वा चतुःगुलांतरेणीते योगिसंप्रदायाज्ञेयम् । जालंधरबंधं कृत्वेत्यर्थः । तत्स्वस्वेष्टदेवतारूपं ब्रह्म वा । जांतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणश्चिविधः स्मृतः'
इति मगवदुक्तेः । चेतिस चित्ते ध्यायम् चितयम् । अपानमनिलम् अपानवायुं ऊर्ध्व
प्रोत्तारयन्धृलवंधं कृत्वा सुपुम्नामार्गेण प्राणमृध्वं नयम् पूरितं पूरकेण अंतर्धारितं
प्राणं न्यंचन्नीचैरधींचन् गमयम् । अंतर्भावितण्यथींडचितः । प्राणापानयोरेक्यं
कृत्वैत्यर्थः । नरः पुमानतुलं वोधं निरुपमन्नानं शक्तिमभावाच्छक्तिराधारशक्तिः
कुंडिल्नी तस्याः प्रभावात्मामध्यीदुपैति प्रामोति । प्राणापानयोरेक्यं कुंडिल्नीवोधो मवति । कुंडिल्निवोधे सुषुम्नामार्गेण प्राणो ब्रह्मर्थं गच्छित । तत्र गते
चित्तस्येर्यं भवति वित्तस्येर्यं संयमादात्मसाक्षास्तारा भवतीत्यर्थः ॥ ४८ ॥

भाषार्थ-यह पद्मासन यहे २ योगियोंको संमत है इस बातको स्पर करते हुये प्रथकार पन्नासनके विषे अन्य भी इत्यको कहते हैं कि, दोनों हाथोंको संपुटित करके उत्संग (गोदी) में स्थित करके और दृढरीतिसे प्रमासनको बाँघकर और चिड़कको दृढ रीतिसे वक्षास्थळके समीप करके यह चार अंगुरुका अंतर! योगियोंकी संप्रदायसे जानना अर्थात इस प्रवीक्त प्रकारसे जाएंधर बंधको करके उस २ अपने इंटडेंच वा अज्ञका चित्तके विषे: वारंवार ध्यान करता हुआ योगी सों तत् सत् यह तीन प्रकारका ब्रह्मनिर्देश (रू.प) कहाँहै क्योंकि यह भगवानने गीतामें कहा है। अपानवासुको उत्परको मोन्तागित (चढाता) करता और मुख बंधको बरके सदहाके मार्गमे प्राणवायुको उपरको (चडाता) हुआ और पूरित किये अर्थात परक प्राणायामसे अंतर्थारण विथे प्राणवायको नीचे गमन करता हुआ अर्थात प्राण और अपानकी एकताको करके मनुष्य जाकि (आधारजाकि छंडाछिनी) के प्रभावले सर्वेतिम जानको पात होता है अर्थात पाण अपानकी एकताके होनेसे खंडाविनीका बोध (प्रकार) होता है इंडिएनीका नीय होनेपर सुपन्नाके मार्गसे प्राण इहरदामें प्राप्त होजाता है और उसमें जानेसे चित्तकी स्थिरता होजाती है-चित्तकी स्थिरता होनेपर संयमसे आत्माका साक्षात्कार होता है अर्थात् शास्त्रज्ञान होजाता है । भावार्थ यह है कि, दोनों हाय संपटित और भटी प्रकार हट पन्नासन लगाय और अपने बक्षास्थलपर विवक्को लगाकर और चित्तमें वारंबार इप्टेबका ध्यान करता हुआ और अपान वायुको उपरको पहुँचता और पूरित किये प्राण वायको नीचेको करता हुया मनुष्य जातिको प्रभावसे उत्तम जानको पास होता है॥ ४८ ॥

पद्मासने स्थितो योगी नाडीद्वारेण पूरितस् ॥ सार्द्धतं धारयेद्यस्तु स सुक्तो नात्र संशयः ॥ ४९ ॥

पद्मासन इति॥ पत्मासने स्थितो योगी योगाभ्यासी पृरितं पूरकेणांतरीतं भारतं वायुं सुषुरनानार्गेण मुश्लेनस् । नीत्वेति दोषः । धारयेत् स्थिरीकुर्यात्स सुकः । अत्र संज्ञयो नास्तीत्यन्वयः ॥ ४९ ॥

भाषार्थ-पद्मासलमं श्वित योगका अभ्यासी नाडीके द्वारा पृरित अर्यात पूरकसे अंतर्गत ((मध्यमं) किये बायुको सुपुद्राके मॉर्गेसे मस्तक पर्यंत पर्धुचाकर जो श्विर करें वह मुक्त है इसमें संज्ञाय नहीं है ॥ ४९॥

व्यथ सिंहासनम् ।

गुरुको च वृषणस्याधः सीवन्या पार्श्वयोः क्षिपेत् ॥ दक्षिणे सन्यगुरुकं तु दक्षगुरुकं तु सन्यकं ॥ ५० ॥

सिंहासनमाइ-गुल्की चोति ॥ वृषणस्याधः अविभागे सीवन्याः पार्श्वयोः सीवन्याः । । अपनामयोः क्षिपेत् प्रत्येत् स्थापयोदीति यावत् ॥ गुल्कस्यापनमकारमेवाइ-दक्षिणः । इति । सीवन्याः दक्षिणे मागे सन्यगुल्कं स्थापयेत् सन्यके सीवन्याः सन्यमागे दक्षि-। भागत्कं स्थापयेत् ॥ ५० ॥

भाषार्थ-अब सिंहालनका वर्णन करते हैं कि, इपणीं (अंडकोष) के नीचे सीवनी नाढींके बोनों पार्थभारोंसिं गुरुपांको रुगावे और दक्षिण पार्थमें वाम गुरुपको और दाम पार्थमें वृक्षि-

जगुल्फको लगावै ॥ ५० ॥

हस्तो तु जान्वोः संस्थाप्य स्वांग्रुळीः सप्तसार्य च ॥ व्यात्तवको निरीक्षेत नासायं सुसमाहितः ॥ ५२ ॥

इस्ताबिति ॥ जान्वोरूपरि इस्तो तु संस्थाप्य सम्यक् जानुसंख्यतली यथा -ह्यातां तथा स्थापथिता । स्वांगुळीः इस्तांगुळीः संग्रतायं सम्यक् प्रसारयिता । -ह्याचववक्षः संप्रसारितङङ्जिङ्गसुद्धः सुसमाहितः एकाप्रचित्तः नासाग्रं नासिकाग्रं धारिमित्रिरोक्षेत ॥ ५१ ॥

भाषार्थ-और जातुओंके उत्पर हार्योंके तर्कोंको भूकी प्रकार रुगाकर ओर अपने हार्योंकी ष्रंप्राठियोंको प्रसारित करके अर्थात् फेलाकर-चंचल है जिह्ना जिसमें ऐसे प्रसको मा (खोल) कर मलीप्रकार सावधान हुआ मतुष्य अपनी नासिकाके अग्रमाणको देखे ॥ ९१ ॥

विंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिषुंगवैः॥ वंधत्रितयसंघानं क्रुस्ते चासनोत्तमम्॥ ५२॥

सिंहासनामिति । एतर्तिहासनं मनेत् । कीट्यं योगिपुंगनेः योगिश्रेष्ठेः पूजितं प्रस्तुतमासनेषुत्तमं सिंहासनं वंधानां मूळवंधादीनां त्रितयं तस्य संधानं सैनिधानं कुरुते ॥ ५२ ॥

भाषार्थ-मोगियोंमें नो श्रेष्ठ जनका पूजित यह सिहासन होता है जोर संपूर्ण आसनीमें उत्तम यह आसन मुळवंध आदि तीनों वंघोंके संघान (सीनेघान वा प्रकट) को करता है॥ ५२॥

ञथ महासनम् ।

गुरुफें। च वृपणस्यायः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिवेत् ॥ सव्यग्रुरुकं तथा सव्ये दक्षग्रुरुकं तु दक्षिणे ॥ ५३ ॥

मद्रासनमाइ-गुरुकाविति ॥ वृष्णस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः सीवन्या उमयतः । गुरुक्ते पादप्रयो क्षिपेत् । क्षेपणमकारवेवाह-सच्यग्रुक्कामिति । सन्ये सीवन्याः पार्श्वे सच्यग्रुक्कं क्षिपेत् । तथा पादपुरणे । दक्षगुरुक्कं तु दक्षिणे सीवन्याः पार्श्व क्षिपेत॥५३॥

भाषार्य-च्य भद्रासनका वर्षन करते है कि, इपणांके नीचे सीवनीके वोनीं। पार्श्वमार्गीर्में इस प्रकार गुल्फोंको रक्षे कि: वामगुल्फको सीवनीके वामपार्श्वमें और दक्षिणगुल्फको दक्षिण-पार्श्वमें लगावर स्थित करें ॥ ५३ ॥

> पार्श्वपादी च पाणिभ्यां हढं वद्धा सुनिश्चलम् ॥ भद्राप्तनं सवेदेतत्सर्वव्याचिविनाश्चनम् ॥ ५८ ॥

पार्श्वपादाविति ॥ पार्श्वपादौ च पार्श्वसमीपमती पादौ पाणिभ्यां सुज्ञाभ्यां दर्ढं चद्भा । परस्परसंख्य्नांगुलिभ्यामुद्रसंख्यनलाभ्यां पाणिभ्यां बहेदृस्वर्थः । पृतद्वद्रासन् भवेत् । कीटशं संवेषां व्याधीनां विशेषेण नाशनम् ॥ ९४ ॥

भाषार्थ-ब्याँर सीवनीके पार्थभागांके समीपमें गये पादांको छुनाओंसे हट बांधकर बर्यात् परस्तर मिळीहुई मिनकी श्यासी ही और जिनका तर हत्वपर स्था हो ऐसे हार्यासे निश्चक रीतिसे बामकर जिसमें रिथन हो संपूर्ण स्थापियोंका नाजक वह भद्रासन होताहै ॥ ९४ ॥

> गोरक्षासनमित्याहुन्दिं ने सिद्धयोगिनः ॥ एनमासनवेधेषु योगींद्रो निगसश्रमः ॥ ५५ ॥

गोरक्षेति ॥ सिद्धाश्य ते योगिनश्य सिद्धयोगिनः इदं भद्रासनं गोरक्षासनामित्याहाः । गोरक्षेण शायशोऽभ्यस्तत्वाद्योरक्षासनमिति वद्यति । आसनान्युक्तानि । तेषु यरक्षतेव्यं सदाह । एवमिति । एवसुक्तेष्यासनविशेषु वंधनमकारेषु विगतः श्रमी यस्य स विगतश्रमः आसनानां वंधेषु श्रमरहितः । योगिनार्निटो योगीटः ॥ ५५ ॥

भाषार्थ-और सिद्ध जो योगी हैं वे इसकेही गोरक्षासन कहते हैं अर्थात पूर्वोक्त गोरक्षनाथने प्राय: इसका अभ्यास किया है इससे इसको गोरक्षासन कहते हैं आसनोंको कहकर उनके कर्तव्यको कहते हैं कि, इस प्रकार आसनोंके बांचनेमें विगत (नष्ट) है अम जिसका ऐसा मोगीन्द्र (अष्टयोगी)-॥ ५५ ॥

> अभ्यतेन्नाडिकाशाद्धिं सुद्रादिपवनाकेयाम् ॥ आसनं कुंभकं वित्रं सुद्राख्यं करणं तथा ॥ ५६ ॥

सम्यतिद्वित । नाडिकानां नाडीनां शुद्धिम् । भाण चिद्दिच्या पिवेलियमितस्^र इति वद्यमाणरूपा सुद्रा वादिर्यस्याः स्वयमेदादेस्ताहशीम् । पवनस्य प्राणसायोः क्रियां प्राणाचामरूपां चार्र्यसेत् । स्यय हट्यम्यसनक्रममाह्-खासनमिति ॥ आसन-सुक्तलक्षणं चित्रं नानावियं क्रमकं 'स्ययमेदनासुःकापी ' इत्यादिवस्यमाणम् । सुद्रा इत्याख्या तस्य तन्द्रद्राख्यं महासुद्रादिख्यकरणं हटसिस्ही प्रकृष्टोपकारकस् । तथा चार्षे ॥ ९६ ॥

भाषार्थ-नाडियोंकी द्यांडेका अभिकाषी और नियमित (स्कें) प्राणको इंडा नामकी नाडिसे पीवे आगे कही इंड यह सुद्रा है आदिमें निसके ऐसी प्राणनासुकी किया (प्राणा-याम) का अन्यास करें। अब ह्यान्यासके कमको कहते हैं कि, पूर्वोक्त आसन और विज (नानाप्रकारका) हुम्भक प्राणायाम और सुद्राहे नाम निसका ऐसा करण ये हठ सिडिमें प्रकुष्ट (उत्तम) उपकारी है इस श्लोकमें तथाद्याव्य चराव्यके अर्थमें है ॥ ५६ ॥

अय नादानुर्हचानमभ्यासानुक्रमो हठे ॥ ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योगपरायणः ॥ अन्हादुर्च्चे भवेत्सिद्धो नात्र कार्यो विचारणा ॥ ५७॥

अयेति ॥ अयेतत्रयानुष्ठाननानंतरं नादस्यानाहतय्वनेग्नुसंधानमनुर्चितनं हठे हट-योगेऽभ्यासेऽभ्यसनं तस्यानुक्रमः पीवोपयेक्रमः । हठिलेद्धेग्वधिमाह्-ब्रह्मचारीति । ब्रह्मचयेवान् मिताहारो वस्पमाणः सोऽस्यास्तीति मिताहारी स्थागी दानशीलो विषयप-रित्यागी वा योगपरायणः योगाभ्यसनपरः । अन्दादश्ट्रक्वे लिद्धः सिद्धहठोभवेत् । अत्रोक्तेऽर्थे विचार्णा स्यात्र वेति संशयप्रयुक्ता न कार्यो एतिविश्चितमेवस्यर्थः ॥५७॥

मापार्थ-इन पूर्वोक्त आसन आदि तीनींके करनेके अनंतर नादका अनुसंपान (जितन) अर्थात कार्नोको दनाकर जो अनाहत ताडनाके विना ध्विन सिदेव अन्तः होती रहती है उसका विचार यह संपूर्ण हटयोगमें अभ्यासका कम है अर्थात इस कमसे हठयोगक अम्यास करे। अब हठयोगकी सिद्धिकी अविधिको कहते हैं कि ब्रह्मचारी और प्रमित भोजी खागी (दानी वा विपयोंका त्यागी) योगमें परायण (योगका अभ्यासी) मनुष्य एक वर्षके अनंतर सिद्ध होजाता है इसमें यह विचार नहीं करना कि होगा वा न होगा अर्थात् निश्चयसे। सिद्ध होजाता है॥ ५७॥

सुस्निग्धमञ्जराहारश्चतुर्थीज्ञाविवार्जितः ॥ भुज्यते ज्ञिवसंप्रीत्ये मिताहारः स उच्यते ॥ ५८ ॥

पूर्वेश्लोके मिताहारीत्युक्तं तत्र योगिनां कीहशो मिताहार इत्यपेक्षायामाह—दुक्ति-ग्वेति ॥ दुक्तिग्वोऽतित्निग्धः स चासौ मबुरख ताह्यः व्याहारश्चतुर्योशिविर्वित्य-तुर्यभागरहितः । तद्कतमियुक्ते-'द्दी मागी पूरयेदकैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत् । वासोः 'संचरणार्थाय चतुर्थमवश्चेवत्' इति । शिवो जीव ईश्वरो वा । 'भोक्ता देवो महेश्वरः' द्वित वचनात । तस्य संगीत्य सम्यक्पीत्यर्थं यो सुज्यते स गिताहार इत्युच्यते॥५८॥ भापार्थ-पूर्व खोकमें जो भिताहारी कहाह उसके ढिये योगियोंके भिताहारको कहते हैं कि, मर्लाप्रकार क्रिक्त (विकत्ता) और मधुर जो आहार वह चतुर्थीग्रसे रहित जिस भोज-नमें शिवजी (जीव वा ईबर) के प्रीतिके अर्थ भक्षण किया जाय वह भिताहार कहाता है सीई इस वचनसे पंडितोंने कहा है कि, उदरके दो भाग अबसे पूर्ण करें (भरें) और एक भागको जलसे पूर्ण करें (भरें) और एक भागको जलसे पूर्ण करें (भरें) और एक भागको जलसे पूर्ण करें होर चौथे मायको प्राण वायुके चलनेके ढिये शेण स्कंत और देव जो महेश्वर वह भोका है देह नहीं ॥ ९८ ॥

कड्म्ख्तीक्ष्णख्यणोष्णह्रसीत्शाक्षांविशसौळतिळप्तर्पपम् मद्यमस्यान् ॥ आजादिमांसद्धितककुळस्यकोळपि-ण्याकाहिंगुळ्ञुनाद्यमपथ्यमाहुः ॥ ५९ ॥

अथ योगिनामपथ्यमाइ द्रास्याम्-किट्टीति ॥ कटु कारवेछ इत्यादि व्यस्क चिचफछादि तीक्षणं मरीचादि छवणं प्रसिद्धम् उष्णं ।गुडादि इरितशाकं पत्रश्चाकं सीवीरं
कांजिकं तैलं तिलसपेपादिस्तेइः तिलाः प्रसिद्धाः सपेपाः सिद्धार्थाः मद्यं द्धारा मस्यो
द्वारा । एपामितरेतरहंद्वः । एतानपथ्यानाहुः । अजस्येदमाजं तदादिर्थस्य सीकरादेस्तदाजादि तच तन्मांसं चाजादिमांसं द्धि दुग्धपीरणामिक्शेपः तकं गृहीतसारं द्धि
कुल्लस्यादिद्वित्वत्विशेषः कोलं कोल्याः फलं बदरम् । 'कक्ष्यूवेदरी कोलिः' इत्यमरः ।
पिण्याकं तिल्पिंदं हिंगु रामठं लशुनम् । एपामितरेतरहंद्वः । एतान्याद्यानि यस्स
तत्त्वया । आद्यशब्देन पलांदुर्गुनमादकद्रव्यमापात्रादिकं ग्राह्मम् । अपथ्यमादितम् ।
योगिनामिति शेषः । बाहुर्योगिन इत्यस्यादारः ॥ ५९ ॥

भाषायं—अब वो श्रोक्षांसे योगियांको अपभ्यको कहते हैं कि, करेला आदि बहु बाँग इमली आदि अन्ल (खद्य) और भिर्च आदि तिहण लग और ग्रुट आदि उप्ण और हिरत शाक (फ्तांका शाक) सीवीर (कांजी) तिल तिल मदिरा मत्त्य इनको अपभ्य कहते हैं और अज (बकरी) आदिका मांस वहीं तक (मठा) बुल्यी कोल (बेर) जिप्पाक (खल) हींग लहसन ये सब हैं आब (पूर्व) जिनके ऐसे प्रलांड (सल्जम) गाजर भादक इन्य उडद ये सब योगीनतोंने योगियांके अपभ्यक्त हैं ॥ ५९॥

भोजनमहितं विद्यारपुनरस्योध्णीकृतं रूक्षम् ॥ अतिरुवणमम्बयुक्तं कद्शनशाकोत्कटं वर्ष्यम् ॥ ६० ॥

मोजनिमिति ॥ पश्चादिमसंयोगेनोष्णीकृतं यहोजनं सपीदनरोटिकादि रूशं घृतादि हीनम् अतिहायितं छवणं यहिंभस्तद्वित्ववणं यहा छवणमतिकांतमित्ववणं चाकृत्वा हित छोके प्रसिद्धं शाकं यवक्षारादिकं च । छवणस्य सर्वेया वर्जनीयत्वाहुत्तरपक्षः साधुः । तथा दत्तात्रेयः—वयः वर्ष्यांने वक्ष्यामि योगविद्यकराणि च । छवणं सर्वेरं चाम्छष्ठं तीकृणं च कृत्वत्व वर्षाते मोजनं त्याव्यमतिनेह्रगतिमापणम् । 'हाते

स्कंदपुराणेऽपि—'त्यनेत्कदुम्छख्यणं सीरभोजी सदा मवेत्' शित । अम्रुस्कतमम्बद्धः विषण युक्तम् । अम्रुस्कतमम्बद्धः । व्याप्त स्वत्यायम्यः । प्रख्यं क्षेत्रस्य । व्याप्त स्वत्यायम्यः । प्रख्यं मात्रं विखपिंखं पिण्याकं कद्मानं कद्मं वावनाळकोद्गवादि शाकं विद्वितत्वरमाकमात्रम् । उत्कटं विदाहि मिर्चीति लोके मसिस्स् । मिर्चा इति हिंदुस्थानभाषायाम् । कद्मान्ति समाहारद्धः । अतिक्वापादिकं वर्ष्यं वर्जनाहिम् । द्वापिति पाठे दुष्टं प्रतिपद्धापित् । अहितामिति योजनीयम् ॥ ६०॥

नापार्य-और इस योगीको ये भोजन अहित है कि, अधिके संयोगसे पुनः (हुनारा) एण किया जो दाल चावल आदि और रूखा अर्थोत पुन आहिसे रहित जिसमें अपिक रूपण हो या जो ख्वाणका भी अन्वर्लवनकारी हो जैसे चावूद्धा नामका द्वानक या जींका खार इन दोनों पश्चोंमें इसेस उत्तरपत्त श्रेष्ठहें कि, ख्यण सर्वया वर्णनाहें सोई इत्ताश्चेय नहा है कि, इसके अनंतर वर्णनोंको और इस योगमें विश्वकारियोंको कहताहूं कि ख्यण सरसों अन्छ द्वार (सिहांजना) तीरिण रूखा अय्वन्त भोजन ये भोजन और अय्वन्त निद्वा और अय्वन्त भाषण ये स्वाच्य है । कंदसुप्राणमें भी खिखा है कि, कर, अम्छ, ख्यण इनको त्यागदे और संदेव वृधका भोजन करें । अम्ब्यसे युक्त भी पदार्य त्यागने योग्यहें तो साक्षात अम्छ क्यों म होगा । इसमें तीसरा पद कोई यह पदने हें कि पख्छं या तिल्पिंड जसका यह अर्थ है कि, मास और खळको वर्णने जींस जिस जदरमें जळन हो ऐसे मिर्च आहि ये सच आति ख्वण आदि बांकित हो जोर वर्ष्य इसिट स्वाममें सुटें यह पाठ होय तो वह इष्ट पृति (हर्गीप्त) और भुन-चित (बासी) आदिभी आहित्त ॥ १० वीर

> विह्नस्त्रीपिथेसेवानामार्वे। वर्जनमाचरेत् ॥ ६१ ॥ तथाहि गोरस्वचनम्-"वर्जेयहुर्जनप्रति विह्नस्त्रीपिथेसेवनम् । प्रातःस्नानोपवासादि कायक्केशाविधि तया" ॥

एवं योगिनां सदा वज्योन्युक्तवाभ्यासकाले वज्योन्याहाँधेन-यहाँगि ॥ वहिश्च स्त्री स एकाश्च तेषां तेवा वाहेतिवनहाँभातीय्याशायमनादिक्यास्तासां वर्षेनमादावभ्यास-काले जावतेत् । सिष्टेभ्भानेते हु कदांचित् । शोते वहितेवनं गृहस्थस्य ऋते स्वभा-काले जावतेत् । सिष्टेभ्भानेते च न निषिद्धभित्यादिपदेन स्ट्यते । तत्र भमाणं बोरद्धवन्तमवत्याति—तथाहीति । तत्पठते—जग्रेगेदिति । दुर्जनमातं दुर्जनसमिपवासस्य दुर्जनभीतिमिति कवित्यादः । वहिद्धीपथिसेवनं व्याख्यातं शातास्तानं उपवासश्चादि-वस्य फलाहारादेः तस्र तथाः समाहारद्धः । अयमाभ्यासिनः मातःसानं इतिविकारो-वस्य फलाहारादेः तस्र तथाः समाहारद्धः । अयमाभ्यासिनः मातःसाने इतिविकारो-

Š

7

:

त्पत्तेः । उपवासादिना पितासुत्पत्तेः । कायक्वेद्राविधि कायक्वेत्रकरं विधि क्रियां बहुस्-र्यनमस्कारादिरूपां बहुमारोहहतादिरूपां च । तथा समुच्चये । अत्र प्रतिपदं वर्षये-दिति क्रियासवधः ॥ ६९ ॥

सापार्थ-इस प्रवार पोगिरोंको जो सदेव कालमें वाजित हैं उनको कहकर योगके समयमें जो वाजित हैं उनको कहते हैं कि विद्व की मार्ग इनकी सेवा व्यर्गत् अग्निको सेवा ख्रीस्ता तिर्ययावागमन इनका वर्जन अन्यासके समयमें की और अन्यासके सिद्ध होनेपर कदाचित्रही वर्जने । ज्ञीतकालमें अग्निका सेवन गृहस्थको उन्तके समय न्यभाषांगमन और तीर्थयावा ओंदिमें मार्ग गमन निषिद्ध नहीं है यह आदि पटसे सूचित किया । उसमें प्रमाणक्रप गोरक्षका वचन कहते हैं कि, दुर्जनके समीपका वास और कहीं यह पार्वहे कि, ठुर्जनके सेग प्रतिकारकालकान और उपवास आदि । यहाँ वर्षों क्रिया । उसमें प्रमाणक्रप साम्यक्रप कार्यक्र कार्यक्र आग्निक सेरा प्रतिकार कार्यक्रप कार्यक्रप आग्निक कार सामिक्य कार्यक्रप क

गोधूमशाल्यियपाधिकशोभनात्रं शीराज्यखंडनवनीत-सितामधूनि ॥ शुंठीपटोलकफलिकपंचशाकं छुद्रादि-दिव्यमुद्दकं च यमींद्रपृथ्यम् ॥ ६२ ॥

व्यय योगिपध्यमाइ-गोयूमेस्यादिना ॥ गोयूमाश्य शाल्यश्य यवाश्य पाहिकाः पृष्ट्या दिनेयं षच्येत तंदुलिविशेपास्ते शोमनमन्नं पवित्रात्रं श्यामाकनीवारादि तन्देव-तेपां समाहारहंदः । शीरं दुग्धमान्यं पृतं तंदः शक्रंश नवनौतं मधितद्विसारं सिता तीव्रवद्दी तंदः शक्रंश नवनौतं मधितद्विसारं सिता तीव्रवद्दी तंदः शक्रंश नवनौतं मधितद्विसारं सिता तीव्रवद्दी तंदः शक्रंश नवनौतं मधितद्विसारं सिता तिव्रवद्दंः । शुंठी मसिद्धा पटीलफलं परवर इति भाषायां मसिद्धं शाक्षं तदादियंस्य कौशातक्यादेस्तरपटोलकफललादिकं "शेषादिमाया" इति कमत्ययः । पंचानां शाक्षान्य समाक्षारः पंचशांकम् । तदुक्तं वैद्यके—'सर्वशाकमचाक्षुण्यं चाक्षुण्यं शाक्षंचकम् । कीव्रतिक्तं सित्रविद्यात्यात्रविद्यात्यात्रविद्यात्रविद्यात्रविद्यात्रविद्यात्रविद्यात्रविद्यात्रविद्या

भाषार्थ-अब योगियंकि एव्यका वर्णन करते हैं कि, गेहूँ शाब्धि (बावब्ध) जो और पाष्टिक (साठी) और पानित्र अब (श्यामाक नीवार आहि) हुए थी खोड नीनी थी सिता (मिसरी) भग्न (सहत) हूँठ पटोट फट (परवट) आहि, पांच शाक मूंग आहि, आहि पद्मे आहकी और दिव्य जट अशीत निर्देश जरू ये योगियोंमें जो इंट्रेहें उनके एव्य हैं वैयक्कें भी ये पांच शाक एव्य कहें हैं कि, संपूर्ण शाक अवाह्ययहें अर्थात नेवींका हितकारी नहीं हैं कित्ते ये पांच शाकही बाक्ष्य हैं कि, जीवन्ती वास्तु (ब्युवा) मृत्याक्षी मेघनाद और पुननेवा॥ ६२॥

पुष्टं सुमञ्जरं रिनम्धं गव्यं घातुत्रघोषणम् ॥ मनोभिन्नषितं योग्यं योगी योजनमाचरेत् ॥ ६३ ॥

ष्य योगिनो मोजनियममाइ—पुष्टमिति ॥ पुष्टं देहपुष्टिकसमोदनादि धुमधुरं शर्कः साद्मसिहतं स्निग्धं सभूतं गव्यं गोद्धन्यष्ट्वतादिधुक्तं गव्याळामे माहिषं द्वाधादि प्रह्मस् साद्धमपोषणं लङ्डुकापूपादि मनोमिलितं पुद्यदिष्ठ यनमनोरुचिकरं तदेव योगिनां मोक्कवम् । मनोमिलितमिष किमविहितं मोक्कवम् । मनोमिलितमिष किमविहितं मोक्कवम् । मनोमिलितमिष किमविहितं मोक्कवम् । योगी मोजनं पूर्वेक्तियेवेक्सिक् विद्याद्वादि स्वयं । योगी मोजनं पूर्वेक्तियेवेक्षिणे विद्याद्वाद्वादित्ययं । नं तु सक्तुमानिक वाह्यादिना निर्वादं क्रयोदिति सावः ॥ ६३ ॥

मापार्थ-अब योगीके भोजनींका नियम कहते हैं कि ओदन आदि देह (ग्रष्टिकारक 'ओर इक्त्रा आदि मझर और पुतसाहित भोजन और उप्य पृत आदि गच्य यदि गीके पृत आदि म भिछे तो भैंसके प्रहण करने और धातृपोपक (छड्ड पूआ आदि) इनमें जो अपने मनको प्राण्डित हो उस योग्य अर्थात शाखविहित भोजनको योगी कर ओर सन्तु भुने अब आदिसे

निर्वाह न करे ॥ ६३ ॥

युना बृद्धोऽतिबृद्धो वा न्याधितो दुर्बेखोऽपि वा ॥ अभ्यासात्सिद्धिमाप्रोति सर्वयोगेष्वतंद्वितः ॥ ६८ ॥

योगाभ्यासिनो वयोविशेषारोभ्याद्यपेक्षा नास्तीत्याह—युवेवि ॥ युवाः तरुणः वृद्धोः वृद्धावस्यां प्राप्तः व्यतिश्रेष्ठाद्येवार्ष्टकः गतो वा । वश्यासादासनर्छभकादीनामभ्यसना-ित्सिद्धं समाधितत्करूक्षमामाभोवी । वश्यासमकारमेव वदन्विशिनष्टि—सर्वयोगोष्ट्यति । स्वैवु योगोष्ट्रविद्याद्याः । जीवन-साधिन कृषिवाणिज्यादौ जीवनश्चन्द्रप्रयोगवस्साक्षात्परंपर्या वा योगसाधनेयु ,योगांगेवु योगान्वद्याद्याः ॥ ६४ ॥

भाषार्थ-अब इस बातका वर्णन करते हैं कि, योगके अन्यासीको अवस्था विशेष और इनेंड आरोग्य आदिकी अपेका नहीं है कि युवा हो इद्ध वा अतिरुद्ध हो रोगी हो वा दुनेंड हो अन्यास्से आसन कुम्पक आदिके करनेसे समाधि और उसके फरको प्राप्त होता है । अन्या-सके सक्तपको कहते हैं कि, सम्पूर्ण जो योगके अंग उनमें आहस्य न करें. यहां योगके साधन योगांगों इस प्रकार योग शब्दका प्रयोग है जैसे जीवनके साधन कृपि वाणिज्य आदिमें जीव-नशुब्दका प्रयोग होता है॥ ६४॥

क्रियाष्ट्रकस्य सिद्धिः स्याद्क्षियस्य कृथं भवेत् ॥ न ज्ञास्रपाठमानेण योगतिद्धिः प्रजायत् ॥ ६५ ॥

धभ्यासादेव तिद्धिभैवतीति द्रहयन्नाह हाभ्यास-क्रियायुक्तस्येति ॥ :क्रिया योगां-क्षत्रुञ्जनकपा तथा युक्तस्य सिद्धियोगसिद्धैः स्यात् । अक्रियस्य योगांगत्रुज्ञनसृहितस्य क्यं मबेन्न कथमर्गत्यर्थः । नतु योगशास्त्राध्ययनेन योगशिद्धः स्यान्नेत्याइ—नेति ॥ शास्त्रस्य योगशासास्य पाटमात्रेण क्षेत्रछेन पाटन योगस्य सिद्धिनं प्रजायते नैव जायत इत्यर्थः ॥ ६५ ॥

भापार्य-अब अभ्याससे सिद्धि होती है इस बातको दृढ करनेके दिये हो २ श्लोकोंको कहते हैं कि योगोगीके करनेमें जो युक्त उस पुरुषको योगोसिद्धि होती है और जो योगोगीको नहीं करता उसको योगकी सिद्धि नहीं होती कदाबित कहो कि, योगशासके पढनेसे सिद्धि होजा-यंगी सो ठीक नहीं क्योंकि योगशास्त्रके केन्छ पढनेसे योगसिद्धि नहीं होती ॥ ६९॥

न देषधारणं सिद्धेः कारणं न च तत्कथा । क्रियेन कारणं सिद्धेः सत्यमेतव्र संशयः ॥ ६६ ॥

नीते ॥ वेपस्य काषायवस्र देः धारणं तिस्त्रेपातिस्त्रेः कारणं न । तस्य योगस्य कया वा कारणं न । कि तर्ढि विद्धेः कारणनित्यत् बाह-क्रियेवेति ॥ ६६ ॥

भाषार्थ-नेष्ट्से रंगे दस्र आि्रा धारण सिद्धिका कारण नहीं और योगशास्त्रकी क्या भी सिद्धिका कारण नहीं यह सत्य ह इस्में संज्ञय नहीं ॥ ६६ ॥

पीठानि कुंभकाश्चित्रा दिन्यानि करणानि च ॥ सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोगफळावाधि ॥ ६७ ॥ इति श्रीष्ठहणानं इसंतानचितामणिस्वात्मारामयोगीन्द्र-विरचितायां, हटयोगप्रदीपिकायासासनविधिक-यनं नाम प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

योगांगानुष्टानस्याविधमाइ—पीटानीति ॥ पीटान्यासनाति चित्रा अनेकाविधाः कुंभकाः सूर्यभेदादयः दिन्यान्युत्कृष्टानि नरणानि महान्द्रावीनि इठसिद्धौ प्रकृष्टोपक रक्षत्वं कारणावं इटाभ्यासे सर्गाणि पीटकुंभककरणानि राजयोगफछावधि राजयोग एव फर्छ तबुवधि तस्पर्यंसं कर्नट्यानीति होषः॥ ६७॥

इति श्रीहरुयोगपदीपिकायां ब्रह्मानंदक्रतायां ज्योतस्नामियायां दीकायां प्रयमोपदेशाः 🕨 १ ॥

भापार्य-अन योगांगोंके करतेकी अवधिको कहते हैं कि, पूनेंक्त आहन और अनेक प्रकारके हम्मक आदि प्राणायाम महाग्रहा आदि दिव्य करण ये संपूर्ण हठयोगके अन्यासमें राजयोगके फरवर्षित करने योग्य हैं अर्थात् ये राजयोगमें प्रक्रप्ट उपकारक हैं क्योंकि प्रक्रुष्ट के उपकारक कही करण होता है ॥ ६७ ॥

इति श्रीसहज्ञानंद्रसंतानचिन्तामणित्वात्माग्रमयोगोन्त्रविश्चतह्रव्योगप्रदीषिकायां छाँखप्रामनिवासि पं॰ निहिरचंद्रकुतमापाविद्यतिसहितायामासनविधिकथनं नाम प्रयमोपडेजः ॥ १ ॥

षय दितीयोपदेशः २.

अथासने हटे योगी वशी हितमिताशनः ॥ ग्रह्मदिष्टमार्थेण प्राणायामान्समभ्यसेत् ॥ १ ॥

अथासनोपदेशानंतरं प्राणायामान्वयतुमुपकमर्वे न्यथित ॥ अथिति मंगलायः । आसने हेटे सित वशी जिताक्षः हितं पथ्यं च तन्मितं च पूर्वोपदेशोक्तरुक्षणं तत्ता-हश्मशानं यस्य स हितामताशनः गुरुणोपदिष्टो यो मार्गः प्राणायामाभ्यासप्रकार-स्तेन प्राणायामान् वश्यमाणान्सम्यगुत्साहसाहसधैर्योदिभिरभ्यसेत् । हेटे स्थिरे क्रब्हदादिविवर्जिते सिद्धासनादाशिते वा योजना ॥ १ ॥

मापार्थ-आसतींके उपदेशको कहकर प्राणायामीके कहनेका प्राप्त करते हैं । इस खोकने अथश्चन्द मंगळके लिये है वा अनंतरका वाचक है इसके अनंतर आसनींकी टढता होनेपर जीती हैं इन्द्रियं जिसने हित (पथ्य) और पूर्वींक प्रमित है भोजन जिसका ऐसा योगी ग्रुकके उपदेश किये मागसे आगे वर्णन किये प्राणायामींका मळीमकार अभ्यास करे-अर्थात

उत्साह-साहस-धीरता आदिसे प्राणायामीके करनेमें मनको छगाँवे ॥ १ ॥

चले बाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत् ॥ योगी स्थाणुल्यमाप्रोति ततो वायुं निराधयेत् ॥ २॥

भयोजनामनुदिश्य न मंदोऽपि प्रवर्ततें हाति महदुक्तेः प्रयोजनाभावेन प्रवृत्त्यभावार् प्राणाचामप्रयोजनमाह-चले वात हाति ॥ वाते चले साति चित्तं चले योगी स्थाणुतं वाते निश्चलं भवेषिकामित्यशापि संबंध्यते। वाते चित्ते च निश्चले योगी स्थाणुतं स्थिरदीर्धनीवित्तमिति थावत्। ईशस्तं वामीति । ततस्तस्माद्वाशुं प्राणं निरोधयेत्कुं-मयेत् ॥ २ ॥

भाषार्थ-कदाचित् कहो कि, प्रयोजनके विना मंद भी प्रवृत्त नहीं होता-इस महार पुर-षोंके वचनसे प्रयोजनके अभावसे प्राणायामाँमें योगीकी प्रवृत्ति नहीं होगी इसिटिये प्राणाया-मौंका प्रयोजन कहते हैं कि, प्राणवायुके चळायमान होनेसे वित्तमी चळायमान होता है-और प्राणवायुके निश्चल होनेपर चित्त भी निश्चल होता है और प्राणवायु और .चित्त इन दोनोंके निश्चल होनेपर योगी स्याणुरूपको प्राप्त होता है अर्थात स्थिर और दीवें कालतक जीता है ।तिससे योगी प्राणवायुका निरोध करें क्यीत् हम्भकप्राणायामोंको करें-॥ २॥

यानद्रायुः स्थितो देहे तावज्जीवनम्रुच्यते ॥ मरणं तस्य निष्क्रीतिस्ततो वायुं निरोधयेत् ॥ ३ ॥

यागदिति ॥ देहे भरीरे यागरकार्छ वायुः प्राणः स्थितः तागरकारुपर्यतं जीवनष्टः च्यते छोकैः । देहत्राणसंयोगोस्येव जीवनपदार्थत्वात् । तस्य प्राणस्य निष्कांतिर्देहा-द्विभोगे मरणप्रुच्यते । ततस्तस्माद्वायु निरोधयेत् ॥ २ ॥ भाषार्थ-जबतवः शरीरमें प्राणवायु स्थित है तवतकही जगत् जीवनको कहता है क्योंकि देह जोर प्राणका जो संयोग है वहीं जीवन कहाता है और उस प्राणवायुका जो हेहसे वियोग (निकसना) उसकोही भरण कहते हैं तिससें, जीवनके लिये प्राणवायुके निरोध (रोकना) इ.प. प्राणायामको करें ॥ ३ ॥

मठाकुरु।सु नाडीषु मास्तो नैव मध्यगः ॥ कथं स्यादुःमनीभावः कार्यक्षिद्धिः कथं भवेत ॥ १ ॥

मध्युद्धेहेटसिद्धिननकतं व्यतिरेक्षेणाह्-मध्युक्तास्त्रति ॥ नाडीषु मछैराकुलासु व्यासासु सतीषु मानतः प्राणो मध्यमः सुपुम्नामानवाही नैव स्यात् । आपि तु सुद्ध-मखास्त्रेव मध्यमो भवतीत्वर्यः । उन्मनीभाव उन्मन्यामान्नो भवनं कथं स्यान क्यमपी-त्यर्थः । कार्यस्य कैवस्यरूपस्य सिद्धानिष्यिः कथं भवेत्र कर्यास्वर्यपित्यर्थः ॥ ४ ॥

भापार्थ—अय मरुकी शुद्धि इञ्योगसिद्धिका जनक है इस बातको निपेश्मुखसे वर्णन करने हैं कि, जनतक नाडी मल्से व्याहरू (व्यात) हैं तबतक प्राण मध्यम नहीं होसकता अर्थात मुपुन्ना नाडीके मार्गसे नहीं चल सकता किंतु मल्डगृद्धि होनेपर ही मध्यम होसकता है तो मलसेयुक्त नाडियोंके विद्यान रहते उन्मनीभाव केसे होसकता है और मोक्षक्रप कार्यकी सिद्धि केसे होसकता है और मोक्षक्रप कार्यकी सिद्धि केसे होसकती है अर्थात नहीं होसकती । सुपुन्नानाडीके प्राणसंचार होनेको जन्मनीभाव कहते पें ॥ ४ ॥

ज्जुद्धिमोति यदा सर्वे नाडीचक्रं मछाकुछम् ॥ तदेव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः ॥ ५ ॥

ब्यन्त पेतापि मळशुब्देई उत्तिब्रहेतुत्वमाह्-शृद्धिमेतीति। यदा यहिमन्त्राले मळेराकुळं व्याप्तं सर्वं समस्तं नाडीनां चर्कं समुद्धः श्लाद्धं मळराहित्यमेति प्राप्नोति तदेव तिस्मित्रव काळे जोगी योगाभ्यासी प्राणस्य प्रदृणे क्षमः समर्थो जायते ॥ ५ ॥

नापार्थ-और महांसे व्याक्छ संपूर्ण नाहियोंका समूह जब छुद्धिको प्राप्त होता है उसी कार्लम योगी प्राणवायुके संब्रहण (रोकना) में समय होता है, इस खोकसे यह चात वर्ण-न की कि, अन्वयसेही मरुद्धादि-हृज्यांग सिद्धिकी हेतु है अर्थात् इन पूर्वोक्त अन्वयव्यतिरेक कारणोंसे योगी मरुद्धादिकेहिये प्राणायामांका सदैव अभ्यास करे ॥ ५॥

प्राणायामं ततः कुर्योत्रित्यं सात्त्विकया धिया ॥ यथा सुष्टमनानाडीस्था मळाः कुद्धि प्रयाति च ॥ ६ ॥

मल्जुद्धिः कथं भवतीत्याकांक्षायां तच्छोधकं प्राणायाममाह-प्राणायाममिति ॥ यतो मल्जुद्धिः विना प्राणसंग्रहणे क्षमो न भवति ततस्तरमादीश्वरप्राणिधानोत्सारसाहसाः दिश्यत्नाभिभृतविक्षेपालस्यादिराजसतामत्वर्भया सात्त्वक्रया प्रकाशप्रसादकील्पा धिया बुद्धचा नित्यं प्राणायामं कुर्योत् यथा येन प्रकारेण सुषुम्नानाड्यां स्थिता मलाः क्षाद्धमपगमं प्रयांति नक्यंतीत्ययः॥ ६॥ मापार्थ-अब मान्युटिके हेतु प्राणायामको कहते हैं जिस कारण योगी मान्युटिके विना कारणाँके संग्रहणमें समर्थ नहीं होता तिससे सास्थिक दुव्हिसे प्राणायामको 'तित्य करे अर्थात ईश्वरका प्राणिधान उत्साह साहस आदि यत्नाँसे तिरस्कारको ग्राप्त मये हैं विक्षेप आरुत्य आदि स्त्रोगुणी धर्म जिसके ऐसी सात्यिक अर्थात् प्रकाशमान और प्रसन्न दुद्धिसे सदेव प्राणायाममें उस प्रकार तत्यर रहे जिस प्रकारसे सुपुन्ना नार्डीमें स्थित संपूर्ण मान्युटिको प्राप्त होय क्षयाँत् नष्ट होनाय ॥ ६ ॥

बद्धपद्मापनो योगी प्राणं चंद्रेण पूरवेत् । घारवित्वा यथाशक्ति भूयः सूर्येण रेचयेत ॥ ७ ॥

मलक्षोधकपाणायामप्रकारमाह द्वार्ग्यास-चह्नपद्मासन इति ॥ चद्रं वद्मासनं येन बाहको योगी प्राणं प्राणवायुं चेद्रेण चंद्रनाङ्चेडया पूर्यत् । शक्तिमनातिकस्य यथा-स्रांक धारियत्वा कुंभवित्वा भूयः पुनः सर्येण स्पर्यनाड्या पिंगळ्या रेचयेत् । वाहा-वायोः प्रयत्नविशेषाद्वपादानं पूरकः । जालंधपादिचंधपूर्वकं प्राणानिरोधः कुंमकः । कुंभितस्य वायोः प्रयत्नविशेषोद्रमनं रेचकः । प्राणायाप्रागिरेचकपूरकयोरियो हिस्सणे इति । भक्षावङ्गोहकारस्य रेचपूरी ससंभ्रमी इति गोणरेचकपूरकयोर्गिव्याप्तिः । तयो-रुक्ष्यत्वामावात ॥ ७ ॥

भाषार्थ—अन भठके ज्ञोबक प्राणायामके प्रकारको कहते हैं कि, बांघा है प्रमासन निसने ऐसा योगी प्राणवायुको चंद्रनाढी (इडा) से पूर्ण बरेंदे अर्थात चढ़ाने फिर उसको अपनी ज्ञाकिक कानुसार धारण करके कार्यात इनक प्राणायाम करके फिर सूर्यकी नाडी (पिंगळा) से प्राण-वायुका रेचन करे कार्यात छोड़े । बाहरकी बायुका जो प्रयत्न विशेषसे बहुण उसे पूरक कहते हैं और जाळंवर आदि वंचपूर्वक जो प्राणांका निरोच उसे वंभक कहते हैं के और ज्ञाक अपने कार्यात प्रकार कार्यात प्राणांका प्रयत्न विशेषसे गमन उसे रेचक कहते हैं ये रेचक और पुरकके छक्षण उन्हीं रेचक प्रकारके हैं जो प्राणायामींके अंग है इससे वचनमें गीण रेचक पुरक कहे हैं उनमें अव्याप्ति नहीं क्योंकि वे छर्मही नहीं कि छोहकारकी मुखाके समान रेचक और पुरकको संव्याप्ति करें।।७

प्राणं सुर्थेण चाक्रव्य पूरवेदुद्रं ज्ञनेः ॥ विधिवत्स्तंभकं कृतवा पुनश्रंद्रेण रेवयेत् ॥ ८ ॥

प्राणमिति ॥ सूर्येण सूर्यनाड्या पिंगलया प्राणमाकृष्य गृहीत्वा शनैमेंद्रमंद्रह्वरं बटरं पूर्वत् । विधिवद्रंधपूर्वकं कुंमकं कृत्या प्रकृत्यक्षेद्रेणेड्या रेचयेत् ॥ ८ ॥

भागर्य-और सर्यकी नाडी फिालसि प्राणका आकर्षण (खींचना) करके इतिः इतिः खरको प्ररणकरे फिर विधिसे हुंसक (धारण) करके चंद्रमाकी इटा नामकीं नाडीते रेचन धरे अर्थात् प्राणवायुको छोडदे ॥ ८॥

येन त्यनेत्तेन पीत्वा घारयेद्दतिरोघतः ॥ रेचयेच ततोऽन्येन झनेरेव न वेगतः ॥ ९॥ उक्ते प्राणायामे विशेषमाह्-येनेति ॥ येन चंद्रेण वाः त्येजेट्रेचयेक्तन पीत्वा पूर-यित्वा । स्रातिरोधवोऽतिश्चायितेन रोधेन स्वेद्कंपादिजननपर्यतेन । सार्वविभाक्तिक-स्तिसिल् । येन पूरकस्ततोऽन्येन श्चनैरेचयेन्न सु वेगतः वेगाद्रेचने वलद्वानिः स्यात्। येन पूरकः कृतस्तेन रेचको न कर्तव्यः । येन रेचकः कृतस्तेनैव पूरकः कर्तव्य इति मावः ॥ ९ ॥

भापार्थ-अब उक्त प्राणायाममें विशेष विधिको कहते हैं कि, जिस चन्द्रमा शा सूर्यकी नाडोंसे प्राणवायुका त्याग (रेडन) करें उसी नाडोंसे पान (पूरण) करके अत्यंतरोधन (रेकना) से अर्थाद स्थेट ऑर कप्पके पर्यंत धारण करें। फिर जिससे पूरक किया हो उससे अन्य नाडींसे श्रोत होने: रेचन करें थेगसे नहीं क्योंकि थेगसे रेचन करेंनीमें बरूकी हानि होती है अर्थाद जिस नाडींसे पूरक किया हो उससे रेचक न करें और जिससे रेचक कियाहों उससे रेचक न करें और जिससे रेचक कियाहों उससे रेचक न करें और जिससे रेचक

प्राणं चेदिडया विनेत्रियमितं भ्रूयोऽन्यया रेचये-त्पीत्ना विंगळ्या समीरणमथी वन्हा त्यजेद्वामया ॥ स्रूयांचंद्रमसोरनेन विधिनाभ्यासं सदा तन्नतां भ्रुद्धा नाडिगणा भवेति यांमेनां मासत्रयादुष्वेतः ॥ १०॥

वद्धपद्मासन इत्याद्यक्तमधै पिंडी कृत्यात्ववद्न्याणायामस्यावांतरफलमाइ—आणामिति॥
चेदिद्या वामनादचा प्राणं विवेदपुरिवत्ताई नियमितं कृंमितं, प्राणं भूयः पुनरन्यया
विगलया रेचवेत् । पिंगल्या दक्षनाडचा समीरणं वाश्चं पीत्वा पूर्तियत्वायो पूर्णानंतरं
वध्या कुंमियत्वा वामचेदया त्यमेद्वेचयेत् । सूर्यंथ्य चंद्रमाश्च सूर्याचंद्रमसी त्रयोः " देव-ताद्वेद्रे च " इत्यानङ्ग । अनेनोक्तेन विधिना प्रकारेण सदा नित्यमभ्यासं चंद्रेणापूर्यं कुंमियत्वा सूर्येण रेचवेत्सूर्येणापूर्यं कुंमियत्वा च चंद्रण रेचयेदित्याकारकं तन्वतां विस्तारयतां यमिनां नाडीभाणा नाडीसमृहा मासचयादूर्व्वतो मासानां त्रयं तस्मादुपरि खुद्धा मलराहिता मर्वति ॥ १० ॥

भापार्थ-पूत्रोंक्त आठ रहोकोंसे वर्णन किये तात्पर्यको एकन करके अनुवाद करते हुए श्रन्थ-कार प्राणायामके श्वान्तर फठको कहते हैं, यदि योगी इडासे अर्थात वामनाहीसे प्राणका पान (पूरण) करे तो नियमित इंभित वस प्राणको फिर टूसरी पिंगला नाडीसे रेचन करे और यदि पिंगलासे प्राणको पींचे अर्थात दक्षिण नाडीसे वाछ पूरण करे तो उस प्राणवासुको वांध-कर अर्थात दुंगित करके, इडाक्टर वामनाडीसे प्राणवासुका रेचन करे । इस पूर्वोक्त सूर्य और चंद्रमाको विधिसे अर्थात् चन्द्रमासे पूरण और हुम्भक करके सूर्यसे रेचन करे और सूर्यसे पूरण और सुम्भक करके चंद्रमासे रेचन करे इस पूर्वोक्त विधिसे संदेव अभ्यास करते हुए योगिजनोंके नाहियोंके गण तीन मासके अनंतर शुद्ध होते हुँ अर्थात् निर्मल होजाते हैं ॥१०॥

पातर्मध्यंदिने सायमर्धरात्रे च कुंभकाच् ॥ शनैरशोतिपर्यंतं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥ ११ ॥

भाषार्थ-अव प्राणायामके अभ्यास काल और उसकी अवधिको कहते हिं-कि, प्राताकांळ अर्थात अरुणोद्यसे छेकर सूचोद्यसे तीन चडी दिनचेढे तक और अव्याहमें अर्थात पांच माग किये दिनके मध्य भागमें और सायंकाल अर्थात सूर्यास्तसे पूर्व और सूर्यास्तके अनंतर तीन चडीहरूप संध्याके समयमा और अर्द्धराज्ञमें अर्थाद ग्राजिके मध्यमागके दो छहताँमें इनिः इनिः इने प्रात्ति समयमें और अर्द्धराज्ञमें अर्थाद ग्राजिक मध्यमागके दो छहताँमें इनिः इनिः इने प्रात्ति (८०) प्राणायाम करे यदि अर्द्धराज्ञमें कर-विशे असमर्थ होय तो तीन कालमेंही अस्ती २ प्राणायाम करे, थात्वार करे तो (३२०) तीनसी बीस प्राणायाम होते हैं-तीनबार करे तो (२४०) दोनिसीचालिस होते हैं ॥ ११॥

कनीयारी अवेत्स्वेदः कंपो भवति मध्यमे ॥ उत्तमे स्थानमाप्रोति ततो वायुं निबंधयेत् ॥ १२ ॥

किष्ठमध्यमोत्तमानां प्राणायामानां क्रमण व्यापकविशेषमाह—कनीयसीति ॥ कनी॰ यसि किनिष्ठ प्राणायामे स्वेदः प्रस्वेदो भवेद्भवति ॥ स्वेद्धसुमेयः किनष्ठः । मध्यमे प्राणायामे कंपो मवि । कंपानुमेयो मध्यमः । उत्तमे प्राणायामे स्थानं ब्रह्मांश्रमाः भोति । स्थानप्राप्यनुमेय उत्तमः । ततस्तरमाद्धार्षु प्राण निवंधयेक्रितरां वंधयेत् । किनश्यित्वां लक्षणसुक्तं किंग्रपुराणे—प्राणायामस्य मानं न्तु मात्राद्धह्माकं स्पृतम् । नीचो द्धावस्यात्रस्त सङ्गुद्धात ईरितः । मध्यमस्तु द्विरुद्धातश्चात्रस्य स्थाक्रमम् । आनंदो जायते चात्र विद्वात्रस्य स्थाक्रमम् । आनंदो जायते चात्र विद्वात्रस्य यथाक्रमम् । आनंदो जायते चात्र विद्वात्रस्य स्थाक्रमम् । आनंदो जायते चात्र विद्वात्रस्य स्थाक्रमम् । आनंदो जायते चात्र संविन्तर्युः जवेद्यदा ॥ तदोत्तमः शति मोक्तः प्राणायामः सुज्ञोमनः । "इति ॥ धूमश्चित्तादेकनम् । गोरक्षोऽपि-'अपमे द्वाद्य गोक्ता मध्यमे द्विग्रणाः स्पृताः । उत्तमे विद्युणाः सात्राः प्राणायामे दिज्ञीत्तर्यः । उत्ति चार्यं विद्युणाः सात्राः प्राणायामे दिज्ञीत्तर्वेत

(83 }

एतदुद्धातलक्षणम् । ' मात्रामाइ याजनल्क्यः-'वंगुष्ठांगुलिमोक्षं त्रिखिर्जानुपरिमार्ज-नम् । ताल्त्रयमपि प्राज्ञा मात्रारुज्ञां प्रचलते ॥ स्कंदपुराणे-एकश्वासमयी मात्रा प्राणायामी निगद्यते !' प्रतद्व्याख्यातं योगचितामणी-'निद्रावशंगतस्य प्रंसी यावता कालेनैकः श्वासो गच्छत्यागच्छति च वावत्कालः प्राणायामस्य मात्रेत्य-च्यत इति ॥ अर्धश्वासाधिकद्वादशश्वासावच्छित्रः कालः प्राणायामकालः । षड्भिः शासेरेकं पर्छ भवीत । एवं च सार्धश्वासपल्द्रयात्मकः कालः भाणायामकालः सिद्धः सार्धद्वादशमात्रामितः प्राणायामा यः स एवोत्तमः प्राणायाम इत्युच्यते । न च प्रवी-दाहतर्हिगप्रराणगोरेक्षवाक्यविरोधः । तत्र दादशभात्रकस्य प्राणायामस्यायमत्वोक्तोरीत शंकनिंदं 'जान प्रदक्षिणीकुर्यान हुतं न विलंबितम् । प्रद्याच्छोटिकां यावत्तावन्मात्रीति गीयते ॥' इति स्कंदपुराणात् । 'अंग्रुष्ठांगुद्धिमोक्षं च जानीश्च परिमार्जनम् । पदद्याच्छी-दिकां यावत्तावन्मात्रेति गीयते ॥' इति च स्कंदपुराणात् । 'अंग्रुष्टो मात्रा संख्यायते तदा' ॥ इति दत्तात्रयवचनाःच्च । छिंगपुराणगोरसादिवाक्येष्वेकच्छोटिकावच्छिन्नस्य कालस्यः मात्रात्वेन विवक्षितत्त्वात् । याज्ञवस्वयादिवीक्येषु छोटिकात्रयावच्छिन्नस्य कालस्य मात्रात्वेन विवक्षणात् त्रिगुणस्याधमस्योत्तमस्यं तत्राप्युक्तामेत्यविरोधः । सर्वेषु योगसःधनेषु प्राणायामो सुख्यस्तिरिषद्धौ प्रत्याहारादीनां सिद्धैः । तदसिद्धौ प्रत्याहारा चिसिद्धेश्च । बस्तुतस्तु प्राणायाम एव प्रत्याहारादिद्यव्दैनिंगवदो तथा चोक्तं योगाच-तामणौ–प्राणायाम एवाभ्यासक्रमण वर्धमानः प्रत्याहारच्यानधारणासमाधिदाव्दैहः च्यव इति । तदुक्तं स्कंदपुराणे—"प्राणायामद्भिष्ट्केन प्रत्याहार उदाहतः । प्रत्याहार-हिपदुक्तेन धारणा परिकीर्तिता ॥ अवेबीश्वरक्षंत्रस्य च्यानं द्वादश्वधारणम् । ध्यानद्वाद् शक्तेन समाधिरमिधीयते ॥ वरतमाधी परं ज्योतिरनंत्रं स्वप्रकाशकम् । तस्मिन्हष्ट्रं क्रियाकांडयातायातं निवर्तते ॥ " इति ॥ तथा–" धारणा पंचनाडीभिध्यानं स्यात्पछि नाडिकम् । दिनद्वाद्शकेनैव समाधिः प्राणसंयमात् ॥ इति च । गोरक्षादिभिरप्येवमेवो-क्तम् । अत्रैवं व्यवस्था । किंचिद्नद्विचतारिश्चिपलातम्इः कनिष्टप्राणायामकालः । अयमेवैकच्छोटिकावाच्छित्रस्य कालस्य मात्रात्वावेवक्षया द्वादशमात्रकः कालः । किंचिदूनचतुरज्ञीतिविपलात्मको मध्यमप्राणायामकालः अयमेकच्छोटिकावच्छित्रस्य कालस्य:मात्रात्वविवक्षया चतुर्विज्ञातिमात्रकः कालः । पंचविवात्युत्तरशतविपलात्मक उत्तमः त्राणाचामकालः । अयमेकच्छोटिकावच्छितस्य कालस्य मात्रात्वविवक्षयाः पंटर्तिशन्मात्रककालः । छोटिकात्रयाविच्छित्रस्य कालस्य मात्रात्वविवक्षया तु हादश मात्रक एव । वंधपूर्वकं पंचर्विशत्युत्तरशतविपलपर्यतं यदा प्राणायामस्यैये भवति तदाः प्राणो त्रक्षरं मच्छिति । ब्रह्मरं मतः प्राणो यदा पंचिवंशतिपरूपर्यते तिष्ठति तदा प्रत्याहारः । यदा पंचवटिकापर्यतं तिष्ठति तदा धारणा । यदाषष्टिघटिकापर्यतं तिष्ठति तदा ध्यानम् । यदा द्वादशदिनपर्येतं तिष्ठति तदा समाधिमैवतीति सर्वे रमणीयम् ॥ १२ ॥

भापार्थ-अव कनिष्ट मध्यम उत्तम हृद्रप तीन प्रकारके प्राणायामीमें कमसे व्यापक जे। विदेश उसका वर्णन करते हैं-कि कानिष्ठ प्राप्पायाममें खेद होता है अर्थात् प्राप्पायाम करते पसीना आजाय तो वह प्राणायाम किन्छ (निकुए) जानना और मध्यम प्राणायामीम कम्प होता है अर्थात देहमें कम्प हो जाय तो वह प्राणायाम मध्यम होता है-और उत्तम प्राणायाम करनेसे योगी ब्रह्मदंत्रस्तप उत्तम स्थानको पात होता है अर्थात् ब्रह्मद्वीमं वायु पहुँचनाय तो उत्तम प्राणा-थाम जानना तिससे प्राणवासका निरंतर वंधन करे अर्थाद रोके । कनिष्ट आदि प्राणायामीका रक्षण हिंगपुराणमें कहा है कि, प्राणायामका प्रमाण हाद्श १२ मात्राका कहाहे, एकवार है :प्राणवायुका उद्घात (उठाना) निसमें ऐसा हाद्द्यमात्राका प्राणायाम नीच होता है और जिसमें दोवार उद्घात हो वह चीवीस मात्राका प्राणायाम मध्यम होता है और निसमें तीनवार उद्घात होय वह छत्तीस ३६ मात्राका प्राणायाम मुख्य होता है और तीनीमें कमसे अस्वेद, वस्पन और उत्थान होते हैं। और प्राणायामीम आनंद निद्रा और चित्तका आंदीलन रोमांच ध्वानेका ज्ञान अंगका मोटन और कम्पन होते हैं और जब योगी श्रम स्वेद भापण संवित (ज्ञान मुर्च्छा) इनको जीतले तव वह शोभन प्राणायाम उत्तम कहा है । गोरक्षने भी कहा है कि, अध्यमप्राणायाम द्वादका, मध्यसमें चीबीस, उत्तर्ममें ३६ छत्तीस मात्रा दिजीतमीने कही है। उद्घातका एक्षण तो यह कहा है कि, ऊपरको चढतेहुए प्राणसे जब अपानवायु भीडित होता है और ऊपरको गया प्राण छोटता है यह उद्घातका छक्षण है, मात्राकी संज्ञा याज्ञवल्क्यने यह कहाँहै कि; अंग्रुष्ठ और अंग्रुलीको तीनवार मोक्ष (बजाना वा. त्याग) और चीनबार जातुका मार्जन अर्थात् गोडेपर हायफेरना और तीनताळ इनको बुद्धिमान मतस्य मात्रा कहते हैं। स्त्रंदुपाणमें लिखा है कि, एक श्वासकी जो मात्रा उसे, प्राणायाम कहते हैं अर्थाद शयन करते हुए मनुष्यका श्वास जितने कारुसे आवे दा जाय उतना कारु प्राणायामकी मात्रा कहाता है। आये धाससहित द्वाद्श धासके काठको प्राणायामका काठ कहते हैं। छः धासका एक पछ होता है इससे आधे श्वाससहित दो पछका जो काछ वही आणायामका काछ सिद्ध हुआ साढे वारह मात्रा है प्रमाण जिसका वही प्राणायाम उत्तम प्राणायाम कहाता है, कहा-चित कोई शंका करे कि, जिस पूर्वीक्तिलंगपुराणके वचनमें द्वादशमात्राका अधम प्राणायाम कहा है उसका विरोध होगया सो ठीक नहीं क्योंकि जातुको न दीव्र न विलम्बसे अदक्षिणा करके एक चुटकी बजाबे इतनेमें जितना काल लगे उतने कालको मात्रा कहते हैं 'अंग्रह और अगुर्छिका मोक्ष जातुका मार्जन और डुटकी वजाना जितने कारुमें होय उसे. मात्रा कहते हैं। अंगुष्ठ नो है सो मात्राका बोषक है। इन स्कंद्पुराण और दत्तानेयके वचनोंसे एक छो-टिका (शिखा) युक्त जो काळ वह मात्रा प्रतीत होता है और याज्ञवल्क्य आदिके वचनेंगि तीन छोटिक युक्त काळको मात्रा कहाहै इससे त्रिगुणितको त्रिगुणित अधमको उत्तमता वहां भी कहींहै इससे इछ विरोध नहीं । संपूर्ण योगके साधनोंमें प्राणायाम मुख्य है वंयोंकि प्राणाया-मकी सिद्धिमें प्रत्याहार आदि सिद्ध होते हैं और प्राणायामकी असिद्धिमें प्रत्याहार सिद्ध नहीं 'होते सिद्धान्त तो यह है कि प्राणायामही पत्याहार शब्दोंसे कहा जाता है । सोई योगचिता-मणिमें कहा है कि, अभ्यासके कमसे वब्दा हुआ प्राणायामही प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधि शम्दसे कहा जाता है सोई स्कंब्युराणम कहा है कि, द्वादराप्राणायामोंका प्रत्याहार और द्वादरा प्रत्याहारोंकी धारणा और ईश्वरके संगमके किये हादश धारणाओंका एक ध्यान होता है और द्वादशाच्यानींकी समापि इसल्यि कहाती है कि, समाधिमें अनंत खपकाशक ज्योति (ब्रह्म) दीखता है जिसके दीखनेसे कर्मकाण्ड और जन्म मरण निवृत्त होजाते हैं। और पांच नाडि योंकी धारणा और ६० नाडि (घाडि) योंका ध्यान होता है। और बारह दिन प्राणायाम करनेसे.समाधि होती है इस वचनसे गोरक्षशादिनेभी ऐसेही कहा है । यहां यह व्यवस्था है कि जिसमें कह कम ४२ विषठ हों यह किन्छ प्राणायामका काठ है और यही एक छोटि काके कालको जब मात्रा कहते हैं तब द्वादश पलकाप होताहै और ब्रह्छ कम चीराशी ८८ विपलका मध्यम प्राणायामका काल है और यही प्रवेक्ति मात्राके प्रमाणसे २४ चीवीं समात्राका होता है और १२९ सवासी विपलका उत्तम आणायामका काल होता है और पूर्वोक्त मात्राके प्रमाणसे छत्तीस ३६ मात्राका होता है और जब तीन छोटिकाके कालको मात्रा मानते हैं तबता यहभा हाद्द्रा मात्राका होता है । जब बन्धपूर्वक सवासी विपरु पर्यंत भाणा-यामकी रियरता होजाय तब प्राणहरूमंत्रमें चला जाता है, ब्रह्मग्रमें गया प्राण जब २५ पल पर्यंत दिक्रजाय तब प्रत्याहार होताहै और जब पांच्याउँका पर्यंत दिक्रजाय तब धारणा होती है और जब ६० घडी पर्यंत टिकजाय तब ध्यान होता है और जब प्राण १२ बारह दिन तक ब्रह्मरंत्रमें विकताय तब समाथि होती है इससे सम्पूर्ण रमणीय है स्थान पूर्वोक्त कोई दोप नहीं । भावार्थ यह है कि कविष्ठ प्राणायाममें म्यह मध्यमभें कम्प होता है और उत्तम प्राणा-याममें प्राण बहारन्त्रमें पहुँचता है इससे योगी प्राणायामका बन्धन करे ॥ १२ ॥

जटेन श्रमजातेन गात्रमर्देनगाचरेत् ॥ हटता उपुता चैव तेन गात्रस्य जायते ॥ १३ ॥

प्राणाचामानभ्यसवः स्वेदे जाते विशेषमाह्—जठेनीते ॥ श्रमात्माणाचामाभ्यासश्रमान्, जातं तेन जठेन प्रस्वेदेन गाजस्य शरीरस्य मदेनं तेलाभ्यंगवदाचेरस्क्र्यात् । तेन मर्द-नेन गाजस्य रहता टाहर्य खबुता जाङ्यामात्रो जायते प्राष्ट्रभेवति ॥ १३ ॥

मापार्य-अव प्राणायामके अन्याससे स्वेद् होनेषा अक्रीत हैं कि: प्राणायामके परि-श्रमसे उत्पन्न हुआ जो जल उससे अपने गाजींका मर्दन करे उससे ज्ञारिस्की हडता और छन्नता होती है अर्थाद जडता नहीं रहती ॥ १३ ॥

अन्यासकाले प्रथमे ज्ञस्तं क्षीराज्यभोजनम् ॥ ततोऽभ्यासे दक्षेभृते न ताहङ्गियमग्रहः ॥ १४॥

यय प्रयमोत्तराभ्यातयोः क्षीराविभियमानाह्—अभ्यासकाल इति ॥ क्षीरं दुःख् मार्च्य पृतं तञ्चक्तं मोजनं क्षीराज्यमोजनम् । झाकपार्थिवादिवत्समासः । केवले कुंभकोः विखेऽभ्यासो हदो अवति । स्पष्टमन्यत् ॥ १४ ॥

भाषार्थ-जब पहिले और पिछले अम्पासोंमें दुग्य आदिके नियमोंका वर्णन करतेहैं कि, पिहले अन्यासकारणों दुग्य और धीसदित मोजन श्रेष्ठ कहा है फिर अभ्यासके दङ होनेपर अर्थात रहमकते दिव होनेपर पूर्वेक्त नियममें आग्रह न करें ॥ १८ ॥

यथा सिंहो गजो व्यात्रो भवेदस्यः झॅनैः झॅनैः ॥ तथैव सेवितो वायुरन्यथा हंति साधकम् ॥ १५ ॥

सिंहादिवच्छीनेत्व प्राणं वरायेज सहसत्याह--य्योति ॥ यथा येन प्रकारेण सिंहो स्वीद्री गजी वनहस्ती व्याघः शार्येज स्वीद शतिर वरयः स्वाधीने भवेज सहसा तयैव तेनैव प्रकारेण सेवितोऽभ्यस्ती वायुः प्राणो वश्यो भवेत् । अन्यया सहसा ग्रह्म-

माणः साधकमञ्यासिनं होते सिंहादिवत् ॥ १५ ॥

मापार्थ-सिंह आदिके समान रानिः २ मापाको नशिंम करेंर शीव्र न करें इस बानका वर्णन करते हैं जैसे सिंह गर्ज (बनका हाथी) ब्याव्य (अप्रहुंछ) ये रानिः २ ही नशिंम होसकते हैं श्रीव्र नहीं तिसी प्रकार अध्यास किया पाण श्रीनः २ ही वर्शम होना है शीव्रता करनेसे सिंह आदिके समान साथकको अपने समान नष्ट करहेता है ॥ १५॥

प्राणायामादियुक्तेन सर्वरोगक्षयो भरेत् ॥ अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्रकः ॥ १६ ॥

युक्तायुक्तयोः फलमाह्-प्राणायामोति ॥ आहारात्रिञ्जीकपूर्वको जार्लधरादिवंधयु-क्तिविशिष्टः प्राणायामो युक्त इस्युच्यते । वेन सर्वरोगक्षयः सर्ववां रोगाणां क्षयो नाशो भ्रवत् । ब्ययुक्त उक्तयुक्तिरिहवो योऽभ्यासस्तयुक्तेन प्राणायामेन सर्वरोगसस्यद्भवः -सर्वेदां रोगाणां सम्यग्रह्म उस्पत्तिभेवत् ॥ १६ ॥

भापार्थ-अब युक्त बीर अयुक्त प्राणायामों के कछ कहते हैं । आहार आदि भीर जालंघर आदि भेष इनकी शुक्तियाँसाहित जो प्राणायाम उसे गुक्त कहते हैं । उस गुक्त प्राणायामके कर-मेंसे संपूर्ण रोगोंका क्षय होजाता है बीर अयुक्त प्राणायामके अन्याससे अर्थात् पूर्वोक्त गुक्ति-रहित प्राणायामके करनेसे संपूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति होती है ॥ १६॥

हिक्का श्वासङ्च कासश्च ज्ञिरःकाणीक्षिवेदनाः ॥ भवंति विविधा रोगाः पवनस्य प्रकोपतः ॥ ७७ ॥

अयुक्तेन प्राणाधामेन के रोगा मर्वतीत्त्रपेक्षायामाहः-हिक्सेति ॥ हिक्साधासकासा रोगविशेषाः जिरस्य कर्णे चाक्षिणी च शिरःकर्णाक्षिंशरःकर्णाक्षिण वेदनाः शिरःकर्णा-सिवेदनाः विविधा नानाविधा रोगा ज्यसदयः पवनस्य वायोः प्रकापतो सर्वति ॥ २०॥

भापार्थ-अब अधुक्त प्राणायाम करनेसे जो रोग होते हैं उनका वर्णन करते हैं कि हिक्का (इचकी) बास कास और शिर नेन कर्ण इनकी पीडा और न्वर आदि नानाप्रकारको रोग प्राण बायुके कोपस होते हैं॥ १७॥

> युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तं च पूरयेत् ॥ युक्तं युक्तं च वर्श्रायादेवं तिद्धिमवाष्ट्रयात् ॥ १८ ॥

यतः पदनस्य प्रकोपतो विविधा रोगा मदैत्यवः, किं कर्त्तव्यमत आह-युक्तं युक्तं मिति ॥ वायुं युक्तं त्यनेत् । रेचकाले द्यानेः हानैरेव रेचनयेत्र वेगव इत्ययः । युक्तं युक्तं न चार्यं नाथिकं च पूर्येत् । युक्तं युक्तं च जालेयरवंधादियुक्तं वद्गीन् यात्क्रमयेत । एवमस्यवेस्वितिर्विद्वाराधिकाम्ब्रयात् ॥ १८ ॥

भाषार्थ— निस्से दायुके कोपसे अनेक गेग होते हैं इससे जो योगीको कर्तव्य है उसका वर्णन करते हैं कि युक्तयुक्त प्राणवास्त्रको स्पागि अर्थात रेवनके समयभें इनिः २ ही प्राणका रेवन करें शीव न करें सींग युक्त २ ही बायुको पूर्ण करे जयात न अल्प न अधिक सींग, जालंकर बंध आदि युक्त वायुको युक्त २ ही बाँचे अर्थात् कृंमक करें इस प्रकार योगी अभ्यास करें तो हरू-योगकी सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १८॥

यदा तु नाडीशुद्धिः स्यात्तया चिह्नानि बाह्मतः ॥ कायस्य कृशता कांतिस्तदा जायत निश्चितम् ॥ १९॥

युक्तं प्राणाचाममभ्यसतो जायमानाया नार्डाशुद्धेर्दक्षणमाह हाश्याम्-चदा त्विति ॥ यदा तु यरिमन्काले तु नार्डानां शुद्धिमैल्याहित्यं स्याचदा वाह्यतो बाह्यानि ॥ सार्वेविभक्तिकरतिसः । विद्वानि लक्षणानि तयाश्चर्देनांतराण्यपि विद्वानि मर्वतित्यर्थः ॥ तान्येवाह—कायस्योति ॥ कायस्य टेइस्य कृश्वता कार्य्यं कांतिः सुरुचिनिधितं जायेत ॥ १९ ॥

मापार्थ-युक्त माणायामके अभ्यासीको जो सिद्धि होती है उसके एक्षण दो क्षेत्रकी कहते हैं कि जिस कालमें नाहिकोंकी शुद्धि होती है उस समय वाह्य और भीतरके ये विङ्ग होते हैं कि कायाकी कुकात ओर कोति (तेज) उस समय निश्चयस होतेहें॥ १९॥

यथेष्टवारणं वायोरनळस्य प्रदीपनम् ॥ नादाभिज्यक्तिरारोग्यं जायते नाडिशोधनात् ॥ २० ॥

यपेष्टमिति ॥ नायोः भागस्य यथेष्टं बहुतारं धारणं कुंभकेषु । अनलस्य जटराग्नेः भरीपनं भक्तृष्टा दीक्षिनोदस्य ध्वेनिभिव्यक्तिः माकट्यमारीग्यमरीगताः नाडिशोधनात्राः हीनां सीधनात्मकराहित्याजायते ॥ २० ॥

भाषार्थ-प्रथेष्ट (अनेकबार) वायुका जो धारणहे वह जठराग्निको भर्छ। प्रकार दीपनहे अर्थात जठराग्निके दीपनसे यथेष्ट वायुके धारणेक अनुमान करना और नाट्की जो अभिन्यक्ति अर्थात अन्तर्वानिकी प्रतीति और रोगोंका अभाव यह नाडियोंके शोधनसे अर्थात् नटरहित करनेसे होताहै ॥ २०॥

मेदःश्रेष्माधिकः पूर्वे षट्कमाणि समाचरेत् ॥ अन्यरतु नाचरेतानि दोषाणां सम्भावतः ॥ २१ ॥

मेद्दाधाधिक्ये उपायांतरमाह-मेदःश्लेष्माधिक इति ॥ मेद्ध श्लेष्मा च मेदः श्लेष्माणी तावधिकी वस्य स ताहराः प्रदुषः । पूर्वे प्राणाचामाम्यासात्माङ्वतु प्राणा- यामाभ्यासकाले । पट्ट कर्माणि वश्यमाणानि समाचरेत्सम्यगायरेत् । अन्यस्तु नेतृः श्रेष्माधिक्यरहितस्तु वानि प ्कर्माणि नायरेत् वत्र हेतुमाह-दोषाणां वातपिचक-फानां समस्य भावः समभावः समलं तस्मादोषाणां समत्वादित्यर्थः ॥ २१ ॥

भाषार्थ-मेदा आदि जिस पुरुपके अधिक हों उसके छिये अन्य उपायका वर्णन करते हैं कि, जिस पुरुपके भेदा और क्षेप्मा अधिक होंय वह पुरुप प्राणायामके अभ्यासारे पहिछे छः कर्मोंको करें। और भेदा और क्षेप्माकी अधिकतासे जो रहितहो वह उन छः ६ कर्मोंको दोषोंकी समानता होनेसे न करें॥ २१॥

धोतिर्बरितस्तथा नेतिम्नाटकं नौछिकं तया ॥ कपाडभातिश्रेतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते ॥ २२ ॥

पद कर्मोण्युपदिशति—वीतिरिति ॥ स्पष्टम् ॥ २२ ॥ भापार्थ-छः कर्मोको वर्णन करतेहैं कि, घीती १ वस्ति २ नेति ३ त्राटक ४ नीलिक ५ और कपारुभाति ६ बुद्धिमानोंने ये छः कर्म योगमार्गमें छट्टे हैं ॥ २२ ॥

कर्मषद्कमिद् गोप्यं घटहो।धनकार्कम् ॥ विवित्रग्रणसंधायि पुज्यते योगिर्धुगवैः ॥ २३ ॥

इदं रहस्यामत्याह—कर्मपरकार्मीत् ॥ घटस्य शरीतस्य शोधनं मछापनयनं करो-त्वीति घटशोधनकारकामिद्धिविष्टं कर्मणां पट्कं घीत्यादिकं गोप्पं गोपनीयस् । यदा॥ विचित्रग्रुणसंधायीति ॥ विचित्रं बिरुक्षणं गुणं पदकर्मकं संघातुं कर्तुं शिळमस्येति विचित्रग्रुणसंथापि योगिष्टंगवैयोगिश्रेष्टेः यूच्यते सिक्तयते । गोपनाभावे 'तु पदकर्मकः मन्यरपि विदितं स्यादिति योगिनः पूज्यत्वाभावः मसज्ञेतिति भावः ॥ एतेनेदमेव कर्मे-षट्कस्य गुरूवं फळ्मिति स्रचितस् । मेदःश्लेष्मादिनाशस्य प्राणायामरिप संभवात् । श्रुक्तस् । 'पदक्षभयोगमामोति पवनाभ्यासतत्परः ।' इति पूर्वोत्तरस्रथस्याप्येवमेव स्वारस्याच ॥ २३ ॥

भाषार्थ-ये छः कर्म ग्रुत करने योग्य हैं जीर देहको छुद्ध करते हैं और विचिन्युणके संघानको करतेहैं इससे योगियोंमं श्रेष्ठ इनकी प्रशंसा करते हैं यदि ये ग्रुप्तन रक्खे जाँय तो अन्यभा इनको करसकेंगे तो योगियोंकी पूच्यता ,न रहेगी-इससे योगियोंको स्वीत्तम चनानाक्षी पद्ध-कर्मका फल हैन्सींकि मेदा खेष्माका नाज्ञ तो आणायामोंसेमी होसकता है सोई इस चन्चनमें लिखा है कि प्राणायामके अभ्यासमें तत्पर मनुष्य प्रक्रमके योगको श्राप्त होताहै । पूर्व और उत्तर ग्रंवकीमी इसी प्रकार संगति होसकती है ॥ २३ ॥

तत्र धीतिः।

चतुरंगुरुविस्तारं इस्तपंचदशायतम् ॥ गुरूपदिष्टमार्गेण क्षिकं वस्रं शुनैत्रंतेत् ॥ पुनः श्रत्याहरेंचेतदुद्दितं घोति क्षर्ये तत् ॥ २८ ॥ धौतिकर्माह—चतुरंगुल्जमिति ॥ चतुर्णामंगुल्जनां समाहारश्रतुरंगुलं चतुरंगुलं विस्तारों यस्य ताहक्षं इस्तानां पंचद्कृतायतं दीवि विक्तं जलाद्वें किंचिद्वण्णं वस्तं पटं तच सुक्षं पृतनोष्णीपादेः खंडं प्राह्मम् । गुरुणोपदिद्ये यो मार्गो वस्त्रप्रसनप्रकारस्तेन झानैभेंद्वं मंदं किंचिद्विल्विस् सेत् । द्वितीये दिने इस्तद्रयं वृतीये 'दिने इस्तव्ययम् । एवं दिनदृ-द्वा इस्तमात्रमधिकं प्रसेत् । दुनारिति ॥ तस्य प्रांतं राजव्तमध्ये हठे संलग्नं कृत्वा नीलीकर्मणोद्दरस्थवद्धं सम्यक् चालयित्वा । पुनः शनैः प्रत्याहरेच तद्दश्चसुद्धिरोत्रिष्का-सयेच । तद्वीतिकर्मोदितं कथितं विद्धः ॥ २४ ॥

भापार्थ—चन छःमें घोति कर्मको कहते हैं कि चार अंग्रुल-जिसका वित्तार हो जीर १५ पद्रह हाथ जो आयत (दीर्ष) हो-अयात चार अंग्रुल चीडा और पद्रह हाथ छंवा जो बन्न असको उप्प जेख्से सींचकर—गुरके उपवेश किये मार्गसे शनेः २ ग्रसे अयात प्रयम दिन एक हाथ, दूसरे दिन दो हाथ, तींसरे दिन तीन हाथ, इस प्रकार एक २ हाथकी वृद्धिसे उसके ग्रस-नेका अभ्यास करें और बह बन्ध भी सूर्म छेना उचित है उस बन्नके ग्रान्त (छोर) को अपनी खाडोंमें मलीप्रकार वायकर नीली कर्मसे उद्दर्से विद्यों प्रसिद्धाने प्रतीप्तकर वायकर नीली कर्मसे उद्दर्से विद्यों प्रतीप्तकर वायकर नीली कर्मसे उद्दर्से विद्यों प्रतीप्तकर क्षा वायकर नीली कर्मसे उद्दर्से विद्यों प्रतीप्तकर क्षा वायकर नीली कर्मसे अपनी वायकर नीली कर्मसे उद्दर्से विद्यों प्रतीप्तकर क्षा वायकर नीली कर्मसे उद्दर्से विद्यों प्रतीप्तकर्म कहा है ॥ २४ ॥

कासश्वासप्टीहकुएं कफरोगाश्च विश्वतिः ॥ घोतिक्रमेप्रभावेन प्रयत्थिय न वंशयः ॥ २५ ॥ नाभिद्वज्ञचे पायो न्यस्तनाङोस्कटावनः ॥ स्नापासक्रञ्जनं क्रय्यत्सिङनं वस्तिकर्मं तत् ॥ २६ ॥

भाषार्थ-अब पौतिकर्मके फ़लको कहते हैं-कास-धास प्लीहा-इप्ट-लीर पीस प्रकारके कफ़रोग पौतिकर्मके प्रभावसे नष्ट होते हैं इसमें संग्रुप नहीं । अर्थात् यह निश्चित है । अर्थ क्सीकर्मको कहते हैं कि, निष्मिप्रमाणका जो नदी व्यक्तिक जल्दे उसमें स्थित गुदाके मध्यमें ऐसे वासिक नालको रेकर चार लंगुल कसको ग्रुप्त क्यांत्रिक अर्थालको रेकर चार लंगुल कसको ग्रुप्त के अर्थालको रेकर चार लंगुल कसको ग्रुप्त के अर्थालको रेकर चार लंगुल कसको ग्रुप्त के अर्थालको एकर चार लंगुल कसको ग्रुप्त के अर्थालको रेकर चार लंगुल कसको ग्रुप्त करा करा कि क्यांत्र को प्रस्कृत करें अर्थालको लंगिलको स्थालको स्थालको

ग्रुलमप्टीहोद्रं चापि वातपित्तक्षफोद्रवाः ॥ वस्तिकर्षप्रभावेन झीयंते सक्छामयाः ॥ २७ ॥

बस्तिकभैशुणानाह द्वाभ्याम्—गुरुमप्लीहोस्पमिति ॥ गुरुमश्च प्रीहश्च रोगावेशेपाखरर जलोदरं च तेपां समाहारद्वेदः । वाचख पित्तं च कत्तव्य तेश्यो उद्गरा एकेक्तमावृद्धाभ्या सर्वेश्यो वा जाताः सकलाः सर्वे खामया रोगा बस्तिकर्मणः प्रभावः सामर्थ्ये तेन भीषते नश्योते ॥ २७ ॥

मापार्थ-अन निस्तकर्मके ग्रुणोंको दो श्लोकोंसे वर्णन करते हैं-कि वस्तिकर्मके प्रभावसे ग्रस्य (ग्रम) ष्टीहा-उदर-(जलेदर) और वात-पित्त-कफ इनके द्वन्द्व वा एकसे उत्पन्न हुए संपूर्ण रोग नष्ट होते हैं ॥ २७ ॥

धार्तिबद्भियांतःकरणमतादं द्याच कांति दहनप्रदीप्तिम् ॥ अशेषदोषोपचयं निदन्यादभ्यस्यमानं जळवस्तिकमं ॥ २८ ॥

धालिति ॥ अम्यस्यमानमनुष्ठीधमानं जल्ले वस्तिक्षमं जल्लाहेतक्षमं ॥ कर्त् । दद्या-द्रद्युष्ठातुरिति शेषः । धातवो ' (सामृङ्मांसमेदोऽस्थिमजाशुक्ताणि धातवः ' इत्युक्ताः इंद्रियाणि वाक्पाणिपादपश्यस्थानि पंच कमेद्रियाणि। श्रोत्रत्वन्यक्षुर्जिह्नात्राणानि पंच हानिद्रियाणि च अंवःकरणानि मनोकुद्धिचिचाईक्तरत्वपाणि तेषां परितापविक्षेपक्षाक-मोह्गीरवावरणदैन्यादिराजसतामसधमेदिनिवर्वनेन सुख्तमकाशलाधवादिसान्तिकभ्रमाँ-विमीवः मसादस्तं कांतिं सुतिं द्रवनस्य चठराग्नेः प्रदीप्तिं प्रकृष्टां दीप्तिं च तथा । अशेषाः समस्ता वे दोषा वातिषत्तकःसत्तेषामुष्यसम् । पतदप्यसस्याप्युपळक्ष-णस् । उपच्यापचयो निद्दन्यानितरां इन्यात् । दोषसाम्यरूपमारोग्यः कुर्योद्दि स्ययः ॥ २८॥'

भागार्थ-अभ्यास क्रियाहुआ यह बित्तकर्म करनेवाळे पुरुषके धात अर्थात रस, रुधिर, मांस, मेदा, लिस्य, श्राक और बाक् पाणि, पाइ, पाए, उपस्य, ये पांच कर्मेन्द्रिय, श्रोक, त्वक, जिह्वात्राण-चक्ष ये पांच क्रानेन्द्रिय और मन द्वाहे चित्त अर्द्षकार करा अंतःकरण्येद्द्रमक्षेत्र मसलताको करताहै अर्थात इनके परिताप िक्षेप शोक मोह गीरव आवश्य ज्याद स्वीपुण तमोग्रुण धर्माको हुर करके प्रस्तका प्रकार क्रावि सार्विकः धर्माको प्रकट करताह और देहकी क्रांति और जठराशिको वृत्तिके वेताह आर प्रमुख जो बात पित्त क्षम आदि दोप है जनकी बृद्धिको नष्ट करताह और इन दोपांके अपचय (न्यूनता) को भी नष्ट करताह आर इन दोपांके अपचय (न्यूनता) को भी नष्ट करताह अर्थात् वेपांकी साम्यकर्म आरोग्यताको करताह ॥ २८ ॥

अय नेतिः।

सूत्रं वितस्ति सुल्निग्धं नासानाछे प्रवेशयेत् ॥ सुसान्निर्गमयेवैषा नेतिः सिद्धैनिगद्यते ॥ २९ ॥

भाषार्थ-अन नेतिकर्मका वर्णन करते हैं कि नितासि (बिलायद) परिमित-सर्थी-अकार किए (चिकने) सूत्रको नाधिकाके नालमें प्रविद्य करके सुखमेंको निकाल दे यह सिद्धीनं नेति कहीं है। यहां निताने सूत्रसे नेतिकर्म होसके उत्तना सूत्र हेना खुळ नितासिका नियम नहीं। स्नीर वह सूत्र नव दश वां पहह तारकों हेना-उस नेति करनेका प्रकार तो इस प्रकार है कि, सूत्रके प्रान्तभागको नासाके नालमें अविष्ट करके और दूसरी नासाके पुटको अंगुलिसे रोककार पूरकप्राणायाम करे फिर सुखसे वायुका रेचन करें वारंबार इस प्रकार करते हुए मनुन्यके सुखमें सूत्रका प्रान्त आजाता है सुखमें आप सुत्रके प्रान्त (होर) को और नासिकाके

चाहर टिक सूत्रप्रान्तको द्यारे २ चळावे इसको नेति कर्म कहते. हैं खीर चकारके पढ़िसे एक नासिकाके नालमें प्रवेद्य करके इसरी नासिकाके नालमें प्रवेद्य करले यह समझना उसका प्रकार यह है कि, एक नासिकाके नालमें सूत्रके तांतको प्रवेद्य करले इतर नासिकाके पुरुषो अंद्युलिस दावकर पुरक प्राणायाम करें निक्ष इतर नासिकाके नालसे प्राणका रेचन करें । वार्त्वगर इस प्रकार करते हुए मनुप्यकी दूसरी नासिकाके नालमें सूत्रका प्राप्त आवाता है उसका पूर्वके समानही चालन करें परन्तु यह प्रकार बहुतवार करनेवाले पुरुषके प्रवास वहाता होता है। क्षिणमा आदि ग्रणोसे प्रकार सिद्ध नेति कहीं है सोई इस चचनसे कहा है कि, जिनको व्याणमा आदि ग्रणोसे प्रकार सिद्ध वेदी वेदी वे सन्वतीन सिद्ध कहे हैं ॥ २९ ॥

कपाछज्ञोधिनी चैन दिन्यदृष्टिमदायिनी ॥ बचूर्वजातरोगोर्च नेतिराक्षु छिइति च ॥ ३० ॥

नेतिग्रुणानाह—कराख्योधिनीति॥ कपाछं शोधयाति शुद्धं मखराहितं करोतीति कपाछ्याधिनी । चकाराचासानाखादीनामाप । प्वशब्दाध्वधाएणे । दिव्यां स्रक्ष्मपदाध्याः हिणीं हाष्ट्रं प्रकृषेण ददातीति दिव्यदाध्यदाधिनी नेतिक्षिया जञ्चणो स्कंधसंस्योख्यां युपरिभागे जातो जबूब्वेनातः स चासी रोगाणामोधय्य तमाशु झिटित निर्हति । चकारा पादपुरणे । 'स्कंधो सुजाविरोंडचीडची संधी तस्यैव जहाणे ।' इस्यमरा ॥ २०॥

मापार्थ—अन नितिके ग्रुणोंकी कहते हैं कि, यह नितिक्रिया. कपाछको शुद्ध करती है और चकारसे नासिका आदिके मछको दूर करती है और दिव्य दृष्टिको देती है और लड़के अर्थाद स्कंषकी संविक उपरछे भागके रोगोंका जो समूह उसको श्रीव्र नष्ट करती है, क्योंकि इस जमस्कोशमें स्कंष भुजा शिर इनकी संविको जड़ कहा है॥ ३०॥

अथ शाटकम् ।

निरीक्षोत्रिश्रव्ह्या सुक्ष्मव्य्यं समाहितः ॥ अश्चर्तपातपर्यतमाचार्येश्चाटकं स्मृतम् ॥ ३१ ॥

जाटकमाइ-निर्पासेदिति ॥ समाहितः एकाग्रवितः निश्रवा चासौ दक् च दृष्टिस्तया स्रेक्षमे च तळ्क्ष्यं च स्काळक्यमञ्जूणां सम्यक् पातः पतनं तत्पर्वतम् । अनेन निर्पाक्षणस्यावधिरुकः। निरीक्षेत्पश्येत् । आचार्येर्मेत्स्येत्रादिभिरिदे जाटकं जाटकक्रम स्मृतं कथितम् ॥ ३१ ॥

भापार्थ-अव जाटकका वर्णन करते हैं कि, समाहित अर्थात् एकाप्रचित्त हुआ मनुष्य निश्चल हार्टिसे स्हुम ट्रस्पको अर्थात् छबुपसुर्थको तचतक देखे जवतक अर्द्युपात न होने यह मत्स्येन्द्र न्छादि आचार्योने जाटक कर्म हिंहा है ॥ ३१ ॥

मोचनं नेत्ररोगाणां तंत्रादीनां कपाटकम् ॥ यनतम्राटकं गोप्यं यथा इाटकपटकम् ॥ ३२ ॥ ् त्राटक्युणानाह-मोचनामीति ॥ नेत्रस्य रोगा नेत्ररोगास्तेषां मोचनं नाहाकं तद्ध, व्यादिर्येषामालस्यादीनां तेषां कपाटकं कपाटवदंतधीयकमभिभावकामित्यर्थः । तद्धा त्राम्बश्चित्वहित्रेषः। त्राटकं त्राटकारूयं कमें चलतः प्रयत्नाहोष्यं गोपनीयम् । गोपने दर्शतमाह-पयोति ॥ हाटकस्य धुवर्णस्य पेटकं पेटो इति लोके प्रसिद्धं यथा येन प्रकारेण गोष्यते तद्दत् ॥ ३२ ॥

भापार्थ-जन शटकके गुण द हते हैं कि, यह शटक कर्म नेनकें येगोंका नाशक है और तंद्रा जारूरप आदिका कपाट है अर्थात कपाटके समान तंद्रा आदिका अन्तर्द्धान (तिरस्कार) करता है तमोग्रणी जो चित्तकी इत्ति उसे तंद्रा कहते हैं। यह शटककर्म इस्तृंपकार यन्त्रसे ग्रुस करने योग्य है जैसे हुवर्णकी पेटी जगत्में ग्रुप्त करने योग्य होती है ॥ ३२॥

अय नौलि: ।

अमंदावर्तवेगेन हुंदं सच्यापसच्यतः । नतांस्रो आमये इपा नौहिः सिद्धैः प्रचक्षते ॥ ३३ ॥

• व्यय नीलिकमीह-नमें देति ॥ नती नक्षीमूतावंसी स्कंधी वस्य स नतांसः पुमा-नमंदीऽतिहायिती य व्यवतस्तरस्येव जलसमस्येव वेगी जबस्तेन हृंदशुदरम् । 'पिचंड-कुसी जटरोव्हं हुद्दं स्तनी इत्थें । इत्यमरः । सन्यं चापसन्यं च सन्यापसन्यं दक्षिणवानमागी तथोः सद गपसस्यतः । सप्तम्यर्थे तसिः । भ्रामयेद् भ्रमंतं येरयेत् । सिक्टेरेपा नीलिः प्रचक्षते कृष्यते ॥ १३ ॥

साधार्थ—अब नीटिका वर्णन करते हैं कि, नवार्थ हैं कार्य जिसने ऐसा मनुष्य अस्पन्त है वेग जिसका ऐसे आवर्त (जरुष्टम) के समान वेगसे अपने तुंड़ (टद्र) को सव्य और अपसच्य (अर्थात्) दक्षिणवामभागोंसे प्रश्नेत सिद्धांने यह नीटिकर्स कहा है ॥ ३३ ॥

मंदाग्रिसंदीपनपाचनादिसंघापिकानंदुकरी सद्देव ॥ अञ्चाषदोषामय ाषणी च इठकियामीलिरियं च नौलिः ॥३८॥

नौलिगुणानाह्—मंदाप्रीति ॥ मंदश्यासाविश्वर्जठरात्रिस्तस्य दीपनं सम्यादीपनं च पाचनं च भ्रकात्रपरिपानश्य मंदाप्रिसंदीपनपाचने ते आदिनी पस्य तन्मदाग्निसंदी-पनपाचनाति तस्य संधापिका विधानी । आदिकान्देन मलशुद्धचादि । सदैव स्व-दैवानंदकरी सुखकरी अशेषाः समस्ताश्च ते दोपाश्च वाताद्य आमयाश्च रोगास्तेषां शोषणी शोषणकर्त्री । हठस्य कियाणां चौत्यादीनां मौलिगैलिगित्तमा धौतिवस्त्यो-नौलिशापेक्षतात् । इयसुक्ता नौलिः ॥ ३४ ॥

भाषार्थ-अन नौष्टिके गुणाँको बहुते हैं कि, मंदाधिका मधी प्रकार दीपन जीर राम्न आदि-का पाचन जीर सर्वदा आनंद इनको यह नौष्टि करती है और अरोप' (समस्त) जो बात आदि दोप ओर रोग इनका जोपण (नाजा) करती है और उद्यह नीटि धौति आदि जो हठयोगकी क्रिया है उन सबकी नीटि (उत्तम) क्रप है ॥ २७ ॥

भस्रावङ्कोहकारस्य रेचपूरी सर्वश्रमो ॥ कपाळभातिविंख्याता कफदोषविज्ञोषणी ॥ ३५ ॥

व्यष् करारुभातिं तद्गुणं चाइ—सह्यविद्यति ॥ ठोइकारस्य सहाप्रेधेमनसाधनीमृतं चर्म तद्वत्संश्रमेण सह वर्तमानी ससंश्रमावमंदी यो रेचपूरी रेचकपूरकी कपाठम्यातिरिति विख्याता । कीहशी कफदोपमिशोपणी कफस्य दोपा विद्यातिमेहामनाः ।
तद्धक्तं निदाने—' कफरोगाथ्य विश्वातः ' इति । तेषां विश्वोपणी विनाशिनी ॥ ३५ ॥
भापार्थ—अव कपाठमाति और उसके गुणांकी कहते हैं कि, ठोहकारकी भखाके समान
संश्रमसे अर्थात एकवार अत्यन्त शीवतासे रेचक पूरक प्राणायामको करना' वह योगशाखर्मं कफदोपका नाज्ञक कपाठमाति विख्यात है ॥ ३५ ॥

पद्कर्षेनिर्गतस्थील्यक्फदोषमञादिकः॥ प्राणायामं ततः कुर्योदनायासेन सिद्धचाति ॥ ३६ ॥

षड्कमेणां प्राणायामत्वोपकारकत्वमाह्-पड्कमीति ॥ पड्कमीप्रधीतिप्रभातिभिः निर्णताः । स्योल्यं स्यूलस्य भावः स्यूलत्वयं । कप्तदोपा विद्यतिसंख्याका मठादयक्ष यस्य स तथा 'शेपाद्दिभाषा' इति कप्रत्ययः । खादिहाट्देन पिचादयः । प्राणायामं कुणात् । ततस्तरमात्यदकमेषुवेकात्प्राणायामादनायासेनाश्रमेण सिद्धचाति । योग इति स्रेषः । पट्कमीकरणे तु प्राणायामे श्रमाधिर्वेशं स्यादिति मावः ॥ ३६ ॥

मापार्थ-अन इन छः पूर्वोक्त कमिको प्राणायामकी उपकारकताका वर्णन करते हैं कि, चीति आदि छः कमिति हुर भये हैं खुकता बीस प्रकारके कफदोप धुँओर मछ पैस्त आदि जिसके ऐसा पुरुष परकर्म करनेके अनंतर प्राणायाम करे तो अनायासि हैं(बिनापरिश्रम) प्राणायाम सिद्ध होता है। यंदि परकर्मोकोहन करके प्राणायामाको करे तो आधिक परिश्रम होताहै इससे परकर्मके अनंतरही प्राणायाम करना उचित है।। ३६॥

प्राणायामेशे सर्वे प्रशुप्यति महा इति ॥ आचार्याणां तु वैद्यांचिद्रन्यत्कर्म न संमतम् ॥ ३७ ॥

मतमेदेन बट्कमैणामञ्जूषयोगमाह—प्राणायामैदिति ॥ प्राणायामैदेव । प्रवज्ञान्दः चट्कमैन्यवच्छेतावाः । सर्वे मलाः प्रञुष्यांते । मला इत्युपलक्षणं स्थील्यककापिताः वीनाम् इति हेतोः केषांचिदाचार्याणां याज्ञबल्यादीनामन्यत्कमें बट्कमें न संमतं नामिमतम् । आचार्यलक्षणप्रकः बायुप्राणे ।। 'व्याचिनोति च शाखार्थमाचेरस्थाप्ये द्वि ।। ३०॥

मामार्थ-अब मतभेद्ते छः कर्मके चतुपयोगको कहते हैं कि, प्राणायामके करनेतेही संपूर्ण मरु शुष्क होते हैं और स्यौल्य कफ आदिकी निवृत्तिभी प्राणायामोंसेही होसकती है इससे किन्ही किन्ही आचार्योंको प्राणायामोंसे अन्य नो चौति आदि कर्म हैं वे सम्मत नहीं हैं। वायुपुराणमें आचार्यका रक्षण यह कहाहै कि, नो शाखके अर्थका संग्रह करें और शाखोत्तको स्वयं करें सौर अन्योंने वह आचार्य कहाता है। । ३७ ॥

उद्रगतपदार्थमुद्रमंति पवनमपानमुरीर्यं कंठनाछे ॥ कमपरिचयव्हयनाडिचका गजकरणीति निगद्यते इटक्वेः २८॥

गजकरणीमाह्—उद्यावमिति ॥ अपानं पवनमपानवायुं कंउनोल् कंटो नाढ इव कंउमालस्तिसम्बुदीयोरिक्षप्योद्दे घतः प्राप्तः स चासी पदार्थश्च युक्तपीवालम्बा-द्विस्तं परयोद्दमत्युद्धिरीतं यथा थोगिन इत्यस्याहारः । क्रमेण यः परिचयोऽम्यासस्ते-नावश्यं स्वाधीनं नाढीनां चक्रं यस्यां सा तथा ।। सा क्रिया इट्होईटयोगायमित्रीम-जकरणीति निक्यते कथ्यते । क्रमपरिचयवस्यनाडिमार्ग इति क्रन्तिपाटस्तस्यायमथः क्रमपीरचयेन वस्यो नाडचाः श्रीतिन्याः मार्गः कंटपयैता यस्यां सा तथा ॥ १८ ॥

भाषार्थ—अब गजकरणीका वर्णन करते हैं कि, अपान नाश्चको उत्परको उठाकर अर्थात् कठके नालमें पहुँचाकर उद्दर्से आत हुये अत्र जल आदि पदार्थको जिससे योगीजन जहमन करते हैं इसका क्रमसे जो अन्यास तिससे बशोध्रत (स्त्राधीन) है नाहियोंका समूह जिसके ऐसी उत्त क्रियाका नाम हठयोगके ज्ञाता आचार्योंने गजकरणी कहा है और कहीं. क्रमपिर चय करय नाहिमार्ग यहमा पाठ है। उसका यह अर्थ है कि, क्रमसे क्रिय अभ्याससे वशीध्रत है शिक्ति नार्थों कहाती है। ३८॥

ब्रह्माद्योऽपि त्रिद्शाः पवनाभ्यासतत्वराः ॥ अभूवन्नंतकभयात्तत्मात्वनमभ्यसेत् ॥ ३९ ॥

प्राणायामोऽवर्यमभ्यसनीयः सर्वात्तमैरभ्यस्तत्वान्महाफललाश्चेति स्वयन्नाह् च-तुर्मिः-जहात्व्य इति ॥ ज्ञहा आदिर्पेषां ते ज्ञहाद्यस्तेऽपि । किसुतान्य इत्ययः । त्रिह्माः देवाः अंतयतीत्यंतकः काळस्तस्माद्वयमंतकभयं तस्मात्यनस्य प्राणवायो-रभ्यातो रेचकप्रकर्जभकमेद्भिज्ञप्राणायामानुष्ठानकपस्तास्मस्तत्यरा व्यविता अभूव-न्नासन् । तस्मात्यवनमभ्यसेरप्राणमभ्यसेत् ॥ ३९ ॥

भाषार्थ-अन प्राणायामके अन्नश्य अभ्यात और तर्नोत्तमाँके कर्तव्य और फलका वर्णन करते हैं कि, ब्रह्मा आदि देनताभी अन्तकके मेंयेंसे अर्थात काल जीतनेके लिये प्राणनायुके अभ्यातमें तत्पर हुए अर्थात रेचक कृष्मक एक भेदोंसे भिन्न २ जो प्राणायाम उनके करनेमें सानधान रहे तिससे प्राणायामके अभ्यासको अन्नश्य करें ॥ ३९ ॥

यावद्वद्धो मरुदेहे यावश्चित्तं निराकुछम् ॥ यावदृष्टिभुवेशिंच्ये तावरकाछभयं कृतः ॥ ४० ॥ याविति ॥ यावचावित्कालपर्यतं महत्माणानिको देहे ज्ञरीरे वद्धः श्वासे व्ह्वार्सने कियाजून्यः । यावावचमतःकरणं निराक्तलमाविक्षेत्रं समाहितम् । यावद्धवीर्मध्ये दिष्टांतःकरणवृत्तिः । दृष्टिरत्र ज्ञलसामान्यार्थः । तावचावत्कालपर्यतं कलयतीति कालाज्ञज्ञकरस्त्माद्धयं कुतः । न कुतोऽपीत्पर्यः । तथा च वक्ष्यति—'खाद्यते न च कालेन वाघ्यते न च कर्मणा । साध्यते न स केनापं योगी युक्तः समाधिना ॥' इति । स्वाधीनो मवतीर्थयः ॥ ४० ॥

भाषार्थ-यावरकारुपर्यंत प्राणवायु इार्सिमें वह है अर्यात खास और उच्छुसि कियासे इत्य है और इतने अन्तःकरण निराहुळ अर्थात विक्षेपराहित वा सावधान है और इतने ख़ुक्क हियोंके मध्यमें अन्तःकरणकी हत्ति है तिविकार्यंत कारुसे भय किसी प्रकार नहीं होसिकता है आर्यात योगी स्वाधान होजाता है सोई आगे कहेंगे कि, उस योगीको कोई खा नहीं सकता न कोई कम बांध सकता न कोई उसे साधसकता जो योगी समाधिसे खुक्त है ॥४०॥

विभिनत्शाणक्षयामैनोडिचिके विश्वोधिते ॥ सञ्जमावदनं भित्तवा सुखाद्विज्ञति मास्तः ॥ ४३ ॥

विधिन्नदिति ॥ विधिन्नत्माणसंयामेरासनजारुंधरबंधादिषिधियुक्तमाणायामैनांडीचकं नाहीनां चर्कं समृहस्तरिमान्वकोधिते निमेले सित मास्तो नायुः सुसुम्ना इडापिंगळ-योमेध्यस्या नाडी तस्या वदनं मुखं भिन्ना सुखादन।यासाद्विक्षति । सुसुम्नांतरिति क्षेत्रः॥ ४१ ॥

भापार्थ-विधिष्ट्रीक अर्थात् आसन नालंबरनय आदि पूर्वक किये हुए प्राणायामासे नालि-योंके समूहके भलंप्रकार शोवन हुयेपर प्राणवायु इटा और पिंगळाके मध्यमें वर्तमानः सुप्रवान नाहीके मुख्यो भलंग प्रकार भेदन करके सुप्रवाके मुख्यमें सुखसे प्रविष्ट होनाता है ॥ ४१ ॥

मारुते मध्यक्षेत्रारे मनःस्थैयै प्रजायते ॥ यो मनःद्वरिषयीभावः तैवावस्था मनोन्यनी ॥ ४२ ॥

मारुत इति ॥ मारुते प्राणनायौ मध्ये सुदुम्नामध्ये संवारः सम्यक्ष्वरणं गमनं मूर्थर्गर्यतं यस्य स मध्यसंचारस्तास्मत् सति मनसः स्वैर्ये ध्वेयाकारम्रतिप्रवाहो जायते प्राहुर्मशति । यो मनसः सुस्थिरोमादः सुष्ठु स्थिरीमवनं सेव मनोन्मन्यवस्या । मनोन्नम्योगर्या । सनोन्नम्यार्या । सनोन्नम्यार्या । सनोन्नम्यार्या । सनोन्नम्यार्या । सनोन्नम्यार्याः स्वाधियः इत्यादिना ॥४२॥

भाषार्थ-जब प्राणवायुका सुब्रुवाके मध्यमें संचार होनेपर मनकी स्थिरता होजाती हैं कर्या-त ध्यान करने योग्य बस्तुके आकारकी ग्रुतियाँका प्रवाह होजाता है वह जो मनका मध्ये-प्रकार स्थिर होजाना है उसकोही मनोन्मनी अवस्था कहते हैं यहां मनोन्मनी चाब्द उन्म-नीका पर्याय है यही बात राजयोग और समाधियोगसे आगे कहेंगे ॥ ४२ ॥

तित्तद्वयं विधानज्ञान्धित्रान्ड्यति क्रंभकान् ॥ विचित्रक्रंभकाभ्यासाद्विचित्रां सिद्धिमाप्त्रयात् ॥ ४३ ॥

विचित्रेषु कुंभकेषु मञ्चि जनयितुं तेषां गुरूयफलमवांतरफलं चाह—तिसद्ध्य इति ॥ विधानं कुंभकानुष्ठानमकारस्त्रज्ञानंतीति विधानकारतिसद्ध्ये उन्मन्यवस्थाति-द्ध्ये चित्रान्द्धयेभेद्नादिमेदेन नानाविधान्द्धंभकान्द्ववैति । विधिन्नाश्च ते कुंभकाश्च विचित्रकंभकास्तेषामभ्यासादनुष्ठानाद्धिचत्रामणिमादिमेदेन नानाविधां विषक्षणां वा जन्मीपधिमेत्रतपोजाताम् । तदुक्तं मागवते-'जन्मीपधिमेत्रतपोमत्रीर्यावतिरिह सिद्ध्यः । योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्येयागमतिं त्रजेत् ॥' इति । जाप्तुयात्मत्याहारादिपरपर्येति मातः ॥ ४३ ॥

भापार्थ-विचित्र दुंभकप्राणायामीमें महत्ति होनेके छिये उनके छुख्य फल और अवात्तरफ-एको महत्ते हैं हुंभक प्राणायामकी विचित्रे हाता योगीजन उन्मनी अवस्थाकी सिद्धिके लिये अनेक प्रकारके अर्थाद्द स्योभेदन आदिसे भिन्न र प्राणायामीको करते हुं, क्योंकि विचित्र हुंभक्रप्राणायामीके अभ्यासि विचित्रही सिद्धिको प्राप्त होजाता है अर्थाद्द जन्म, ओपधी, मन, तप इनसे उत्पन्न हुई विलक्षण सिद्धि दुंभक प्राणायामीसे होती है। सीई भागवतमें कहा है कि, उत्तम जन्म भीपिय तप और मंत्र इनसे जितनी सिद्धि होती हुं उन सबको योगी योगसे प्राप्त होता है और अन्य कर्मोंसे योनको गृगवि श्राप्त नहीं होती और उस गतिकी प्राप्ति प्रस्थाहार आदिकी एरम्पग्रसे समझनी ॥ ४३ ॥

वय कंमकमेदाः ।

सुर्यभेदनमुज्ञायी सीत्कारी शीवली तथा । भक्षिका आमरी मुच्छी साविनीत्यषकुंभकाः ॥ २८ ॥

व्यषाष्ट्रकुषमाञ्चामाभार्निहिंशाति—सर्वभेदनामिति ॥ स्टष्टम् ॥ ४४ ॥ भाषार्य-अव आठ कुंभक प्राणायामाँको नाम लेलेकर दिखाते हें कि, सुर्वभेदन,, जनायी,

भाषायं—अन आठ द्वंभक श्राणायामाको नाम रहेकरे दिखाते ह कि, सूर्यभद्दन, उजाया, सीत्कारी, जीतही, महिका, आमरी, मुच्हों, प्लापिनी ये आठ प्रकारके ह्यंभक्रपाणायाम जानने ॥ ४८ ॥

> पूरकृति तु कर्तेन्यो वंधो जाळंघराभिषः ॥ क्रंभकृति रेचकारो कर्तेन्यस्तुःह्वियानकः ॥ ४५ ॥

वय हटिसिद्धावनन्यसिद्धां पारमहंसीं सर्वेक्वंभक्तसाधारणद्वित्तमाह निमिन-पूर्कात हाति ॥ जालंधर इस्यिभिधा नाम यस्य स जालंधरामिधो वंधो वश्चाति प्राण्ण्यामिति वंधः कंटाकुंचनपूर्वकं विद्युकस्य हिद्स्थापनं जालंधरवंधः पूरकांते पूरक्तस्याते पूर्वकांते इति कर्तव्यः । तुशब्दात्कुंमकाराद्योद्धियानकस्तु कुंमकाते क्वंमक्क्स्याते किंचिरक्वंभकारेषे रेचकस्याते रेचकारपूर्व कर्तव्यः । प्रयत्नविशेषण नामिमदेशस्य पृष्ठत आकर्षणमुद्धियानवंद्यः ॥ ४५ ॥

मापार्य-अब ह्रव्यसिद्धके विषे प्रमहंसीकी स्त सर्वेद्धंमक साधारण युक्तिको तीन श्लोकोंसे कहते हैं जो अन्यसे सिद्ध न होसर्कि कि, प्रक्रमणायामके अंतमें। आरुंघर है। नाम जिसका वह वंध करना अर्थात कंदके आहुंचनको करके चित्रकको हृदयमें रुग्रपनरूप आरुंघरवंधसे भाषवायुका वंधन करें और सुरुद्देस हुंमककी आर्दिम भी जालंघर वंध करें। और तुंभकके अंतमें अर्थात हुंमकको विविद्ध दोष रहनेपर और रुंचकपाणायामकी आदिम टाह्रियान वंधको करें प्रयत्न विद्योपसे नामिग्रदेशका पीठसे जो आकर्षण टमें, टाह्रियानवंध कहते हैं। १४९॥

भषस्तारङ्कंचनेनाञ्च कंटर्सकोचने ऋते ॥ मध्ये पश्चिमतानेन स्याध्याणो ब्रह्मनाडिमः ॥ ४६ ॥

थभस्तादिति ॥ केटस्य संकोचनं कंटतंकोचनं तिसम्कृते साते जाएंश्रपंधे कृते सातिपंदंः । वाध्ययदिहांचर्सवायस्वाद्यायस्वाद्याकृत्यनेनाशापुर्व्यनेनश्चापुर्व्यनेनश्चापुर्व्यनेनश्चापुर्व्यनेनश्चापुर्व्यनेनश्चापुर्व्यनेनश्चापुर्व्यनेनश्चापुर्व्यनेनश्चापुर्व्यनेनश्चापुर्व्यनेनश्चापुर्व्यनेनश्चापुर्व्यनेन्त्रयंः । वस्ति। विद्यनेयण प्राणो वायुर्व्वयनार्वे युपुरुनां गच्छः त्रीति ब्रह्मवाश्चापुर्व्यने वार्ष्यपुर्वे । वस्ति। युपुरुनाताङ्गामी स्वादित्ययंः । अत्र रहस्यम् । यदि श्रीष्ट्रव्याचिद्यनेव प्राणाः वार्ष्यस्य । विद्वयन्त्रयं । वस्त्रविद्याद्याद्यस्याद्वेशेनव प्राणाः वार्षाः सम्पत्र प्रीत्वात्यस्याद्वयन्त्रयः । वस्त्रविद्याद्याद्वयन्त्रयः । वस्त्रविद्याद्याद्वयन्त्रयः । वस्त्रविद्याद्याद्वयाद्वयः । विद्वयद्यस्याद्वयन्त्रविद्यान्त्रयः । सिद्यवात् । विद्वयद्यस्याद्वयन्त्रवे श्वीचीः किरोत्या प्राणायामाः कर्वव्याः । ययोग्निव वंथा ग्रुरुव्यवस्याद्वयन्त्रवे सम्पन्त्रवाते नातारोगीत्याद्वः । तथा हि । यदि मूख्वेधे कृते धातुस्यो विद्यमोऽन्निमार्वं नावार्गार्वे ग्रिट्यास्याद्वा ग्रुर्वेथः सम्यक् नादाभिव्यक्तिय स्याच्या । यदि ग्रुर्वेथः सम्यक् नादाभिव्यक्तिय स्याच्या । यदि ग्रुर्वेथः सम्यक् नादाभिव्यक्तिय स्याच्या वे ग्रुर्वेथः सम्यक् नादाभिव्यक्तियः स्याच्या वे ग्रुर्वेथः सम्यक् नादाभिव्यक्तियः स्याच्या वे ग्रुर्वेथः सम्यक् नादाः श्रीवं ॥ ॥ अत्रवादः । स्व

भापार्थ-कंद्रका संक्रोधन करनेपर अर्थात लाएंपर चंघ किय पाँछ श्रांब्रही नीचेक प्रदेशसे आकुंचन होनेसे अर्थात लाकुंचन होनेसे अर्थात लाकुंचन होनेसे अर्थात लाकुंचन होनेसे अर्थात प्रश्निक्त नामिमदेशमें प्राणका आकर्षण रूप उद्दिश्यान वंधसे प्राण] ब्रह्मनाडीगत होनाता है। प्रसुवा नाहोंमें पहुँच नाता है। यहां यह रहस्य अर्थात गोध्य वन्त है कि, यदि प्रसुवासे, जिह्नावंघ मठी प्रकार जानतिया होय तो जिह्नावंघक अर्थात नाहों चर्च के अर्थात नाहों से स्वे प्राणायान सिह होताहे अर्थात नाहुक प्रकोपनसेही धातुर्वाकों प्रसुवता उद्देश कराने और प्रसुवी प्रसुवता वाहुं से क्रियात नाहों के स्वेत प्रसुवी अर्थात नाहों के स्वेत प्रसुवी के स्वेत कराने और ये तीनों वंघ प्रसुवी जिह्नावंघ न जाना होय तो इस खेकर्म वक्त पितिसे प्राणायाम करने और ये तीनों वंघ प्रसुव अर्थात नाना होया तो इस खेकर्म वक्त पीतिसे प्राणायाम करने और ये तीनों वंघ प्रसुवस नानाना होया तो इस खेकर्म वक्त पीतिसे प्राणायाम करने और ये तीनों वंघ प्रसुव करने तो होया हो से स्वेत करने के स्वेत प्रसुवी नानारोगोंको पेदा करने होया हो से प्रसुवी के स्वाप्त करने महिला है कि, यदि मुख्वंघ के सेपर चातुका क्षत्र विश्रंप मंद्राप्ति नाद्यी मंद्राप्त करें। होता केरिस स्विवाके सम्मत्वकेसा है आक्रार निसका ऐसा बक्तिके समान प्ररीप (मळ) होय तो ती तो तो होता केरिस स्वत्वकेस समुहकेसा है आक्रार निसका ऐसा बक्तिकेस समान प्ररीप (मळ) होया तो ती

यह जानना कि, मूळवंध मछी प्रकार नहीं हुआ और यदि धातुओंकी पुष्टि मछी प्रकार मछ-ग्लाइ और अग्निका दीपन और मछी प्रकार नादकी प्रकटता होय तो यह जानना कि, मूळवंध मछीप्रकार हुँआ है. भावार्थ यह है कण्डके संकोच कियेपर नीचेके प्रदेशसे प्राणके आहुं-चनसे पश्चिमतान करनेपर नाभिष्रदेशों पृष्टसे प्राणके आकर्षणसे प्राण सुबुझामें पहुँख जाता है ॥ थ६ ॥

अपानमुर्वेष्ठत्याप्य प्राणं कठाद्घो नयेत् ॥ योगी वराविम्रकः सन्वोडज्ञान्दवयो भवेत् ॥ ४७ ॥

अपानिमिति ॥ अपानिपपानबायुर्ध्वसुर्द्धाच्याधाराकुंचनेन प्राणं प्राणवायुं कंटा द्धाः अधोमागे नयेरपापयेद्यः स योगी योगोऽस्पास्ति अभ्यस्यस्वेनेति योगो योगा भ्यासि। जराया वार्षक्येन विस्तुको विशेषण सुकः सत् । पोडशानामन्दानां समाहारः बोडशान्दं पोडशान्दं वयो यस्य स ताहशो प्रवेत् । यस्यापं 'प्रस्कांते तु कर्तव्याः' इत्यादिना त्रयाणां श्लोकानामेक एवार्थः पर्यवस्याति तथापां 'प्रस्कांते तु कर्तव्याः' इत्यानेन वंधानां काल उक्तः । 'अधस्तात्कुंचनेन' इत्यनेन वंधानां स्वरूपसुक्तम् । 'अपानक्ष्वसुर्वाप्यः' इत्यनेन वंधानां स्वरूपसुक्तम् । 'अपानक्ष्वसुर्वाप्यः' इत्यनेन वंधानां एल्लक्षे च कृते नामेरधोभाग आकर्षणास्यो वंध टाइयानवंधो भवत्येवेत्यासमञ्ज्ञोके नोकः । तयाच्येक्तं ज्ञानेवरेण गोताप्रधाध्यायव्यास्यायाम् 'मूलवंधे जालंधरवंधे च कृते नामेरधोमाग आकर्षणास्यो वंधः स्वयमेव मवति' इति ॥ ४७ ॥

भाषार्थ-अपानवायुको उद्धं (उत्तर) को छठाकर आधाराकुंघनसे प्राणवायुको जो कंठके अधोमागमें स्थापन करे वह योगी जगसे विद्युक्त होता है और षोड्या वर्षका है देह जिसका ऐसा होता है, यवांभ पूर्वोक्त तीनों रखेकांका अंतमें एकही अर्थ होता है तयांपि (पूरकान्त) इस प्रथम रखेकरे वर्ष्योका समय कहाहि और (अवस्तांख्त्रचनेन) इस दूसरे खेकरे वंधीन का सक्तम कहा (अपानमुख्येक्ष्याय्य) इस तिरिस खोकरे वर्णोका प्रक कहाहि यह विशेष जानना और जालंबरवंध मूलवंध करनेपर नामिके मागमें आकर्षण नामका वंध जो उद्धियान वंध है वह स्वर्थही होनाता है इससे इस खोकमें नहीं कहा, सोई ज्ञानेश्वर गीतामें छठे अध्यायकी व्याख्यामें कहाहै मूलवंध जालंबर किये पीछे आकर्षण नामका वंध स्वर्यही होजाता है ॥ ४७ ॥

ंञय सूर्यमेदनम् ।

सासने सुखदे योगी वद्धा नैवासनं ततः ॥ दक्षनादचा समाक्षव्य बहिःस्यं पदनं ज्ञानैः ॥ ४८ ॥

"योगाभ्यासकर्म वस्त्रे योगिनां योगसिद्धये । उषःकाले समुस्याय प्रातःकालेऽ-वना दुषः ॥ १ ॥ गुरुं संस्मृत्य शिरांस हृदये स्वेष्टदेवताम् । शौचं कृत्वा दंतशुर्हिः विक्ष्योद्धस्मधारणम् ॥ २ ॥ शुचौ देशे मठे रस्ये प्रतिद्वाप्यासनं सृदु । तत्रोपः विश्य संस्मृत्य सनसा गुरुभीश्वरम् ॥ ३ ॥ देशकाली च संकीत्र्य संकल्प्य विधि-पूर्वेकम् । जबेत्यादि श्रीपरमेश्वरमसादपूर्वेकं समाधितत्फलीसङ्चर्थमासनपूर्वेकान् प्राणा-यामादीन् करिष्ये । अनंतं मणमेद्देवं नागेशं पीठसिद्धये ॥ ४ ॥ मणिञ्जाजत्फणास-इसविधृतविश्वंभरामंडलायानंताय नागराजाय नमः । ततोऽभ्यसेदासनानि श्रमे जाते श्रवासनम् । अन्ते समभ्यसेचनु श्रमामाने तु नाम्यसेत् ॥ ५ ॥ करणी निपरीताख्यां क्रुंमकात्पूर्वमञ्चतेत् । जालेधरप्रसादार्थे क्रुंचकातपूर्वयोगतः ॥ ६ ॥ विधायाचमनं कृत्वा कर्मीगं प्राणसंयमम् । योगीन्द्रादीन्नमस्कृत्य कौर्माच शिववाक्यतः ॥ ७ ॥" कूर्भपुराणे शिववाक्यम्-"नमस्कृत्याय योगीद्रान्सशिष्यांश्च विनायकम् । ग्रहं चैवाय मां योगी गुंजीत सुसमाहितः ॥ ८ ॥ वच्वाभ्यासे सिद्धपीठं क्रंमका वंधपूर्वकम् । त्रयमे दश कर्तव्याः पंचबृद्धचा दिनेदिने ॥ ९ ॥ कार्यो सशीतिपर्यतं क्वंभकाः सुस-माहितैः । योगींद्रः प्रयमं कुर्याद्भ्यासं चंद्रसूर्ययोः ॥ १० ॥ व्यनुलोमविलोमाल्य-मेतं प्राहुर्मनीपिणः । सूर्यभेदनमभ्यस्य वैधपूर्वकमेकधीः ॥ ११ ॥: डज्जायिनं ततः कुर्योत्सीतकारीं शीवलीं ततः । मखिकां च समभ्यस्य कुर्योदन्यानवापरान् ॥ १२ ॥ गुद्धाः समभ्यसेद्भवा गुरुवकाद्ययाक्रमम् ॥ ततः पद्मासनं वध्या कुर्यान्नादानुधित-नम् ॥ १३ ॥ वभ्यासं सक्छं कुर्यादीश्वरापेणमाहतः । वभ्यासाद्वरियतः स्नानं क्डर्योदुष्णेन बारिणा ॥ १४ ॥ स्नात्वा समापयेन्नित्यं कमें संक्षेपतः सुधीः । मध्याद्वे ऽपि तथाभ्यस्य भिंचिद्धिश्रम्य मोजनम् ॥ १५ ॥ क्वर्वीत योगिनां पथ्यमपथ्यं न कदाचन । पूर्ण बापि छवंगं वा भोजनांते च मक्षयेत ॥ १६ ॥ केचित्कर्पूरमिच्छीते तांद्रं शोमनं तथा । चूर्णेन रहितं शस्तं पवनाभ्यासयोगिनाम् ॥ १७ ॥ इति चिंता-मणेवीक्यं स्वारस्यं मजते नाहि । केवित्पदेन यस्माचु तयोः शीतोब्णहेतुना ॥ १८ ॥ भीजनानंतरं क्रयीनमोक्षशास्त्रात्वानलोक्तनम् । पुराणश्रवणं वापि नामसंवर्धतेनं विमोः॥१९॥ सार्यसंच्याविधि कृत्वा योगं पूर्ववद्भ्यसेत् ॥ यदा त्रिघटिकाशेवो दिवसोऽभ्यासमा-चरेत् ॥ २० ॥ अभ्यासानंतरं कार्यो सायेसंख्या सदा बुधैः । अर्धरात्रे इटाभ्यासं विद्रच्यात्पूर्ववद्यमी ॥ २१ ॥ विपरीतां तु करणीं सायंकालाधरात्रयोः । नाभ्यसेद्रोज-नादूष्वै यतः सा न प्रशस्यते ॥ २२ ॥ " अषोद्देशातुक्रमणं कुंमकान्विवक्षस्तत्र प्रथ-मोदितं सूर्यमेदनं तद्युणांश्राह त्रिमिः-न्यासन इति ॥ सुखं ददातीति सुखदं तस्मिन्सु-खदे । ' शुभौ देशे पतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः । नात्युच्छितं नातिनीचं चैलाजिन-क्त्रशोत्तरम् ॥' इत्युक्तलक्षणे विविक्तदेशे सुलासनस्यः शुचिः ' समग्रीवशिरःशरीरम् ' <u>इति श्रुतेश्र चैलानिनकुक्तोचर आसने । आस्तेऽस्मिन्नत्यासनम् । आस्यतेऽनेनेति वा</u> वस्मिन् योगी योगाभ्यासी । ञासनं स्वस्विकवीरसिद्धपद्माद्यन्यवर्गः मुख्यत्वात्सिद्धाः सनमेव वा बच्चा वंधनेन संपाधिव कृत्वैवत्यर्थः । तत आसनवंधानंतरं दक्षा दक्षिण- भागस्या य। नाडी पिंगला तया वहिरस्यं देहाद्धहिर्वेषेमानं पवनं दाखुं शनैभैदंभंदमा-कृष्य पिंगलया मन्देमन्दं पूरकं कृत्वेत्यर्थः ॥ ४८ ॥

भाषार्थ-अब सूर्यभेदन आदि आठ छंमकाँकै वर्णन करनेके अभिरूपी आचार्य सबसे प्रथम जो सूर्यभेडन उसका वर्णन करते हैं और हम बुक्क योगाभ्यासका कम यहांपर हिस्से है कि. योगियोंकी योगसिद्धिके लिबे योगाभ्यासको बहते हैं उससे अर्थात प्रातःकालमें उठ-कर और शिरपर अपने गुरुवा और इंट्यमें अपने इंट्रदेवका वर्णन करके दंतधावन और भरमधारण करे शुद्धदेश और रमणीय मटमें कोमल आसन विद्याकर उसपर वैठकर और ईचर और गुरुका मनसे स्मरण करके देश और कालका कथन करके अर्थात विधिप्रस्कर संकल्प करके कि, अद्येत्यादि श्रीपरमेखस्की प्रसवतापूर्वक समाधि और उसके फरूकी सिद्धिके रिये आसनप्रवेक प्राणायामाँको करताहूँ और आसनकी सिद्धिके रिये अनंत जो नागेश देव हैं **उनको प्रणाम करे कि. मणियोंसे ज्ञोभायमान सहस्रों फणोंपर धारण किया है विश्वमंदल** जिसने ऐसे अनंत नागराजको ननस्कार है । फिर आसनोंका अभ्यास करे और परिश्रम होय तो ज्ञासन करे श्रीर एसका अन्तमें अभ्यास वरे श्रम न होय तो ज्ञासनका अभ्यास न करें और विपरात है नान जिसका ऐसी करणीका छुनकसे पूर्व अभ्यास करें जालंबाकी प्रस-इता (सिद्धि) के रिये हंमकसे पूर्व आदमन करके कर्मका व्यंग जो प्राणसंपम उसकी करें । क्रमपुराणमें जिनके वचनानुसार योगींद्रोंकी नमस्कार करके, क्रमपुराणमें जिनका वाक्य यह है कि, शिप्योंसहित और गणेश गुरु और गुझ शिमजीको नमस्प्रार करके भली प्रकार सावधान हुआ योगी योगाभ्यास करें और अभ्यासके समय कुंमकसे बंधपूर्वक सिद्ध पीठ (आसन) बांयकर पहिलेदिन दश प्राणायाम करे । फिर दिन दिनमें (प्रतिदिन) पांच २ की इदिसे प्राणायाम करे इस प्रकार अस्सी प्राणायामाँको भली प्रकार सावधान मनुष्य करे । प्रथम योगीन्द्र चंद्र भीर सूर्यका अभ्यास करे भीर शुद्धिमान मनुष्योंने यह अनुक्रोम निक्रीम रूपसे दो प्रकारका कहाहै और एकाग्रहाद्वि होकर वंघपूर्वक सूर्यभेदनका अभ्यास करके फिर डजायीको करे फिर सीत्कारी और शांतरीको करे फिर मलिकाका अभ्यास करके अन्य प्राणाः यामको करे वा न करे और प्राणीको बांधकर गुस्तुखसे कहे कमके अनुसार मुद्राओक। भक्ती प्रकार अभ्यास करे फिर पद्मासनको चांचकर नावको अटुन्तिन (स्मरण) करे और आदर-पूर्वक ईश्वरार्पणबृद्धिसे संपूर्ण अभ्यासको करे और अभ्याससे उठकर उपण जलसे सान की कीर संक्षेपसे किये नित्यके कर्मको स्त्रान करके शुद्धिमान मनुष्य समाप्त करें और मध्याह्मम भी तिसी प्रकार अभ्यास करनेके अनंतर ब्रह्म विश्वाम करके भोजन करें । योगियोंको प्रव्य भोजन करावे अपव्य कदापि न करावे । इहायची वा छोंग भोजनके अंतमें, भक्षण करें और कोई आचार्य कपूर और सुंदर तांशुरुके भोजनको कहते हैं और प्राणायामके अभ्यासी चो।ग-योंको चुनेसे रहित तांबुछ श्रेष्ट होता है केचितपद्के पढनेसे यह चिंतामाणिका वचन उत्तम नहीं हैं क्योंकि चंद्र और सूर्य शीत डप्णके हेतु हैं भीजनके अनंतर मोक्षशासको देखे (.विचारे) और जब तीन घटी दिन शेप रहे तब फिर अम्यास करें और अम्यासके अनंतर ब्रहिमान मतृष्य सार्यसन्व्याको करे फिर योगी अर्द्धराजके समय पूर्वके समान हठयोगका अध्यास करे और सायंकाल और अईराजके समयमें विपरित करणीका अभ्यास न करें, क्योंकि भोजनके जनंतर विपरीतकरणी श्रेष्ठ नहीं कहीं है। अब प्रासंगिकको समाप्त करके क्षोकार्श्यको कहते हैं कि, मुख्तायी आसनपर योगी पूर्वोक्त अर्थात छुद्ध देकों न अर्थत उंचा और न 'अर्यत नीचा और. निसपर कमसे वश्च मृगचर्य विकेहों ऐसे. आसनको बांधकर निसमें " श्रीवा क्षिति हार ये समान रहेंग इस श्रुतिके अनुसार ऐसे आसनको बांधकर अर्थात स्वासिक वीर सिद्ध पद्म कोईसे आसनसे बैठकर फिर दक्षिण नाडी (पिंगछा) से देहसे बाहर वर्तमान नो पतन उसको इनिः २ खींबकर अर्थात् पिंग्यल नाडीसे पूरकप्राणायामको करके ॥ ४८ ॥

आकेशादानलायाच निरोधाविष कुंभयेत् ॥ ततः अनैः सन्यनाडचा रेचयेत्पवनं अनैः ॥ १८९ ॥

बाकेशादिति ॥ केशानामर्यादीकृत्याकेशं तस्मानलाग्रानामर्यादीकृत्येत्यानलाग्रं तस्माच विरोधस्य वायोरवरोधस्यावधिर्भर्यादा यस्मिन्कर्मणि उत्तया कुंभयेत । केझपर्यतं नखाप्रपर्धतं च वायोनिरोधो यथा भवेत्तयातिप्रयत्नेन कुंभकं कुर्योदित्यर्थः । नत् 'इठान्निरुद्धः प्राणोऽयं रोमकूपेषु निःसरेत् । देहं विदारयत्येप कुष्टादि जनयत्यपि ॥ ततः अत्यापितव्योऽसौ क्रमेणार्व्यदृश्चिवत् । वन्यो गजो गजारिवी ऋमेण मृद्धतामि-यात । करोति शास्त्रनिर्देशाच च तं परिखंघयेत् । तथा प्राणो हृदिस्थोऽयं योगिनां क्रमयोबतः ॥ गृहीतः सेव्यमानस्तु विश्रंमसुपगच्छति ' इति वाक्यविरुद्धमिति प्रय-स्तेन क्षंमकं कुर्यादिति कथमुक्तामिति चेन । 'इटानिरुद्धः प्राणोऽयम् ' हातै वाक्यस्य बछादचिरेण प्राणजयं कारेष्यामीति खुद्धचारंमः ॥ एवंच वहभ्यासासक्तपरत्वात्कमे॰ णारण्यहस्तिवदिति दृष्टांतस्वारस्याच । अत एव सूर्याचंद्रमसोरभ्यासे धारयित्वा विधा-श्राक्ति निधारयेदिति निरोधत इति चोक्तं संगच्छते । तस्मारकुंभक्तस्वातिप्रयत्नपूर्वकं कर्तव्यः । यथापयातियत्नेन द्वंगकः क्रियते तथातथा तस्मिन्युणाधिक्यं भवेत । यदायथा च शिथिकः क्षंमकः स्यात्तयातथा गुणान्यत्वं स्यात् । अत्र योगिनामनुम-बोऽपि मानम् । पुरकस्तु शनैः शनैः कार्यः वेगादा कर्तव्यः । वेगादपि कृते पूरके दोषा. नाबात् । रेचकस्तु शनैः शनैरवे कर्तव्यः । वेगात्कृते रेचके बलहानिमसंगात् । ' ततः श्री:श्रीरेव रेचयेत्र तु शेवतः ।' इत्याधनेकथा ग्रंथकारोक्तिथ । ततो निरोधावधि कुंग-कार्नतरं अनै:शनैमेदंभंदं सच्ये वाममागे स्थिता नाडी सन्धनाडी तथा सन्धनाडया इढया पवनं वायुं रेचमेद्धाद्देनिःसारयेत् । पुनः शतैरित्युक्तिस्तु शतैरेव रचयेदित्यवधार-णार्था । तदुक्तं-'विस्मये च विषादे च दैन्ये चैवाबधारणे । तथा प्रसादने हर्षे वाक्यमेकं द्विरुच्यते ॥' इति ॥ ४९ ॥

भाषार्थ-जीर नखाग्रसे छेकर केशोंपर्यंत जबतक निरोध होय अर्थात संपूर्ण शरीरमें पवन स्कजाय तावत्पर्यंत वृंभकप्राणायाम करें कदाचित कोई शंका करें कि, हठसे रोका यह प्राण रोमक्र्योंके द्वारों निकसजायगा देह कटजायगा वा हुछ आदि रोग होजायँगे तिससे इसको अन्तसे प्रतीतिके द्वारा इसप्रकार रखना चाहिये जैसे वनके हस्तीको क्लोमें रखते हैं कि, वनका ₹.]

हाथी वा सिंह क्रमसे मृद होजाताहै और स्वामीकी आज्ञाका उर्छवन नहीं करता और शास्त्रोक्त अपने स्वामीकी आज्ञाको करता है तिसी प्रकार हृदयमें स्थित यह प्राण भी कमसेही योगियोंको ग्रहण करना चाहिये क्योंकि सेना करनेसे प्राण विश्वासको प्राप्त होजाता है । इस वाक्यके विरुद्ध लापका कयन है इससे केसे कहतेही कि, यत्नसे क्रंमकको करे यह किसीकी शंका ठीक नहीं क्योंकि 'हटसे रोकाहुआ प्राणः इस वाक्यका इस ख़ुद्धिसे आरंग है कि, बलसे शीवहीं में प्राणका जय करूंगा इससे उसके छियेही यह बदन है कि जो बहुत अभ्यास कर-नेमें असमय है इसीसे ऋमसे दनके हरतीके समान यह हटान्त भी ठीक रूमसक्ता है इसीसे सूर्य और चंद्रमा नाडीके अभ्याससे धारण करके (ग्रेककर) यथाशाकि धारण करे यह भी पूर्वोक्त संगत होता है तिससे अत्यंत प्रयत्नसे क्षेत्रक्रपाणायाम करना क्योंकि जैसे २. प्रयत्नसे क्षंमक किया जाता है तेसा २ ही उसमें अधिक ग्रुण होता है और जैसा २ .शिथिल होता है तैसा तैसा ही अल्पगुण होता है और इसमें योगियोंका अनुभव भी प्रमाण है पुरक्रप्राणायाम तो शर्नेः वा वेगसे करना क्योंकि वेगसे किये भी प्रकार दोष नहीं-और रेचक तो शर्नेः करना क्योंकि बेगसे रेचक करनेमें बलकी हानि होती है तिससे शनैः २ ही रेचक करे वेगसे न करे-इत्यादि अनेक प्रथकारोंकी वृक्तिसे पूर्वोक्त शंका ठीक नहीं है-फिर प्राणके निरोध पर्यंत हुंसै-कके अनंतर सब्य नाहींसे क्षयात वामभागमें रियत-इटानाडीके द्वारा प्राणवायका कार्ने र रेचन करें इस श्रीकमें पुनः जो हाँनेः पढ़ पड़ा है वह अवधारणके लिये हैं। सोई इस वचनमें कहा है कि, विस्मय विपाद दीनता और अवधारण (निश्चय) इनमें एक शब्दका दोवार निश्चय किया जाता है। भावार्य यह है कि नखके अग्रभागसे छेकर केक्सीपर्यंतकी पवनकी रोककर कंत्रक करे फिर वासभागमें स्थित इहा नाडीसे जने: २ पवनका रेचन करे ॥ ४९ ॥

क्रवाङ्शोधनं वातदोपघं क्रमिदोषहत् ॥ पुनःपुनरिहं कार्यं सूर्यभेदनसुत्तमम् ॥ ५० ॥

कपाळ्डोधनमिष्ठि ॥ कपाळस्य मस्तकस्य शोधनं शाद्धकरं वातना दोपा वातदोषा अशीतिप्रकारास्तान् इंतीति वातदोपमं कुमीणामुदरे जावानां दोपो विकारस्तं इरतीति क्रुमिद्रेपहत् । पुनःपुनर्भृषोभूयः कार्यम् । सूर्येणापूर्ये कुंमियत्वा चन्द्रेण रेचनमिति रीत्येदमुत्तममुत्कृष्टं सूर्यमेदनं सूर्यभेदनात्त्वमुक्तम् । योगिमिरिति द्येषः ॥ ५० ॥

भापार्य-यह सूर्यभेदन नामका इंभक मस्तकको इन्ह्र करता है और अस्सी प्रकारके वात-दोपोंको हरता है और उदरमें पैदाहुआ जो कृमि उनको नष्ट करता है, इससे यह उत्तम सूर्य भेदन वारवार करना अर्थात् सूर्यनाडीसे पुरक और छंभक करके चंद्रनाडीसे रेचन करे-इस रीतिसे किया हुआ यहं सूर्यमेंट्न योगीअनीने उत्तम कहाँहै ॥ ५० ॥

वरोजायी ।

सुर्वं हंयम्य नाडीभ्यामाकृष्य पवनं इनिः ॥ यथा उगति क्ंञ्तु हृद्यावृषि सल्वनम् ॥ ५१ ॥ उज्जायिनमाह सर्धिन-धुर्खिनित ॥ मुखमास्यं संयम्य संयतं, कृत्वा मुद्रियित्-त्यर्थः । कंठातु कंठादारम्य हृद्याबधि हृद्यमवधिर्यित्मिन्क्रमीण तत्त्रया स्वनेन सहितं यथा स्वात्तया । उमे क्रियाविक्षेषणे । उमित स्क्रिप्यते एवन इत्यर्थात् । तथा तेन प्रकारेण नाडीभ्यामिडापियलाभ्यां पर्यनं बायुं शनैर्मेद्माकृष्याकृष्टं कृत्वा पूरिय-तित्यर्थः ॥ ५१ ॥

भापार्थ-अब डेट ख्रोक्से उज्जायी मामके छुंभक्को कहते हैं छुखका संयमन (दावना) करके और इटा और पिंगला नाहींसे शुनिः शुनेः इस अकार पवनका आकर्षण करे जिस प्रकार बहु पवन कण्टसे हृदय पर्यंत शब्द करती हुई हुँगे ॥ ९१ ॥

पूर्ववरकुंभयेत्माणं रेचयेदिखया ततः ॥ क्षेप्मदोपहरं कंठे देहानखविदर्धनम् ॥ ५२ ॥

पूर्वविदिति ॥ प्राणं पूर्ववरदूर्वेण स्वयंभेदनेन सुवयं पूर्ववत् । 'बाकेकादानसामाच निरोधाविधि कुंमयेत' इस्युक्तरीत्या कुंमयेद्रोधयेत् । ततः कुंमकानंतरमिद्धया वाम-नाड्या रेचयेन्यजेत् । उक्तायिगुणानाइ साधिक्कोकेन-कुंम्पदोषहरिति । केंद्रे क्ंद्रम् देशे कुम्मणो दोषाः कुम्मदोषाः कासादयस्तान् इरतीति कुम्मदोषहरस्तं देहानकस्य देहमच्यगुवानकस्य जाठरस्य विवर्धनं विशेषेण वर्धनं दीपनमित्वर्थः ॥ ५२ ॥

भागार्थ-फिर सूर्यभेदनकें समान प्राणका हुनक करें फिर हुनक करनेके अनंतर इडा बामनाढीसे प्राणका रेचन करें अर्थात मुखके डारा चाहिर देशोंने पश्चको निकासे। अब डेट खोकसे उजायोके गुणांको कहते हैं कि कप्टमें जो खेज्य-कफके दोपेहें उनको हरता है और जठराधिको बढाताहै-अर्थात दोपन करता है॥ ५२॥

नाडीचछोदरावात्त्रगतदोपनिनाज्ञानम् ॥ गच्छता तिष्ठता कार्यमुख्याच्याख्यं तु कुंभक्कम् ॥ ५३ ॥

नाडीति ॥ नाडी शिरा जर्छ पीतमुद्दक्युद्दं हुंदमासमेताहेह् वर्तमाना धातव आधातवः। एपामितरेतरद्वं:। तेषु मतः माप्तो यो दोपो विकारस्तं विशेषेण नाश्च- वर्ताति नाडीजलोदराधातुमतदोपितनाञ्चनम् । मच्छता शमनं कुवैता मिछता स्थितेन वापि श्रेता उज्जाय्याख्यमुजायीत्याख्या यस्य तत् । तु इत्यनेन नास्य वैशिष्ट्यं घोतः यति । कार्यं कर्तेच्यम् । उज्जापीति क्वित्राद्धाः। मच्छता तिष्ठता तु वंधरहितः कर्तव्यः। ग्रंभकशब्दिविर्विराः। पुँक्षिमपाठे तु विशेषणेष्मपि पुँक्षिमः पाठः कार्यः १३

मापार्थ-नाडी जलेवर जीर संपूर्ण देहमें वर्तमान जी घातु इनमें जितने दोपहें जनको नष्ट करताहि-और यह उजायी नामका दूसक, गमन करते हुए वा वेठे हुए-मतुष्यको भी करने

योग्य है अर्थात् इसमें पूर्वीक्त वंघोंकी आवश्यकता नहीं ॥ ५३ ॥

अय सीत्कारी ।

सीत्कां कुर्योत्तया वक्रे घाणेनेव विज्ञंभिकास ॥ एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः ।। ५२ ॥

सीत्वारीकंभकमाह-सीत्कामिति ॥ वज्रे मुखे सीत्वां सीदेव सीत्वा सीवितिज्ञाव्यः सीत्कारस्तां कुर्यात् । ओष्ट्योरंतरे संख्यया निह्नया सीत्कारपूर्वकं मुखेन पूरकं कुर्या-दित्यर्थः । घ्राणेनैव नासिकयैवेत्यनेनोमाभ्यां नासापुटाभ्यां रेचकः कार्य इत्युक्तम् । पवज्ञव्देन वक्रस्य व्यवच्छेदः वक्रेण वायोर्निःतारणं त्वस्यासानंतरमपि न कार्यम् । वल्रहानिकारवात् । विज्ञिभिकां रेचकं कुर्यादित्यत्राणि संबध्यते । कुंभकरत्वनुक्तोऽणि सीरकार्योः कुंभकत्वादेवावगंतव्यः । अय सीरकार्याः प्रशंसा । एवसुक्तप्रकारेणा-भ्यासः पौतःपुन्येनानुष्टानं स एव योगः योगसाधनत्वेन द्वितीय एव द्वितीयकः कामदेवः कंदर्पः । रूपलावण्यातिदायेन कामदेवसादस्यात् ॥ ५४ ॥

भाषार्थ-अब सीत्कारी कंभकका वर्णन करते हैं-तिसी प्रकार सीतका (सीत्कार) को करे अर्थात् होनों ओग्रेंके मध्यमं एगोहुई-जिह्नासे-सीत्कार करताहुआ जुससे प्राणायाम करे और प्राणसेही अर्थात् नासिकाके दोनां पुटांसे रेचक करे-यहां एवं शब्दमे यह सूचन वित्या है कि, मुखसे रेचन न करें और मुखसे वायुका निकासना तो अभ्यासके अनंतर भी न करें क्योंकि उससे बळकीं हानि होतीहै-यहां विद्यंभिका राज्यसे रेचक प्राणायामका ग्रहण है-अब सीत्करिकी प्रशंसाको कहते हैं कि, इस पूर्वोक्त प्रकारके अन्याससे अर्थात वारम्वार करनेसे रूपयोगसे योगी ऐसा होजाता है मानो दूसरा कामदेव है अर्थात रूप और शोमार्ने काम-देवके समान होजाता है ॥ ५८ ॥

ĩ

ř

7

Ę

疕

元

योगिनीचऋसामान्यसृष्टिसंहारकारकः ॥ न क्षुधा न तृषा निद्रा नैवाडस्यं प्रजायते ॥ ५५ ॥

चीमिनीति ॥ योगिनीनां चर्त्रं योगिनीचर्त्रं योगिनीसमूहः वस्य सामान्यः संसेव्यः। सृष्टिः प्रपंचीतपत्तिः संहारस्तल्लयः तयोः कारकः कर्ता । क्षधा भोक्तिमच्छा न । तथा जलपानेच्छा न । निद्रा सुप्रप्तिन ,। आलस्यं कायचित्तगौरवात्मवृत्त्यभावः । कायगौ-र्वं कफादिना चित्तगौरवं तमोगुणेन । नैव मजावते नैव मादुर्भवति । एवमभ्यासयी-गेनेति प्रजायत इति च प्रतिवाक्यं संबच्यते ॥ ५५ ॥

भाषार्थ-योगिनियोंका जो समूह उसके भर्ळात्रकार सेवने योग्य होता है और संदिकी उत्पत्ति और रूप (संसार) इनका कर्ता होताहै और सीत्कारी प्राणायामके करनेवालेको क्षुवा तृष्णा और निद्रा आरुस्य सर्यात देह सीर चित्तके गीरवसे कार्यमें पर्वतिका समाव उनमें देहका गौरव कफ आदिसे और चित्तका गौरव तमोग्रिणसे जानना नहीं होते हैं॥५५॥

भवेत्सत्त्वं च देहत्य सर्वोपद्रववर्जितः ॥ अनेन विधिना सत्यं योगींद्रो भूमिमंडले ॥ ५६ ॥ स्रोतिति ॥ देहस्य इरीरस्य सर्चं वर्ळ च मवेत् । ब्रनेनोक्तेन विधिनाभ्यासिन् धिना बोर्गोद्री बोणिनार्भिन्द्र इव योर्गोद्री सुमिमंडळे सर्वेक्पद्रविशेषितः सर्वोपद्रवर्शोतो भवेतसत्यत् । सर्वे वावयं सावधारणभितिन्यायायदुक्तं फळं तत्सत्यमेवेत्यर्थः ॥ ५६॥ भाषाये—और देहका वळ वदता है इस पूर्वोक्त विधिकं करनेसे योगीननीमे इंद्र और स्पि-के संडळमें संपूर्ण उपद्रवासे रहित होता है यह सीक्कारी छंभक प्राणायामका फळ सत्य है अर्थात् इसमें संदेह नहीं है ॥ ५६॥ -

वय शीतली ।

जिह्न्या वायुमाकृष्य पूर्ववरकुंभसाधनम् ॥ जनकेत्राणरंत्राभ्यां रेचयरेपवनं सुधीः॥ ५७॥

श्रीतछीकुंभकमाह—जिह्नयेति ॥ चिह्नयोष्टयोबीहीर्नेभैतया विहंगमाधर्त्वचुसदशय। वायुमाकृष्य सन्ैः प्रत्कं कृत्वेत्ययैः । पूर्वेतत्प्रयेभदनवत्कुंभस्य कुंभकस्य साधनं विद्यानं कृत्वेत्यस्याहारः । सुधीः श्लोभना धीर्यस्य सः प्राणस्य रेप्ने वास्यां नासा-पुटांववराभ्यां झनकैः इत्तरेव । 'अन्ययसर्वनाम्नामकत्य् प्रावदेः' इत्यकत्त् । पवनं वार्षु रेवयेत् ॥ ५७।

माषार्थ-अब शांतळी छुंभकका वर्णन करते हैं कि, ओछोंसे बाहिर निकसी हुई उस्तू जिन ह्वासे जो पद्मीकी चंचुके समान हो वायुका आकर्षण करके अर्थात शनः २ पूरक प्राणायामको करके और फिर सूर्यनेदनके समान इंभक्के सावन विधिको करके शोभन है शुद्धि जिसकी ऐसा योगी नासिकांके छिद्रोंमेंसे शनः २ पवनका रेचन करे अर्थात् रेचक प्राणायामको करे ॥ ५७ ॥

गुरुमच्छीहादिकाञ्रोगाञ्ज्यरं पित्तं क्षुपां तृपाम् ॥ विपाणि ज्ञीतस्त्री नाम क्षीभकेयं निवंति हि ॥ ५८ ॥

श्रीतश्रीयुणानाह-गुल्मोति ॥ गुल्मश्र द्वीहश्च गुल्मण्डीही रोगविज्ञेषावादी येषां ते गुल्मष्ठीहादिकास्तान् रोगानामयान् ज्वरं ज्वराख्ये रोगं पित्रं पित्तविकारं श्वयां भोक्ति। भिन्नां त्वरा ज्वराक्यों विद्याण सर्भोदिविष्यानितिकारान् । श्रीतश्ची नामिति प्रसिश्वार्षक्रमन्यसम् । इयमुक्ता कुँभिका निहातं नितरां होते ॥ कुँमशन्दः स्नीशिमोऽपि । तथा च श्रीहरीः-'दरस्य कुँभीस्य शातकुंमजा' इति ॥ ५८ ॥

भाषार्थ-अब शीतळीके गुणेंको कहते हैं कि, शीतळी है नाम निसका ऐसा यह इंभक प्राणायाम गुल्म प्लीहा आदि रोग न्वर पित छुपा तृपा और सर्प आदिका विप इन सबको नष्ट करता है अर्थांते इसके कर्तांका देह स्वामानिक शीतल रहता है ॥ ५८ ॥

अय मिलका । दर्जीहपरि संस्थाप्य शुभे पाइतले सभे ॥ पद्मासनं भवेदेतत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५९ ॥

मह्माकुंभकस्य पन्नातनपूर्वक्रमेवानुष्ठानात्त्वाद्धे पद्मातनमाह—ऊवेंगिति ॥ उपर्यु-क्ताने ग्रामे ग्राहे टमे हे पार्चोस्तकेष्ठधः प्रदेशे ऊवेंः संस्थाप्य सम्यक् स्थापित्वा रसेत् । एतत्पद्मातनं भवेत् । कीहरां सर्वेषां पाषानां मक्तेंण नाशनम् । अत्रोपरीत्य-व्ययमुज्ञानवाचकम् । तया च कारकेषु मनोरमायाम्—'टपर्युपरिज्ञदीनाम्' इत्यन्त्रोन परिज्ञजीनामित्यस्योज्ञानब्रहीनामिति व्याख्यानं कृतम् ॥ ५९॥

मापार्थ-अब पद्मासन और मिलका नामसे छेमक प्राणायामको कहेते हैं कि, जंबाओंके ऊपर होनों पाईकि छाम (सीवे) तछींकी मछी प्रकार स्थापन करके की टिकना वह पत्मासन सब पावांका नाजक होता है यहां उर्धार यह अध्यय उत्तानका वाची है इसीसे कासकता मनोरमामें कहा है कि, 'उपर्यु की छुडीनो ' इसके व्याख्यानमें उत्तानबुद्धियांके ऊपर २ ईस्ट--

रकी बाह्र चरती है ॥ ५९ ॥

सम्यक्पन्नासनं वद्धाः समग्रीवोदरं सुधीः ॥ सुसं संयम्य यन्तेन त्राणं त्राणेन रेचयेत् ॥ ६० ॥

मिश्चिकाञ्चंभकमाह—सम्यागिति ॥ त्रीता च उद्दं च त्रीवीद्दम् । प्राण्धंमात्रादेक-बद्धादः । समं श्रीवीद्दं यस्य स समग्रीवीद्दः सुस्थिता धीर्यस्य स सुधीः पद्मासर्कं सम्बङ्ग स्थितं चच्चा सुखं संयम्य सर्वतं कृत्वा यत्नेन त्रयत्नेन व्राणेन प्राणस्थै-कर्ताण रंग्रेण प्राणं शरीरांतःस्थितं वासुं रेचयेत् ॥ ६० ॥

भाषार्थ-भक्तिप्रकार ऐसे पद्मासनको वांषकर निसमें श्रीवा और उदर समान (वरावर) हों बुद्धिमान महत्य मुखका संयम (वोचना) वरके ब्राणके द्वारा अर्थात नासिकाके एक

हिद्रमेंसे प्राणवायुक्ता रेचन करे ॥ ६० ॥

यया उगति हत्कंठे क्याञानिष सस्वनम् ॥ वेगेन पुरवेजापि हत्यद्मानिष मास्तम् ॥ ६३ ॥

रेचकप्रकारमाह-ययोति ॥ इच कंड्य इत्कंड तस्मिन् इतकंडि । समाहारद्वंदः १ कपाछावधि कपाछपर्यतं स्वनेन सहितं सस्वनं यथा स्थात्तया येन प्रकारेण छाति । प्राण इति होपः । तथा रेचयेत् । इत्यद्ममवधियेश्मिन् वक्षीण तत् इत्यद्मावधि वेगेन्व तस्सा माहतं वाद्यं पृत्येत् । चापीति पादपूर्णार्थम् ॥ ६१ ॥

भाषार्थ-उस प्राणका इस प्रकार रेचन करे जैसे वह प्राण शब्द सहित ह्व्य सीर कंउम कपालपूर्वत लगे फिर वेगसे ह्वयके कमलपर्वत वासुको वारवार पूर्ण करें अर्थात पूरक प्राणक

याम करे ॥ ६१ ॥

पुनर्विरेचयेत्तद्वस्पूरयेच पुनःपुनः ॥ यथैन छोडकारेण भस्ना नेगेन चाल्पते ॥ ६२ ॥

पुनितित ॥ तद्वत्पूर्वेक्स्पुनविक्चेयत्सुनः पुन्येचेत्यन्वयः । उक्तेऽर्थे दृष्टातमाह— चेथेवेति ॥ लोहकारेण लोहविकाराणां कर्जा भच्चामेधेमनसाधनीमृतं चर्मे यथैन येन प्रकारेण वेगेन चाल्यते ॥ ६२ ॥

प्रकारण वर्गन पाठवं । (एवं माणविष्या होग्से रेचन करे और तिसीप्रकार पूर्ण कर अर्थात् माणार्थ-फिर तिसीपकार प्राणवायुका वेगसे रेचन करे जैसे छोहकार मखाको च्छा-मुस्क करे और वेभी वार्रवार इस प्रकार वेगसे पूरक रेचक करने जैसे छोहकार मखाको च्छा-ता है ॥ ६२ ॥

त्रयेव स्वज्ञरीरस्थं चारुपरेष्वनं विषा ॥ यदा अमो अवेदेहे तदा सुर्येण पुरयेत् ॥ ५३ ॥

स्थिदिति ॥ तथैव तेनैव प्रकारेण स्वकारिरस्थं स्वकारि स्थितं पवनं प्राणं धिया मुद्धचा चालयेत् । रेचकपूरक्योनिरंतरावर्तनेन चालनस्यावधिमाह—यदा श्रम इति ॥ यदा यसिम् काले देहे इशिरे श्रमो रेचकपूरक्योनिरंतरावर्तनेनायासो भवेत्तदा हिमन् काले स्पर्यण स्वैनाडचा पूर्येत् ॥ ६३ ॥

भावार्थ-तैसेही अपने इर्रोरेमें स्थित पत्रनको बुद्धिसे चलाँवे और रेचक और पूरककी खब्रिय यह है कि, जन रेचक पूरकके करनेसे इर्रोरमें श्रम हो तब सूर्यनाडीसे पूर्ण करें दशा

यथोदं भवेतपूर्णजनिष्ठेन तथा छछ ।। धारयेक्रासिको मध्यतर्जेनीभ्यां विना दृढम् ॥ ६८॥

यथेति ॥ यथा येन प्रकारेण परनेनं दायुना लघु क्षिप्रमेवीव्हं पूर्ण भवेत्तथा तेन प्रकारेण सूर्यनाड्या पूर्यत् । 'लघुक्षिप्रमरं हृतम्' इत्यमरः । पूरकानंतरं यस्त्रतंन्धं वदाइ—वार्यदिति ॥ मध्यतर्जनीभ्यां मध्यमातर्जनीभ्यां विनागुष्ठानामिकाकानिष्ठिका- भिनातिकां हृदं धारयत् । अंग्रुष्टेन दक्षिणनासापुटं निरुष्यानामिकाकानिष्ठिका-यां वामनासापुटं निरुष्य नामिका हृदं गृहीयादित्यर्थः ॥ ६४ ॥

भाषार्थ- जिस प्रकार पत्रनेस शीबही छदर पूर्ण हो (भर) जाय है तिसीप्रकार सूर्येनाही-से पूर्ण करें। अन पूरकरे अनंतर जो कर्तव्य है उसका वर्णन करते हैं कि मध्यमा और तर्जनी अंगुडियोंके विना अर्थात् अंगुड अनामिका कार्निष्टिका इन तोनोंसे चाम नासिकाके पुढको दृढतासे रोककर प्राणवायुको ब्रह्ण करें अर्थात् सुंभक प्राणायामसे घारण करें ॥इश्व

विधिवत्कुंभकं कृत्वा रेचपोर्देडयानित्रम् ॥ बातिपत्तर्रेष्टमहरं ऋरीराप्तिविचेनम् ॥ ६५ ॥ ţ

विधविद्यति ॥ वंधपूर्वेकं कुंमकं कुत्वेख्या चन्द्रनाख्याऽतिलं वायुं रेचयत् ।
मखाकुंमकरयं परिपारी । वामनासिकायुरं दक्षिणमुजानामिकाकिनिष्ठिकार्थ्यां
निरुष्ट्य दक्षिणनासिकायुरंने मखावद्वेगेन रेचकपूरकाः कार्याः । श्रमे जाते तेनेव
नासायुरंन पूर्कं कुर्त्वायुरंने सखावद्वेगेन रेचकपूरकाः कार्याः । श्रमे जाते तेनेव
नासायुरंन पूर्कं कुर्त्वायुरंन दक्षिणं नासायुरं निरुष्य यथाद्यक्ति कुंमकं
धारयेत् । पद्यादिख्या रेचयेत् । पुनद्विक्षणनासायुर्क्यग्रेष्ठेन निरुष्ट्य वामनासिकायुरंन मखावज्ञादिति रेचकपूरकाः कर्तव्याः । श्रमे जाते तेनेव नासिकायुरंन पूर्कः
कृत्वानामिकाकिनिष्ठिकार्थ्यां वामनासिकायुरं निरुष्ट्य यथाद्यक्ति कुंमकं कुंमा पिगः
त्या रेचयेदित्येका गीतिः । वामनासिकायुर्द्यमनामिकाकिनिष्ठिकार्थ्यां दिक्षणनासिकायुर्द्यम् एकं कुत्वा व्यवद्यग्रेशेन निरुष्ट्य वामनासायुर्द्यने एत्यं वासनासिकायुर्द्यनम् । एवं व्यवद्याः श्रमे जाते तेनेव पूर्वेत् । वंधपूर्वेकं कृत्वेख्या रेचयेत् ॥ पुनद्विक्षणनासायुर्द्यम् अभे जाते तेनेव पूर्वेत् । वंधपूर्वेकं कृत्वेख्या रेचयेत् ॥ पुनद्विक्षणनासायुर्द्यम् पूर्वेकं कृत्वा विक्षयः वामनासिकायुर्वेन पूर्वेकं कृत्वा विक्षयः विक्षयः

भाषार्थ-विधिपूर्वक लुंभकको करके इंडानामको चन्द्रनाडीसे वायका रेचन कर इस भखा-कुंभककी यह परिपादी (कम) है कि वाम नासिकाके पुरको दक्षिणमुनाकी अनामिका किनिष्टिकाओंसे रोककर दक्षिण नासिकाके पुरसे भखाके समान वेगपूर्वक रेचक पूरक करने फिर अम होनेपर इसी नासिकाके पुरसे पूरक करके अँगूठेसे दक्षिण नासिकाके पुरको रोक-कर यथाशक्ति कुंमक प्राणायानसे बायुको धारण करे फिर इडासे रेचन करे फिर दक्षिण नासिकाके पुरुको अँगूठेसे रोककर वामनासा पुरुसे भवाके समान शीव २ रेचक पूरक कर-नेसे श्रम होनेपर तिसी नासिकाके हैंट्से एक करके अनामिका कानिष्टिकासे नासिकाके वाम-पुटको रोककर पथाञ्चाक्ति हुम प्रको कर पिंगला नाहींसे प्राणका रेचन करे एक तो यह रीति ह और नासिकाके वामपुरको अनामिका कानिष्टिकासे रोककर नासिकाके दक्षिण परसे पूरक करके शीव अँगुडेसे रोककर नासिकाके वामपुटसे रेचन करें इस प्रकार शत १०० वार करके श्रम होनेपर उससे ही पूरण कर और वंघपूर्वक करके इडानाडीसे रेचन करे फिर नासिकाके वृक्षिण पुरको सँगुठेसे रोककर नासिकाके वामपुरसे पूरक करके क्वित्रही नासिकाके वामपुरको सनामिका कनिष्टिकासे रोककर पिंगलासे महाके समान रेचन करे वारंवार इस प्रकार करके रेचक पुरककी आइतिमें जब श्रम होजाय स्वयांत् यकावट होजाय तब वामनासिका पुरसे पूरक करके अनामिका और कनिष्ठिकासे धारण करनेके अनंतर छंमक प्राणायामको करके पिंगळासे रेचन करे यह दूसरी रीति है जन महिका कुंभक्रके गुणिको कहते हैं कि बात पित्त श्चेष्मा (रूफ) इनको हरती है और श्रुपीरकी अग्नि (जठगांग्ने) को बढाती है ॥ ६५ ॥

कुंडलीबोधकं क्षिप्रं पवनं सुखदं |हितम् ॥ ब्रह्मनाडीम्रुले संस्थकफाचगेलनाञ्चनम् ॥ ६६ ॥

कुंडलीति ॥ क्षिप्रं शीर्ध्र कुंडल्याः सुप्ताया चोधकं नोधकतं पुनातीति पवनं पिन्नक्षारकं सुत्तं दवततीति सुत्तदं हितं विदेषक्षां कुंप्रकानां तर्वदा हितत्वेऽपि स्वयंभेदनीष्ट्रचारिनाष्ट्रचणी प्रायेणा हितो । सीत्कारीक्षी-तस्वी शीतले प्रायेणाच्यो हिते । मह्मालुंभकः समझीतोष्ट्रणाः सर्वदा हितः सर्वेषां कुंप्रकानां सर्वेरागहरत्वः सर्वेषां सर्वेषां सर्वेरागहरत्वः सर्वेषां सर्वेरागहरत्वः सर्वेराग्रावः सर्वेराग्रावः सर्वेराग्रावः सर्वेराग्रावः सर्वेरां प्रायेणा पित्तहरे । मह्माल्यः कुंप्रका त्रितेषहरः इति बोध्यम् । अस्तानां स्वयः प्रायेणा पित्तहरे । तथा च श्रुतिः—सर्वः चेत्रां च हद्वपरय नाड्याः स्वामां स्वयंनम्भिनिःदत्वेता । तथार्थमायम् सर्वेत्रस्वानं स्वयंनम्भिनिःदत्वेता । तथार्थमायम् सर्वेत्रस्वानं स्वयंनम्भानिःदत्वेत्रा । तथार्थमायम्भावत्वतेति विष्वयम्या सरक्रमणे मर्वाता। स्वयंनम्यान्तस्वत्वानं सरक्षानं सर्वेराग्रावः प्राणगितिम् तिवंशवस्त्वस्य नाइनं नाइक्दं ॥ ६६॥ ।

मायार्थ-और शीमही सोती हुई कुंडिंग्रेंग होयह है और पवित्र करता है और इसका दाता है और हित है यदापि संप्रण हंमक सब कार्कों हित होते हैं तथापि स्प्रेमेदन सौर क्यार्थी ये दोनों उच्चे हैं इससे शीतके समय हितकारी हैं और सीस्कारी शीति ये दोनों शीति हैं हैं तथापि स्प्रेमेदन सौर शीति हैं हैं हससे उण्णकार में हित हैं और मझा हंमक न शीति हैं ह उच्चे हैं इससे सब कर के हित हैं। यत्रीप संप्रेमेदन प्रायसे पातके हरता है और जावार शेवार शास सातके हरता है और अज्ञार शास हम तातके हरता है और सज्जानमामका हंमक निवार (सीनपात) के हरताहै यह और अज्ञार कर नेवार्छों जो सुश्चा नामको महानाही है सोई इस श्रीतम रिक्सों हैं कर एक सौर कर १० १ हर स्थान माति हैं उनमें से एक सौर कर १० १ हर हर से अज्ञान सात है कर नाही मुंद्रों और मस्तकके समझ गी है उस नाडी के हारा जे उच्चे ठीकर गयी हैं उस नाडी के हारा जे उच्चे ठीकर गयी हैं उस नाडी के हारा जे उच्चे ठीकर गयी हैं उस नाडी कहा तहीं कर समके छोटकर गयी हैं उस माति कहा सहा होता हैं। और अन्य सब नाही जहां तहीं कर समित जी कर आदि वर्गाट क्योंत पालि अपित प्रतिवंचक उसका गाशक हैं। १ ६ ॥

सम्यग्गानसमुद्धतं त्रंथित्रयविभेद्दस्य ॥ विशेषेणैव कर्तव्यं मह्मास्यं कुंभकं त्विदम् ॥ ६७ ॥

सम्यगिति ,॥ सम्यग्रहीमूर्तं गात्रे गात्रमध्ये सुषुम्नायामेव सम्यग्रह्तं ससुहूर्तं जातं यद्ग्रंथीनां त्रयं ग्रंथित्रयं ब्रह्मग्रंथिविष्णुग्रंथिरुद्ग्रंथिरूपं तस्य विशेषेण मेद्नु-नकम् । अत एव इदं शक्षा इत्थाख्या यस्योति सम्बाख्यं हुंसकं तु विशेषेणीव कर्ते-व्यम्बस्यक्तंव्यमित्यर्थः । सर्यसेद्नाद्यस्तु ययासंमधं कर्तव्याः ॥ ६७ ॥ भापार्थ-मळीप्रकार (इट) नो गाज (सुख्ता) नाडीके मध्यमें भळीप्रकार उत्पन्न हुई नो तीन टांपि अर्थात् ज्ञह्मदांपि विष्णुदांपि स्ट्रमांपिक्स नो तीन गाँठ हें उनका विशेषकर भेदननक हे इसीले यह भछा नामका सुम्भक प्राणायाम विशेषकर करने योग्य है जीर सूर्य-भेदन जादि ययासंभव (जब तय) करने योग्य हें अर्थान् आक्स्यक नहीं हैं॥ हुए॥

अय भागी।

वेगाद्धोपं पूरकं भंधनादं भूगीनादं रेचकं मद्मंदम् ॥

योगींद्राणामेवमभ्याययोगाचित्ते जाता काचिदानदेशीला॥ ६८॥

भ्रामरीक्षंभक्रमह-वेगादिति ॥ वेगात्तरसा घोषं सझव्दं यया स्थात्तया शृंगस्य भ्रमरस्य नाद इव नादो यस्मिनकर्मीण तत्त्वया पूर्वं कृत्वा । शृंग्यो भ्रमर्थेस्तासां नाद इव नादो यस्मिनकर्मीण तत्त्वया पूर्वं कृत्वा । शृंग्यो भ्रमर्थेस्तासां नाद इव नादो यस्मितस्या मंदंमंदं रेचकं कुर्योत् । पूरकानंतरं कृंभकरत् भ्रामर्थाः कृंभकरत्वदेव सिद्धो विशेषाच नोक्तः । पूरकोत्वक्रयोस्त् विशेषोऽस्तीति ताक्ष्मोक्ती । एवक्षक्रतियाभ्यसनमभ्यासस्तस्य योगो युक्तिस्तस्माधोर्गाद्राणां वित्ते काबिद्गिर्वर्शेष्या

ञानन्दे लीला फ्रीडा ञानंदलीला जातोत्पन्ना भवति ॥ ६८-॥

भाषार्थ- अब आमिंग कुम्मकका वर्णन करते हैं कि, बेगसे शब्दसाहित जैसे हो तैसे अम-रके समान है शब्द जिसमें उस प्रकारसे उम्मक प्राणायामको करते किर अमरिके समान है शब्द जिसमें उस प्रकार मंद २ रेचक प्राणायामको करें यहां प्रक्रिके अनंतर हुम्मकको भी करें कदाचित कहो कि, बह कहा क्यों मेहीं सो ठींक नहीं क्योंकि वह -विना कहे भी इससे मिंक है कि, आमींग भी कुम्मक ही है इससे विशेषकर कुम्मक नहीं कहा है और प्रक रेचक इन दोनोंमें तो विशेष है इससे वे दोनोंही कहे हैं इस प्रशंक रितिके हारा को अम्यास योग (करने) से योगींदींको वित्तमें कोई (अपूर्व) आनंदमें ठींका (क्रीडा) उत्पन्न होती है अर्थात इस आमिंग कुम्मक क्षम्याससे योगियांके चित्तमें शानंद होता है ॥ ६८ ॥

ञष मुच्छी ।

पूरकृति गाढतरं वद्धा जाछंघरं कृतेः ॥ रेचयेन्मूच्छंनास्येयं मनोमूच्छाँ सुख्मद्रा ॥ ६९ ॥

मुच्छोङ्गमकमाह-पूरकान्त इति । पूर्कस्पातिऽत्रसानेऽतिशयेन गाडतरं जालंधरारत्यं वधं वचा शनिमेदमेदं रेवयेत् । इयं द्वीभका सुच्छेनाल्या सूच्छेना इत्याल्या यत इति सुच्छेनाल्या कींदशी मनी मुच्छेयतीति मनीभूच्छो एतेन भूच्छेनाया विश्रहद्शे नपूर्विकं फलमुक्तम् । पुनः कींदशी सुवायदा सुंसे प्रददातीति सुवायदा ॥ ६९ ॥

भाषार्थ-अन मुच्छी नामके कुम्भकको कहते हैं कि, पूर्क प्राणायामके अन्तमें (पीछे) अ-त्यंत गाढरीतिसे पूर्वोक्त जारूंबर वंधको बांधकर इतिः २ प्राणवायुका रेचन करे यह स्तुंभिका मुच्छना नामको कहाती है और मनकी मुच्छांको करती है और उत्तम सुखको देती है ॥६९॥

वय प्लाहेनी।

अन्तः प्रवृतितोदारमारुतापूरितोदरः ॥

पयस्यगाधेऽपि सुलात्म्छन्ते पद्मपत्रवत् ॥ ७० ॥

ह्याविनीकुंमकमाह-अंतरिति ॥ अंतः शरीरांतः प्रवर्तितः पूरित उदारोऽतिशयितो यो मारुतः समीरस्तेनासमंतात्पूरिससुद्रं येन स पुमानगाधेऽप्यतरुरघर्शेऽपि पयित अले पद्माप्तवानसम्बद्धार्थे सुखादनायासात् ह्यते तरित बच्छिति ॥ ७० ॥ भापार्थे-अव प्रजीवनी नामके कुंमकका वर्णेन करते हैं कि, शरीरके मध्यमें प्रवृत्त किया (भरा) उदार (अधिक) जो पवन उस्ते आरें ओस्त पूर्ण है उदर जिसका ऐसा योगी अपा- चज्रूमें भी इस प्रकार व्वित्ता (तरता) है जैसे कम्मक्ता पत्र अर्थात् विना आश्रयकेही जरूक उत्तर त जाता है ॥ ७० ॥

त्राणायामित्रघा त्रोत्तो रेचपूरककुंभकैः ॥ सहितः केरस्थ्येति कुम्भको द्विविधो मतः ॥ ७९ ॥

वय प्राणायामदेदानाह-प्राणायाम इति ॥ प्राणस्य इतिरांतः संचारिवायोराय-मनं निरोधनमायामः प्राणायामः । प्राणायामन्क्षणमुक्तं गोरक्षनायेन-'प्राणः स्बदे-इजीवायुरायायस्तन्त्रिरोधनम् ' इति । रेचकश्च पुग्कश्च कुंमकश्च तेमेदीखिधा त्रिप्रकारक रेचकप्राणायामः प्रक्रप्राणायामः क्रंमकप्राणायामश्चीति । रेचकलक्षणमाहः याज्ञवः ब्क्यः-'वहिषेद्रेचनं वायोख्दराद्रेचकः स्पृतः' इति । रेचकप्राणायामळक्षणम्-'नि-ष्क्रम्य नासाबिक्सद्देशेषं प्राणं बहिः ग्रन्यामवानिष्ठेन । निरुध्यं संतिष्ठति रुद्धवायः स रेचको नाम महानिरोधः ॥ ' प्रकलक्षणम्-वाह्यादापूर्णं वायोरुदरे प्रको हि सः। ' पूरक्त्राणायामलक्षणम्-'वाह्य रियतं प्राणपुटेन वायुमाकृष्य तेनैव हानैः समंतात । नाडीश्च सर्वाः परिपुरयेद्यः स पूरको नाम ,महानिरोधः ॥' कुंमकलः क्षणम् ' धंपूर्व कुंभवद्वायोधीरणं कुंभको मदेत्। ' अधं कुंभकरतु पूरकप्राणायाः मादभिन्नः । भिन्नस्तु । 'न रेचको नैव च पूरकोऽत्र मासापुटे संस्थितमेव वायुम् । स्रानिश्चलं धारयते क्रमेण क्रमारूयमेतत्प्रवदंति तज्ज्ञाः' । व्यय प्रकारांतरेण प्राणायामं विभजते-सहित इति ॥ कुंमको द्विविधः सहितः केवलक्षेत्रि । मतोऽभिमतो योगि-नामिति शेषः । तत्र सहितो द्विविधः । रेचकपूर्वेकः कुंमकपूर्वेकथ । तदुक्तम्-'आरे-च्यापूर्यं वा कुर्यात्स वै सहितकुंमकः ।' तत्र रचकपूर्वको रेचकपाणायामादमिन्नः । पूरकपूर्वकः क्रम्भसः पूरकप्राणायामादाभिवः केवलक्षेमकः क्रमकप्राणायामादाभिवः । प्रायुक्ताः सूर्यमेदनादयः पूरकपूर्वकस्य कुंगकस्य मेदा ज्ञातन्याः ॥ ७१ ॥

भाषार्थ-अब प्राणायामके भेदोंको कहते हैं कि, रेचक प्राणायाम पूरक प्राणायाम हंभक प्राणायाम इन भेदोंसे प्राणायाम तीन प्रकारका योगियोंने कहाहै प्राणायामका छक्षण गोरक्ष- नायने यह कहाहै किं, अपने देहकी जो जीवनकी अवस्या उसको प्राण कहते हैं और उस सबस्याके सबरोधको सायाम कहते हैं अर्थात् अवस्याके अवरोधका नाम प्राणायाम है और रेचकका एक्षण याज्ञमल्क्यने यह कहा है कि उद्रसे बाहिर जो वायुका रेचन उसको रेचक क्हते हैं और रेचक प्राणायामका यह रुक्षण है कि संपूर्ण प्राणको नासिकाके छिद्रमेंसे बाहिर निकास और प्राणवायुको रोककर इस प्रकार टिके कि मानो टेह प्राणवायुसे जून्य है यह महान निरोध रेचकनाम प्राणायाम कहाता है और पूरकका एक्षण यह है कि वाहिस्से जो उद्दर्म नायुका पूरण वह पूरक होता है और पूरक प्राणयामका रक्षण यह है कि, वाहिर व्यितिहर्द पवनको नासिकाके पुरसे आकर्षण करके उसी नासिकाके पुरसे झने: २ संपूर्ण नाडियोंको नो पूर्ण करदे उस महानिरोधको पुरक्ताम प्राणायाम कहते हैं । छुंमकका रुक्षण यह है कि छुम (घट) के समान वायुको पूर्ण करके जो धारण वह छुमक होता है यह उंभक प्राणायाम तो पूरक प्राणायामसे अभित्र अर्थात दोनों एकही है भिन्न ती यह है कि न रेचक करें न पूरक करे किन् नासिकाके पुटमें हिन्ने हुए बायुकोही भलीपकार निश्वत रीतिपूर्वक कमसे जो धारण करना प्राणायामके ज्ञाता इसकी छूमक कहते हैं। अव अन्यप्रकारसे प्राणायामके विभाग करते हैं कि, कुंभक दो प्रकारका योगीजनीने माना है एक सहित और ट्रसरा केवल अर्यात रेचकपूरक और पूरकपूर्वक सोई कहाँहें कि वायुका लासमंतात रेचन वा पूरणकरके जो प्राणायाम करें वह साहितकुंभक होता है उन तीनॉमें रेचकपूर्वक प्राणायाम रेचकप्राणायाम रूप हे और पूरकपूर्वक दुंसक पूरकप्राणायामसे लिमिनरूप है और केन्नल हुंभक हुंभकप्राणायामसे लिमिनरूप है पूर्वोक्त सूर्यमेदन आदि नी प्राणायाम है वे पूरकपूर्वक हुंसकके भेद जानने । भावार्थ यह है कि, रेचकपूरक छंसकके भेदसे प्राणायाम तीन प्रकारका है शीर सिहत वेजलके भेदसे तुंभक दो प्रकारका है ॥ ७९ ॥

यान्त्केवछतिाद्धेः स्यारतित् तावद्भ्यसेत् ॥ रेचकं पूरकं मुक्ता सुतं यद्वायुघारणम् ॥ ७२ ॥

सहिवर्कुमकाभ्यासस्याविधमाह्-याविद्यति ॥ केन्नस्य केवरुकुंमकस्य सिद्धिः केन्नस्तिक्ष्यिवाद्यप्रवितं स्थाचावरपर्यंतं रहितकुंमकं स्वर्यमेदादिक्तमभ्यसेद्युविष्ठेते । युष्ठ-माभेदानंतरं यदा सुष्ठुम्नांतपेदश्चादा मर्वाते तदा केन्नरुकुंमकः सिद्ध्याति तदनंतरं सिद्धिकुंमका दश विकालिक कार्याः अशीतिसंस्यापूर्वितः केन्नरुकुंमकेत्व कर्तव्या । सित सामर्थ्ये केन्नरुकुंमकाः अशीतिराधिकाः स्थायोः । केन्नरुकुंमकत्य स्थाणाह्-रिक्कामिति ॥ रेचकं पूर्कं सुक्ता त्यस्ता सुद्धमनायासं यथा स्याच्या वायोधीरणं वायुवारणं यत् ॥ ७२ ॥

मापार्थ-अब सहित इंमक्के अभ्यासकी अवधिको कहते हैं कि, केवल इंमक्प्राणाया-मकी सिद्धि जनतक होय तनतक सूर्यभेदन आदि सिह्न इंमकका अभ्यास करें सुपुन्नाना-डीके भेदके अनंतर सुपुन्नाके अनंतर जब जल्पूरित घटके-समान शब्द होय तब केवल इंभक सिद्ध होता है उसके अनंतर दश वां वीस सहितहंमक करने असी संख्याका पूरण केवल र्छमकोसेही करना सामर्थ्य होय तो अस्सीसे अधिकभी केवल कुंमक करने। अन केवल छुंम कके लक्षणोंको कहते हैं कि, रेचक और पुरकको छोडकर छुखसे जो बायुका धारण उसे केवलकुंमक कहते हैं ॥ ७२ ॥

प्राणायामोऽयमित्युक्तः स नै केवलकुंभकः ॥ कुंभके केवले सिद्धे रेचप्रस्कर्वानेते ॥ ७३ ॥

माणायाम इति ॥ स वै मिश्रितः केवलक्केमकः प्राणायाम इत्ययसुक्तः । केवलं प्रश्नं सीति ॥ केवल इति ॥ रेलो रेलकः रेलब्ब पूरकब्ब रेलपूरकी ताभ्यां वर्जित राहिते केवले जुंभके सिद्धे सति ॥ ७३ ॥

भाषार्थ-वह मिश्रितप्राणायाम और देवल कुंभक्ष्राणायाम इस पूर्वोक्त प्रकारसे कहा

रेचक और पूरकसे वर्जित (विना) केवल कुंभकके सिद्ध होनेपर ॥ ७३ ॥

न तस्य दुर्छभं किंचित्रिष्ठ छोकेषु विद्यते ॥ शक्तः केवछक्कंभेन यथेष्टं वाष्ठुपारणात् ॥ ७८ ॥

नेति ॥ तस्य योगिनाखिषु लोकेषु इर्लमे दुष्प्रार्थ किंचिक्तिमपि यथेष्टं यथेच्छं वायोधीरणं वापि न विद्यते । तस्य सबै सुलमामित्यथैः ॥ शक्त इति ॥ देवलर्ज्जम-केन कुंमकाभ्यासेन शक्तः समयो यथेष्टं यथेच्छं वायोधीरणं तस्माद्वाद्यधारणात् ७४॥

मापार्थ-उस केवल हंभक प्राणायाम करनेवाले योगीको तीनी लोकोर्ग बोई वस्तु हुटैम नहीं है अर्थात त्रिलेकिकी संपूर्ण वस्तु छुटम हैं-चोर केवल ड्रंमकके अभ्यासमें जो समर्थ है वह अपनी इच्छाके अनुसार प्राणायुके धारणते ॥ ५४ ॥

राजयोगपदं चापि लभते नात्र संक्षयः ॥ कुंभकारकुंडलीबोधः कुंडलीबोधतो भवेत् ॥ ७५ ॥

राजीत ॥ राजयोगप्दं राजयोगासकं पदं रूमते । यत्र संशयो न । निश्चितमेतः दित्यर्थः । कुंमकाभ्यावस्य परंपरया केवल्यहेत्तसमाह । कुंमकादिति ॥ कुंमकारकुं मकाभ्यासारकुंडल्याधारशक्तिस्तस्या वीयो निद्रामंगो भवेत् । कुंडल्या बोछः कुंडल्कीबोधसस्मारकुंडलीबोधतः ॥ ७५ ॥

भापार्थ-राज्योगपदको भी योगी प्रात होता है इसमें संशय नहीं अब उस्भक्ष्मणायामके अभ्यासको परम्परासे मोक्षका हेनु वर्णन करते हैं-कि उस्भक्ष प्राणायामके अभ्याससे आधार शक्तिकप रुज्डब्रीका बोध होता है-अधात निदाका मंग होता है और रुज्डब्रीके बोधसेण्डा

अनर्गेष्ठा सुपुम्ना च इंडिसिझिश्च नायते ॥ इंडे विना राजयोगं राजयोगं विना इंडः ॥ न सिच्यति ततो युगममानिष्पत्तेः समभ्यसेत् ॥ ७६ ॥ ₹. 7

व्यक्तींलेंति ॥ सुद्धम्नानाडव्यक्तींका कफावर्गकरहिता मनेत् । हटस्य हटाभ्या-सस्य सिद्धिः प्रत्याहारादिपरंपरया कैन्नस्यरूपा सिद्धिर्जायते । हटवोगराजयोगसाध-नयोः परस्परोपकार्योपकारकत्वमाह—हटं निनेति ॥ हटं हटयोगं निना राजयोगो न सिध्यति राजयोगं निना हटो न सिध्यति ततोऽन्यतस्य सिद्धिनोस्ति । तस्मान्नि-ष्पत्ति राजयोगिक्षिद्धमामयोदीकृत्य या निष्पाचिस्तस्या राजयोगसिद्धिपर्वतं युग्मं हटयोगराजयोगद्धमम्भयसेद्गुतिक्षेत् । हटातिरिक्ते साक्षारपरपर्या न राजयोगसाधनेऽत्र राजयोगशब्दः । जीननसाधने कांगले जीननशब्दमयोगनत् । राजयोगसाधनं चतुर्थो-पदेशे वस्त्यमाणमुन्मनीशांभवीमुद्धादिस्पमपरोक्षानुभृतावुक्तं पंचदशांमरूपं दशांगरूपं च । नानयसुधायामुक्तं हश्यानुकिद्धादिस्पम ॥ ७६ ॥

कुंभकप्राणरोधांते कुर्योचित्तं निराश्रयम् ॥ एवमभ्याष्ठयोगेन राजयोगपदं त्रजेत् ॥ ७७ ॥

इटाभ्यासाद्राजयोगपाप्तिप्रकारमाह—कुंभकोति ॥ कुंभकेन प्राणस्य यो रोधस्त्र इ स्याति मध्ये चित्रमंताकरणं निराश्रयं कुर्यात् । संग्रह्मातसमाधी जातायां ज्ञह्माकार-स्थितेः परं नैराग्येण विरुद्धं कुर्यादित्यथेः । प्रवप्तक्तरीत्याभ्यासस्य योगो छुक्तिस्तेन 'योगः संनहनोपायस्यानसंगतियुक्तिषु' इति कोशः । राजयोगपदं राजयोगात्मकं पदं अजेत्प्राप्तुयात् ॥ ७७ ॥

भाषार्थ-अब हठयोगके अभ्याससे राजयोगप्राप्तिका प्रकार कहते हैं . कि, इस्मक्ष्माणाया-मसे प्राणका रोध करनेके अंत (मध्य) में अन्तःकरणको निराश्यय करेहे. अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधिके होनेपर ब्रह्माकार स्थितिके अनन्तर वैराग्यसे चित्तका ख्य करेहे इस पूचोक रीतिसे किये अभ्यासके योगसे राजयोग पदको प्राप्त होता है यहाँ योगपद् इस कोशके अनुसार सुक्तिका बोषक है ॥ ७७ ॥

ृ उपदेशः

वृष्टः इहारवं वदने प्रसन्नता नादस्क्रटरवं नयने सुनिर्मले ॥ अरोगता विद्वनयोऽप्रिदीयनं नाडीविश्चादिईउयोगळक्षणम् ॥७८॥

इति हठयोगप्रदीपिकायां दितीयोपटेशः ॥ २ ॥

इठासिष्टिज्ञापकमाह-चयुःकुक्तवामिति ॥ यपुषो देहस्य कुशुर्वं कार्श्य वदने सुखे मसन्नता मसादो नादस्य घनेः स्फुटर्दं प्राकट्यं नयने नेत्रे सुष्टु निर्भेले व्यरोगस्य माबोडरोगता आरोग्यं विंदोर्घातोजेयः क्षयामावरूपः अग्नेरीदर्यस्य दीपनं दीप्तिनीहीनां विशेषेण शुद्धिमेळापगमः एतद्धरस्य हठाभ्यासविद्धेभोदिन्या छक्ष्यतेऽनेनोति छक्ष-णय ॥ ७८ ॥

> इति श्रीहरुपदीपिकान्याख्यायां उपोत्स्नामिधायां ब्रह्मा-नंदक्रवायां द्विवीयोपदेशः ॥ २ ॥

भाषार्थ-अन हठयोगसिद्धिके रुक्षणोंको कहते हैं कि देहकी क्षुशता प्रसन्ने प्रसन्नता नाद् की प्रकटता और दोनों नेत्रोंकी निर्मळता रोगका अभाव विन्तुका जय अर्थात् नाडियोंमें महका सभाव ये हठयोगसिद्धिके हदाण हैं अर्थाद ये चिह्न होय तो यह जानना कि, इसको हउयोगकी सिद्धि होजायगी ॥ ७८ ॥

इति श्रीहठयोगप्रदीपिकायां पण्डितमिहिरचन्द्रकृतभाषाचित्रत्तिसहितायां द्वितीयोपदेशः॥२॥

अय त्वीयोपदेशः ३.

सरोडननपात्रीणां यथाधारोऽहिनायदः ॥ संनेषां योगतंत्राणां तथाधारो हि कुंडळी ॥ ३ ॥

वय कुंडल्याः सर्वेयोगाश्रयत्वमाह-सङ्गैकेति ॥ शैलाश्र वनानि च शैलवनानि तैः सह वर्तमानाः सञ्चेलवनास्ताश्च ता धाञ्यश्च मूमयस्तासाम् । धाञ्या एकत्वेडपि देशमे॰ प्रदेशमादाय बहुवचनम्। महीनां सर्पाणां नायको नेताऽहिनायकः सेषी यथा यहदाधार आश्रयस्तया तहत् । सर्वेषां योगस्य तंत्राणि योगतन्त्राणि योगोपायास्तेषां कुंड-ल्याधारक्षाक्तिराश्रयः । कुंडलीवोधं विना सर्वयोगोपायानां वैयर्थ्यादिति मावः ॥१ ॥

मापार्थ-अब इसके अनंतर कुण्डली सर्व योगोंका आश्रय है इसका वर्णन करते हैं कि, नैसे संपूर्ण पर्वत वनांसहित जितनी भूमि हैं उनका आश्रय (आधार) जैसे सपांका नायक शेष है तिसी प्रकार योगके समस्त उपायोंकां साधार भी कुण्डली है क्योंकि कुंडलीके बोध विना योगके संपूर्ण उपाय व्यर्थ हैं यद्यपि मुमि एक है-त्तयापि देशमेदसे भूमिके मेदको मान-क्षर बहुबचन (घात्रीणाम्) यहां दिया है ॥ १ ॥

सुता गुरुप्रहादेन यदा जागति कुंडली ॥ तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यंते ग्रंथयोऽपि च ॥ २ ॥ कुंदर्शकोवोधस्य फलमाह झुञ्चाम्—सुप्तेति ॥ सुप्ता कुंदर्शी युरोः प्रसादेन बद्धः जागतिं बुध्यते तदा सर्वाणि पद्मानि बद्धचक्राणि मिद्यते 'मिक्गानि मवंति । प्रंथयोऽपि च ब्रह्मप्रंथिदेच्युप्रंथिरदृष्ट्यंयो भिद्यते भेदं प्राप्तुवंतीत्यन्वयः ॥ २ ॥

भाषार्थ-अन कुण्डरीके बोधका हो श्लोकोंसे फर्क कहते हैं नव रे गुरुकी प्रसन्नतासे सोती हुई कुण्डरी नागती है तन संपूर्ण पद्म अर्थात ह्दयफे प्रस्चक मित्र होजाते हैं अर्थात खिल-जाते हैं और ब्रह्मप्रीय विष्णुवार्य स्ट्रप्रीयकृप तीनों ग्रीय भी खुळ जाती हैं प्र २ ॥

प्राणस्य ज्ञून्यपदवी तथा राजपथायते ॥ तदा चित्तं निराहंवं तदा काठस्य वंचनम् ॥ ३ ॥

प्राणस्यति ॥ तथा शून्यपद्वी सुबुम्ना प्राणस्य वायो राज्ञां पंथा राजप्यं राज्ञ-प्रथमिवाचरति राज्ञपथायते राज्ञमार्योयते । सुखेन गमनसंभवात् । तदा विक्तमार्छ्य-नमाश्रयस्तरमान्निर्गतं निरालंबं निर्विषयं मवति । तदा काळस्य मृत्योवेचनं प्रताक्-रणं भवति ॥ ३ ॥

भाषार्थ-जोर तिसी प्रकार प्राणकी शृत्यपदबी (सुप्रत्रा) राजपथ (सडक) के समान होजाती है अर्थाद प्राण उदामेंको सुखसे गमन करने रुगता है-जोर उसी समय चित्तमी निरा-छंव होजाता है अर्थाद-विषयोंका अनुरागी नहीं रहता और उसी समय काळका वंचन होताहै अर्थाद मृत्युका भय दूर होजाता है ॥ ३॥

> सुषुम्ना ज्ञूत्वपदवी ब्रह्मांश्रं महापयः ॥ इमज्ञानं श्रांभवी मध्यमागेश्रेत्येकवाचकाः ॥ ४ ॥ तरमात्तवेत्रयत्नेन प्रवोधयितुमीश्वरम् ॥ ब्रह्महारमुखे सुतां सुद्राभ्यासं समाचरत् ॥ ५ ॥

सुपुम्नापर्यायानाह-सुपुम्नीति ॥ इत्युक्ताः शन्दा एकस्य एकार्यस्य वाचकाः एकः वाचकाः । पर्याया इत्यर्थः । स्पष्टः श्लोकार्यः ॥ तस्मादिति ॥ यस्मात्कृंडलिवोधेनैकः पृट्चक्रभेदादिकं भवति तस्मात्ववैभयत्नेन सर्वेण अयत्नेन झहा सिंबदानदृष्टकाणं तस्य हारं प्राप्त्युपायः सुपुम्ना तस्या सुखेऽप्रमाग्ने सुपुम्नाहारं पिथाय सुप्तामीत्र्यरेः कुंडली प्रवोचयितुं प्रकर्षेण वोधयितुं सुद्राणां महासुद्रादीनामभ्यासमादाति समाचरे-तस्यगाचतेत् ॥ ४ ॥ ९ ॥

माधाय-अन धुप्रमानाबीके पर्यायोको कहते हैं कि, सुप्रमा, कूत्यप्त्री, ब्रह्मांस्त्र, महाप्य, रमजान, ज्ञाभवी, मध्यमार्ग ये संपूर्ण शुरूर एक लंबिके वाचक हैं अर्थात् इन सबका धुप्रमा नाबी अर्थ है जिससे खुण्डलीके तीयसेही पूर्वक्र भेद आदि होते हैं: इससे संपूर्ण प्रयत्नसे सिंबदानंदरूप ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय नी सुप्ता देसके अग्रमानमें धुप्रमाके डारको डककर सोती हुई नो ईश्वरी (कुण्डकी) है उसका प्रवोध (नगाना) करनेके क्रिये मुद्राओंका अभ्यास करें अर्थात महामुद्रा आदिको क्रेर ॥ ४ ॥ ५ ॥

महाबुद्रा महाबंधो महावेधश्च खेचरी ॥ उडचानं मूळबंधश्च बंधो जारुधराभिधः ॥ ६ ॥ करणी विपरीतारुया बञ्जोळी शक्तिचारुनम् ॥ इदं हि सुद्राद्शकं जरामरणनाशनम् ॥ ७ ॥

मुद्रा उद्दिशति-महामुद्देत्यादिना साधेन ॥ साधोषीः स्पष्टः ॥ मुद्राफलमाह-साई-द्वाप्रयाम्-इदमिति ॥ इदमुक्तं मुद्राणां दशकं जरा च मरणं च जरामरणे तयोकी-इतने निवारकम् ॥ ६ ॥ ७ ॥

भाषार्थ-महासुद्रा, महावंध, महावंध, खेचंदी, ठडवान, मूळवंद, जाळंबरवंथ, विपरीतक-रणी, वज्रोळी, राकिचाळन थे पूर्वोक्त दशुस्त्रा जग और मरणको नष्ट करती हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

आदिनायोदितं दिन्यमष्टेयपंप्रदायकम् ॥ बङ्कमं सर्वेसिद्धानां दुर्छमं मरुतामपि ॥ ८ ॥

खादिनायोते ॥ जादिनायेन क्षंस्रनोदितं काथेतस् । दिवि भवं दिक्यसुत्तमस् । क्ष्रश्ची च तान्यैत्रयोगि चाधैन्ययोगि काथैनमामहिमामार्गाणविमामाप्तिमाकाम्येशताबाधीतारुवानि । तत्राणिमा संवरुवमात्रेण मञ्जरवप्तमे परमाणुवदेहस्य सद्भाता १ ।
महिमा मक्करवापूरेणाकाशादिवन्महद्भावः २ । गरिमा ल्रुत्तरस्यापि तृल्लादेः पर्वतादिवद्गुरुक्तमावः ३ । ल्राधिमा ग्रुक्तरस्यापि पर्वतादेस्त्लादिवल्लुमावः ४ । माप्तिः
सर्वभावसाणिष्ट्यस् । यथा मुमिस्य एवांगुरुव्यमेण स्पृशाति चंद्रमसस् ५ । माप्तिः
स्वभावसाणिष्ट्यस् । यथा असिस्य एवांगुरुव्यमेण स्पृशाति चंद्रमसस् ५ । माप्तिः
स्वभावसाणिष्ट्यस् । यथा वदक उत्र भूमा निमन्नस्युत्मन्नति च ६ । ईशता भूतमोतिकाणां प्रभवाष्ययसंस्थानविशेषसामध्यम् ७ । वांशतं भृतमोतिकानां स्वाधीनकरणस् ८ । तेषां प्रदायकं प्रकर्षेण द्वातीति तथा तं सर्वे च ते सिद्धात्र कपिलाद्यस्तेषां वक्षमं प्रियं महतां देवानामपि दुल्मां वृद्यपां किस्रुतान्येषामित्यर्थः ॥ ८ ॥

भाषार्थ-और ध्यादिनायने कहें जो उत्तम आठ ऐष्वर्य उनको मर्छा प्रकार देती हैं और संपूर्ण जो किएक बादि सिद्ध हैं उनको प्रिय हैं जीर देवताओंकोमी दुर्लम हैं वे आठ ऐष्यर्य ये हैं कि अठ ऐष्टिमा, लिष्मा, त्राहित प्रकारम, इंशता, चिराता जनमें अणिमा वह सिद्धि होती है कि, योगीके संकल्पमात्रसे प्रकृतिके दूर होनेपर प्रमाणुके समान सहन होनाय उसे अणिमा १ कहते हैं और फ्राहितके आपूरको करके अर्थात् अपने देहमें मसके आकाराके समान महान स्थल होजानेको महिमा २ सिद्धि कहते हैं। और त्रल (स्ट्वर्ष) आदि एस्प्रिय होना है उसे गरिमा इंग्रेक्ट्रिसे होना कि अर्थत् अर्थत् अर्थत् अर्थत् अर्थत् आदि अर्थत् अर्थते अर्थत् अर्यत् अर्थत् अर्यत् अर्थत् अर्थत्यत् अर्थत् अर्थत् अर्थत् अर्थत् अर्थत् अर्थत् अर्थत् अर्थत् अर्थत

8 कहते हैं और संपूर्ण पदार्थाके जो सिमीप पहुँचना जैसे कि स्मिपर स्थित योगी, अधालिक अग्रसे चॅद्रमाका स्पर्श करले इसे ग्राप्ति ९ कहते हैं और इच्छाका अनिष्णत अपाद जलके समान समिम प्रति है। पांची महासूत और उनसे उत्पत्त भीतिकपदार्थ इनकी उत्पत्ति और प्रत्य और पारतके सामर्थ्यको ईत्राता सिद्धि ७ कहते हैं और सुत मौतिक पदार्थोंको अपने अर्थान करनेको विश्वता ८ सिद्धि कहते हैं और सुत मौतिक पदार्थोंको अपने अर्थान करनेको विश्वता ८ सिद्धि कहते हैं ये आर्जी सिद्धि पुर्वोक्त दुर्शी सुद्राओंके करनेसे होती हैं ॥ ८ ॥

गोपनीयं प्रयत्नेन यथा रत्नक्रंडकम् ॥ कर्त्यचित्रेन क्तव्यं कुडस्रीसुरतं यथा ॥ ९ ॥

गोपनीयमिति ॥ प्रयत्नेन प्रकृष्टेन यत्नेन गोपनीयम् । गोपनीयत्वे हष्टांतमाह-पर्यति ॥ रत्नानां द्वीरकादीनां व्हंडकं रत्नकांडकं यथा येन प्रकारण गोप्यते तहृत् । कत्यापि जनमात्रस्य यहां करपापि ब्रह्मणोऽपि नैव वक्तव्यं नैव वार्च्यं किष्ठतान्यस्य तत्र हष्टांतः । कुळव्वियाः द्वारतं कुळव्वीस्ततं संगमनं यथा तहृत् ॥ ९ ॥

भापार्थ-ये पूर्वोक्त दशों छहा इस क्कार प्रयन्ति ग्रुप करने योग्य है जैसे होरा आदि रिलीका करंड (देवरी) ग्रुप करने योग्य होतींहैं और किसी मनुष्यको वा ब्रह्माको भी इस प्रकार नहीं कहनी. अन्यकी तो कीन कथा है जैसे हुळीनबीके हुरत (संगम) को किसी को नहीं कहती हैं ॥ ९॥

वय महासुद्रा ।

पादमुळेन वामेन योनि संपीडच दक्षिणम् ॥ मजारितं पदं कृत्वा घराभ्यां घारयेदृदम् ॥ १० ॥

द्विविध्दुरीदेषु भवमाष्ट्रियंत महाधुद्रां ताबदाह-पादक्षेत्रोति ॥ वामेन सन्येन पादस्य युटे पादपृकं पार्धिणस्तेन पादसूक्षेन वामपादपार्धिणनेत्यथः । योति योति स्वानं गुरुमेद्रयोगेस्यमागं संपीडवाकुंचितवामपादपार्धिणना योनिस्थानं दृढं संयोद्यै- स्वर्षेः। दक्षिणं सत्येतरं पृदं चरणं प्रसारितं भूमिसंद्यपार्धिणकपूद्वीगुलिकं दंववक्तस्वा क्ताम्यां संपदायादाकुंचितकस्तर्जनीभ्यां दृढं गाढं धारयेद्रंगुष्ठभदेशे गृहीयात्॥ १०॥

मापार्थ-अन व्हों मृद्राक्षोंमं प्रथम जो महामुद्रा उसका वर्णन करते हैं कि, नामपावके मूळ (तळ) से अधीत पाण्णिसे ग्रोनित्यानको अर्थात् गुद्रा और लिंगके मध्यमामको भरतिप्रकार पीडित (दवाना) करके और दक्षिणपादको प्रसारित (फेलाना) करके अर्थात् वृक्षिणपादकी पाण्ण (ऐड) को भूमिसे मिलाकर और उसकी अंगुलियोंको उत्परको करके और उस दक्षि-णपादको सुकडीहुई दोनों हार्योकी तर्जनीओंसे दहरीतिसे (खन) अंगुलेके स्थानमें घारण करें अर्थात जोरसे पकडले ॥ १०॥

> कंठे वंधं समारोप्य पारयेद्वायुमुर्व्यतः ॥ यथा दंबहतः सपीं दंबाकारः प्रचापते ॥ ११ ॥

कंठ होते ॥ कण्ठे कंठदेशे बंधनं सम्यगारोप्य क्रावा । जालंधरवधं कृत्वेत्पर्यः । बार्यु पश्नमुखेत उपीर सुषुम्नायां धारयेत् । अनेन मूरुवंधः सूचितः स तु योनिसंपी डनेन जिह्नावंधनेन चरितार्थं इति सामदायिकाः यथा दंडेन इतस्ताहितो दंडहतः सपैः कुंडली दंडाकारः दंडस्पाकार इदाकारो यस्य स वाहदाः । वक्राकारं स्यक्ता सरल इत्यर्थः । प्रकर्पेण जायते भवति ॥ ११ ॥

भाषार्थ-और कंठके प्रदेशमें महीपकार जारंधरनामके वंचको करके वासुको जर्व्वदेश (सुषुन्ना) मही थारण करे अर्थात् मूळकंघ करे और सांप्रदायिक अर्थात् संप्रदायके ज्ञाता तो यह कहते हैं कि, वह मुख्वंघ तो योनिका संगीडन और जिह्नके वंघनसे चरितार्थ है सर्थात प्रयक् मुख्वंत्र करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है ऐसा करनेसे जिसे दंडसे हत हुआ सर्प (कुम्हर्ली) दंडके समान नाकारताला होजाताहै अर्थात कत्रताको त्यागवर भळीप्रकार सरक होजाताहै ॥ ११ ॥

ऋर्ग्नीभूता तथा ज्ञाक्तः कुंडछी सहसा भनेत् ॥ तदा सा मरणावस्था जायते द्विपुटाश्रया ॥ १२ ॥

ऋज्वीमृतेति ॥ तथा कुंडल्याधारशक्तिः सहसा शीघ्रमेन ऋज्वी संपद्यते तथामृता ऋज्वीमूता सरला भनेत् । तदा सेति । द्वे पुटे इडार्विगले आश्रयो यस्याः सा मरणा-बस्या जायते । कुण्डलीबोधे सति सुदुरनायां प्रविष्टे प्राणे ह्योः प्राणवियोगात्।। १२।।

भापार्थ-तिसीप्रकार आधार शक्ति रूप जो इंडरों है वह शीवही ऋन्यीमृत (सरह) होजाती है और इस समय इंडा और पिंगलाकर जो दोनों पुट हैं वे आश्रय जिसके ऐसी वह मरणकी अवस्था होजाती है अर्थात् छुंडछीका बोध होनेपर सुपुन्नानाडीमें प्राणका प्रवेश ही जाता है इससे इंडा और पिंगला दोनोंका प्राणवियोग (मरण) होजाताहै ॥ १२ ॥

ततः ज्ञानैःज्ञानैरेद रचयेत्रव वेगतः ॥ महासदां च तनेव वदंति विद्योत्तमाः ॥ १२ ॥ इयं खळ महासुद्रा महासिद्धेः प्रदर्शिता ॥ महाक्केशादयो दोषाः क्षीयंते मरणादयः ।। महासुद्रां च तेनैव वदंति विबुधोत्तमाः ॥ १८

· तत इति ॥ इयमिति ॥ ततस्वदनंतरं शनैः शनैरेव रेचयेत् । बायुमिति संबज्यते वेगतस्तु वेगान रेचयत् । वेगतो रेचने बल्हानिप्रसंगात् । सास्त्रिति वाक्यालंकारे । इयं महासुद्रा महासिद्धैरादिनाथादिभिः प्रदर्शिता प्रकर्षेण दक्षिता । महासुद्राया अन्वर्थ-वामाह-महांतश्रते हेर्बेश्य महाह्रेशाः वाविधारियतरागद्विषामिनिवेशाः पंच त आद्यो वनां ते श्रीकमोहादिनां ते दोषाः क्षीयते । मरणमादियेनां जरादीनां तेऽपि च क्षीयते

नस्याति । यतस्तेनैन हेतुना विशिष्टा खुषा विद्धधास्तेषूत्तमा विद्धधोत्तमा महासुद्रां वदाति । महाक्षेत्रानमरणादिःश्च शेषान्सुद्रयति शमपतीति महासुद्रोति व्युत्पत्ते-रित्युर्षः ॥ १३ ॥ १४ ॥

भाषार्थ-तिससे रानैः २ प्राणवायुका रेचन करे थेगसे न करें, क्योंकि थेगसे रेचन करनेमं वळकी हानि होती है तिससेही वेचलाओंमें उत्तम इसको महामुद्रा कहते हैं और वह महामुद्रा आविनाय आविमहासिद्धोंने भळीपकार विखाई है। अब महामुद्राके अन्वर्यनामका वर्णन करते हैं कि, अविधा, स्मित, राग, हेप, आभिनिवेच रूप पांची महाम्रेश और मरण आदि इःख इस महामुद्रा करनेसे सीण (नष्ट) होजातेहैं तिससेही वेचताओंमें श्रेष्ट इसको महामुद्रा वस्ते हैं अर्थात् महाम्रेश नाम रक्का है॥ १३॥ १४॥

चंद्रांगे तु समभ्यस्य सुर्यीगे पुनरभ्यसेत् ॥ यानत्तृत्या भनेत्संत्या तत्तो सुद्गं निर्सर्वयेत् ॥ १५ ॥

महामुद्राभ्यासक्तममाह—चंद्रांग हति ॥ चंद्रेण चंद्रनाङ्गोपलिसतमंगं चंद्रागं तास्मन् चंद्रांगे वामांगे । तुश्चन्दःपादपूरणे । सम्यगभ्यस्य सूर्वेण पिंगल्योपलिस्तमंगं स्वयांङ्ग तिस्मन् सुर्वेगे दक्षांगे पुनर्वामांगाभ्यासानंतरं यावद्यावस्त्रालपर्यतं तुल्या वामांगे कुंम-काम्याससंख्यासमा संख्या प्रवेत्तावद्म्यसेत् । तवः संख्यासाम्यानंतरं सुद्रां महासुद्धां विसर्वचेत् । अत्रायं क्रमः । आर्कुवितवामपादपाष्टिण योनिस्थाने संयोज्य प्रधारितद्-क्षिणपाद्गंत्रप्रमाकुवितवर्जनीभ्यां यहीत्वाभ्यासो वामांग्रभ्यासः । अस्मन्नभ्यासे पूरितो वायुर्वामांगे विद्यति । आर्कुवितवस्त्रपादपाणिण योनिस्थाने संयोज्य प्रधारित-वामपादांग्रप्रमाकुवितवर्जनीभ्यां यहीत्वाभ्यासो दक्षांग्रभ्यासः अस्मिनभ्यासे पूरिते वायुर्वक्षांगे विद्यति ॥ १५ ॥

भाषार्थ-अन महामुद्राके अभ्यासका क्रम कहते हैं कि-चंद्रनाडी (इडा) से उपलक्षित (ज्ञात) जो अंग उसे चंद्रांग कहते हैं अर्याद वाम अंगके विषे भलीपकार अभ्यास करके सूर्य नाडी (पिंगळा) से उपलक्षित जो दक्षिण अंग उसके विषे अभ्यास करें और जनतक क्षंभक प्राणायामीके अभ्यासकी संख्या समान (ह्न्य) हो तचतक अलीपकार अभ्यास करें फिर संख्यालीकी समानताके अनंतर महामुद्राका विसर्जन करें, यहां यह कम जानना कि: संक्ष्यालीकी समानताके अनंतर महामुद्राका विसर्जन करें, यहां यह कम जानना कि: संक्ष्यालीकी वामपादकी पार्णिको योनिस्थानमें युक्त (मिळा) करके मसारित (पतारे) दक्षिण पादके अँगूठेको आईखित (इक्खी) तर्जनियाँसे अहण करके जो अभ्यास कसे वामपादके पार्णिको योनिस्थानमें संख्या करके जोर प्रसारित (फिळाये) किये वामपादके अँगूठेको आईखित कीडुई दोनों हार्थोकी तर्जनियाँसे अहण करके जो अभ्यास उसे दक्षांगमं अभ्यास कहते हैं इस अभ्यासमें पूरित किया वायु वासपादके अँगूठेको आईखित कीडुई दोनों हार्थोकी तर्जनियाँसे अहण करके जो अभ्यास उसे दक्षांगमं अभ्यास कहते हैं इस अभ्यासमें पूरित किया वायु दक्षिण अंगमें टिकता है ॥ १५॥

٤

न हि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः ॥ अपि सुक्तं विषं चोरं षीयूषमिन जीर्यति ॥ १६ ॥

महासुद्रागुणानाह त्रिमिः—न हीति ॥ हि यस्मान्यहासुद्राञ्चासिन इत्यध्याहारः । पथ्यमपथ्यं वा न । पथ्यापथ्यविचारा नास्तित्यर्थः । तस्मात्सर्वे सुक्ता रसाः व्हृम्स्य-द्यो जीर्थते हाते विभक्तिवेपरिणामेनान्वयः । नीत्सा निर्मतो रसो वभ्यस्ते यातयामाः पदार्था जीर्थनित । चोर्सिति । दुर्जरं सुक्तमन्नं विषे क्षेत्रमपि पीसूषमिनासृतमिव जीर्थति जीर्णे मवाति । किस्रतान्यविति मावः ॥ १९ ॥

मापार्य-अन तीन ख्रोकोंसे महाध्रद्राके गुणोंको कडूते हैं कि, निससे महाध्रद्रा अभ्यास करनेवाले योगीको पथ्य और अपथ्यका विचार नहीं है तिससे नीरस (विगेड हुये) भी संपूर्ण भक्षण किये कड अम्ल आदि रस नीण हो (पच) जाते हैं और भक्षण किया विपक् समान घोर अनभी अमृतके समान जीण होजाताहै अर्थात पचनेके अयोग्यमी पचनाता है

तो योग्य क्यों न पचेगा १॥ १६॥

क्षयञ्चाद्युवनतंग्रुल्माचीर्णपुरोगमाः ॥ तस्य दोषाः क्षयं याति महाग्रुद्रां तु योऽभ्यतेत् ॥ ३७ ॥

स्पेति ॥ यः पुमान् महासुद्रामभ्यक्षेत्तस्य क्षयो राजरोगाः, क्रुष्टस्यर्वेगुलमा रोग-विशेषाः । अजीर्णे सुक्तानापरिपाङस्तानि पुरोगमान्यमेसराणि येषां महोदरज्यरादीनां तथा वाह्या दोषा दोषानीनता रोगाः क्षयं नाशं यांति प्राप्तांति ॥ १७ ॥

भाषार्थ-जो पुरुष महामुद्राका अभ्यास 'करताहै, क्षय, उदानते ग्रिल्मरूप रोगिक्शेष अ-जीणे अर्थात भोजन किये अनना अपरिपक्ष ये हैं मुख्य जिनमें ऐसे महोद्रर, क्वर आदि द्रोप उसके क्षय हो जातेहैं अर्थात नहीं रहते हैं ॥ १७ ॥

कथितेयं महासुद्रा महासिद्धिक्तरा नृणाम् ॥ गोपनीया प्रयत्नेन न देवा यस्य कस्यचित् ॥ ३८॥

महासुद्रासुपसंदरंस्तस्या गोप्यत्वमाह—कथिवीति ॥ इयमेषा महासुद्रा कथिवोक्ता । म्रेयोति श्रेषः । कीटशी तृणामभ्यसतां नराणां महत्यश्च ताः सिद्धयश्चाणमाधास्तासां करी कर्जीयम् । प्रकृष्टे यत्तः प्रयत्तरेति प्रयत्नेन गोपनीया गोपनाही यस्यकत्याधि-धास्यकस्याप्यनिधक्तीरणोऽवंबसस्य । सामान्ये पष्टी । न देया दातुं योग्या न मवतीत्यर्थः ॥१९८॥

भापार्थ-अब महाधुद्राको समाप्त करते हुए उसको ग्रुत करने योग्य वर्णन करते हैं कि: यह पुत्रोंक जो महाधुद्रा वर्णन की है वह मतुःथाँको महासिद्धिकी: करनेवाछी हैं और बढे बलसे ग्रुप्त करने योग्य हैं और जिस किसी क्षनधिकारी प्ररूपको न देनी ॥ १८ ॥

पार्षिण वामस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत् ॥ वामोत्क्षपरि संस्थाप्य दक्षिणं चरणं तथा ॥ १९ ॥

महाबंधमाइ-पार्डिंगमिति ॥ वामस्य सत्यस्य पादस्य चरणस्य' पार्डेण ग्रुत्क-योरघोमागम् 'वद्प्रंपी छुटिके ग्रुक्ती पुमान्पर्डिंगस्वयोरघः" इत्यमरः । योनिस्थाने ग्रुदमेद्रषोरंतराठे नियोजयेतिवरां योजयेत् । वामः सन्योः य ऊक्स्तस्योपिर दक्षिणं चरणं पादं संस्थाप्य सम्यक् स्थापयित्वा । तथाइन्द्रः पादपूर्णे ॥ १९ ॥

भाषार्थ-अब महावंबका वर्णन करते हैं कि, वामकरणका पार्टिणको योनिस्यानमें असीद् ग्रदा और हिंगके मध्यभागमें हमाते और वामकंषा ऊपर दक्षिणपदको रखकर बैठे ॥ १९ ॥

पुरायित्वा ततो व युं हृद्ये चुडुकं हृद्य ॥ निष्पीक्ष वायुमार्क्षेच्य मनो मध्ये वियोजयेत ॥ २०॥

पूर्यविलंति ॥ ततस्तद्वं ३रं वासुं पूर्यपत्ता हृदये चुकुकं हदं निष्णीडच संस्थाप्य । एतेन जालन्यरवन्थः मोक्तः । योनि गुदमेह्योरन्वरालमाकुंच्य । अनेन सुलक्ष्यः सूचितः स तु जिह्नाबन्धेन गतार्थत्वाल कर्तव्यः । मनः स्त्रांतं मध्ये मन्ध्यनाढचां नियो-क्रांत्रमर्ववेयत् ॥ २० ॥

मापार्थ-इस पूर्वोक्त भासन बांधनेके अनंतर बायुको पूरण करके ओर्रोइस्वर्यो द्वस्तासे (खूव) चुत्रक (ठोटी) को अर्थात् इस बाळंबर वंबको करके और योनि (ग्रुटा लिंगके मध्य) को संक्षितिक करके वर्धात मुरुवंबको करके परन्तु यह मुरुवंब निहाके वंबनसेही सिद्ध है इससे करने योग्य नहीं है फिर मनको मध्य नाडीके विषे प्रविष्ट करे ॥ २० ॥

धाराधित्वा यथाञ्चाक्ति रेचयेद्निलं ज्ञानैः ॥ सन्धारो तु समभ्यस्य दक्षांगे पुनरभ्यसेत् ॥ २५्री

धारियत्त्रेति ॥ शक्तिमनतिकम्य ययाशिक धारियता कुम्मीयता शैनीर्द मन्द्-मनिलं वार्षु रेचपेत् । सन्योगे वार्मागे समम्यस्य सम्यमान्त्ये दक्षांगे दक्षिणांगे पुनर्या-वज्ञवयामेव संख्यां तावदभ्यमेत् ॥ २१ ॥

भाषार्थ-फिर बायुको यथाशक्ति चारण करके अर्थात् क्षंमक प्राणायामको करके श्रेनः २ बायुका रेचन करे. ईसंप्रकार वाम अंगमं मध्ये प्रकार अन्यास करके दक्षिण अंगमं फिर अन्यास करे और वह अन्यास तबतक करें जबतक वामांग अन्यासकी जो संख्या उसकी हत्यताहो॥ २१॥

> मतमत्र तु केर्पाचित्कंठवंषं विवर्णयेत् ॥ राजदंतस्यजिद्वाया वंषः शस्तो भवेदिति ॥ २२ ॥

स्य जालन्धरवन्धे कण्डसंकोवस्यानुपयोगमाह-प्रविभिति ।। केपांचित्त्वाचार्या-णामिदं मतम् । किं तिदित्याह । अत्र जालन्धरवन्धे कण्डस्य वन्धनं वन्धः संकोवस्तं विवर्जयोद्देशेषण वर्जयेत् । कुतः यतो दंतानां राजानां राजदन्ता राजदन्तेषु तिष्ठताति राजदन्तस्या राजदन्तस्या चासौ जिह्ना व तस्यां राजदन्तस्यजिह्नायां वंधस्तदुपरि-मागस्य सम्बन्धः शस्तः । कंडाकुञ्जनापेक्षया प्रशस्तो भवेदिति हेतोः ॥ २२ ॥

भाषार्थ-अब जालंघरवंधमें कंठके संकोचका अनुमयोग वर्णनं करते हें कि, किन्हीं २ आ-चार्योंका यह मत है कि, इस जालंघरवंधमें कंठका जो वंधन (संकोच) उसको विशेषकर वर्जदे क्योंकि राजदंतों (दांड) के उत्पर स्थित जो जिह्ना उसका वंधही जालंघर वंधमें

अशुस्त होताहै अर्थात् कंठ संकोचकी अपेक्षा वह उत्तम होताहे ॥ २२ ॥

अयं तु सर्वनाडीनामूर्चं गतिनिरोधकः ॥ अयं जुळु महावंषो महासिद्धिमदायकः ॥ २३ ॥

क्यं तिति ॥ अयं तु राजदंतस्यजिङ्क्षायां वंधस्तु सर्वाश्च ता नाडवश्च सर्वनाडचे। झसप्रतिसद्दश्चसंख्याकारतायां ग्रियुद्धप्रातिरिकानामृद्वेष्ठपरिवायोगीतेक्व्यं गातिस्तस्यां निरोधका प्रतिवंधका । एतेन 'बझाति हि झिराजाकम्' इति जाळ्छरोत्तं फलमनेनेव सिद्धमिति सूचितम् । महावंधस्य फलमाइ—वयं खिलाति ॥ अययुक्ताः, जलु प्रसिद्धः' महासिद्धीः प्रकर्षेण दशकोति तथा ॥ २३ ॥

मापार्थ-यह राजद्तींमें स्थित जिह्नाका वंध, वहत्तर सहस्र ७२००० प्रुपुनासे भिन्न, नाडियोंकी जो उर्ध्वगति अर्थात् नाडियोंने जो प्राणवायुका उर्ध्वगमन उसका प्रतिवंधक है इससे यह सूचित किया कि, नाडियोंके जालको जो वंधन करें उसे जालंबरवंध कहते हैं यह जालंबर वंधका फळ इससेही सिद्ध हैं। अब महावंधके फळको कहते हैं कि यह महावंध निश्चयसे महासिद्धियोंको भळी प्रकार देताहै ॥ २३ ॥

कालपाञ्चमद्दावंधविमोचनविचक्षणः॥ त्रिवेणीसंगमं धत्ते केदारं प्रापयेन्मनः॥ २७॥

कालेति ॥ कालस्य मृत्योः पाशो वागुत तेन यो महावंधो वन्धनं तस्य विशेषेण मोचने मोक्षणे निचक्षणः प्रदीणः । तिस्त्यां नदीनां निणीसस्यायः स एव संगमः प्रयागस्त धत्ते विधत्ते । केदारं श्रुवोर्मध्ये शिवस्थानं केदारश्चर्यः तं मनः स्वांतं प्रापयेत् । 'गतिसुद्धि' इत्यादिना अणी कर्त्वमेनसोऽणी कर्मस्वम् ॥ २४ ॥

मापार्थ-और मृत्युके पाशका जो महावंघन उसके हृद्यनेमें विशेषकर प्रवीण है और तीन नदियोंका संगम जो प्रयाग है उसको करताहै और मनको शुद्धदियोंके मध्यमें जो शिवजीका

स्यानक्रप केवार है उसमें पात करताहै अर्थात पहुँचता है ॥ २४ ॥

रूपठावण्यसेपन्ना यथा स्त्री प्रस्तं विना ॥ महामुद्रामहावंधौ निष्फ्लो वेधवर्जिती ॥ २५ ॥

महावेधं वयनुमादी तस्पोत्कर्षे वावदाह—स्पेति ॥ रूपं सींदर्धं चक्कःभियो ग्रुणो लावण्यं कांतिबिशेषः । तहुक्तम् 'मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वामिवान्तस्म । मृतिभाति यदंगेषु तहावण्यामिहोच्यते 'इति । ताम्यां संपन्ना विशिष्टा की युवती , पुरुषं भर्तारं बिना यथा यादशी निष्कला तथा महासुन्न च महाबंधस्त्र ती महाबेधेन । 'विनापि प्रत्ययं पूर्वेतारपद्योलीयो सक्तव्यः' इति माष्यकारोक्तेमेहच्छन्दस्य लोवः । वर्जिती रहिती निष्कले व्ययोवित्ययेः ॥ २५ ॥

भापाय-अव महावेधके कहनेके खिये प्रयम उसकी उत्तमताकी कहते हैं कि, रूप (इंद्-रता) और इस वचनमें क्हेंड्रण छावण्यको मोतियोंमें-छाया (प्रतिविवकी) तरखताके समान खीके अंगोंमें अंतर जो प्रतीत होताहै वह यहां छावण्य कहाता है, इन दोनों पूत्रीक्त रूप और छावण्यसे युक्त खी, पुरुषे दिना निष्फल है, तिसी प्रकार महासुद्रा और वंध ये दोनों भी महावेधके विना निष्फल हैं. इस रखेकमें वेधपदेसे महोवध छेते हैं, क्योंकि इस भाष्यकारके बचनसे प्रत्यक्षे विनाभी पूर्व और उत्तरपदका छोप कहता। महष्टक्रवका छोप होताहि॥ २५॥

वय महावेधः ।

महावंधस्थितो योगी कृत्वा पूरकमेकधीः॥ वायुनां गतिम कृत्व निभृतं कंठमुद्रया॥ २६॥

महावेधमाह्र—महावेधीति ॥ महावंधे महावंधमुद्रायां स्थितो महावंधास्वतः । एका एकाम्रा वीर्षस्य स एकाम्र शंत्रांभी योगाभ्याती पूरकं नासापुटाभ्यां वायोग्रेहणं कृत्वा कंटे मुद्रा कंटमुद्रा तथा जाश्च्यसमुद्रया वायुनां माणादीनां मतिष्टवीधोगमनादिख्यां निभतं निश्रकं यथा मवति वथानुत्य निरुध्य कुंमकं कृत्वेत्यर्थः ॥ २६ ॥

भाषार्य-अब महावेषका वर्धन करते हैं कि महावेषमुद्रामें स्थित अर्थात् करता हुआ योगी एकायमुद्धिसे पूरक आगत्यभको करके अर्थात् योगमागेसे नासिकाके पुटाँसे वायुका प्रहण करके कंडमुद्रा (जालंबर मुद्रा) से आण आदि बायुकोंको जो अर्घ्व अयोगतिरूप गमन है उसको निश्चल रितिसे रोककर अर्थात् मुंभक्षआणायामको करके ॥ २६॥

समहस्तयुगो भूमे। हिफन्ते संताडयेच्छनेः ॥ पुरद्धयमतिकस्य वायुः स्फुराति मध्यगः ॥ २७॥

समहस्तिति ॥ भूमो सुनि हस्तयोर्धुगं हस्तयुगं समहस्तयुगं यस्य स समहस्तयुगः भूमिसंत्य्रतत्वे सरले इंस्ती यस्य ताह्याः सिन्नत्ययः । स्पिनी किटमोयोः । 'तियां स्फिनी किटमोयों इत्यसः । मूमिसंत्य्रतत्वयोर्द्धस्तयोर्द्धान्यः योनिस्थानसंत्यपा-फिनी नामपोदेन सह भूमेः किविदुत्यापिती हिनीमेई संवाहयोरसम्यक् ताहयेत्। मूमावेव पुरुयोद्देयोमडापिंगलयोयुग्ममतिकम्योह्रंच्य मध्ये सुषुम्नामध्ये गच्छतीति भः

ध्यमो वायुः स्फ्रसति ॥ २७ ॥

भाषार्थ समिप्त छगाहि तळ जिनका ऐसे सरळ हायोंको अपने जो स्फिच (चूतड) हैं उनको समिप्त छगहुर हायोंके आध्यय और योनिस्थानमें छगेहुई पारिण जिसकी ऐसे वाम-पादसिह्त पूर्वोक्त स्फिचांको समिप्त उर्पा किंचित उठाकर हाने: २ भछी प्रकार तांडे, इस प्रकार करनेसे इहा और पिंगछाहरूप दोनों नाडियोंका उछायन (छोड) करके छुएनाके मध्यमें वासु चळने छगताहै अर्थात सुपुन्तामें प्राणवासुकी गति होजाती है ॥ २७ ॥

सोमसूर्याभिसंबंधो जायते चामृताय वै ॥ मृतावस्था समुत्पन्ना ततो वाग्रुं विरेचयेत् ॥ २८ ॥

सोमोति ॥ सोमध्य सूर्येष्याप्रिश्च सोमस्यूर्याप्रयः सोमस्य भिप्रश्चादैस्तद्धिष्ठित नाडच इडापिंगळासुष्ठमा त्राह्यास्तेषां संबंधः । तद्वाष्टुसंबंधात्तेषां संबंधः अमृताय मोक्षाय जायते । वै इति तिश्चयेडव्ययम् । मृतस्य प्राणाविश्वक्तस्यावस्या मृतावस्या समुतपन्ना अवति । इडापिंगळयोः प्राणसंचाराभावात् । ततस्तद्वंतरं वाश्चं विरोचयोनासिकाः

पुटाभ्यां श्रनेस्त्यजेत् ॥ २८ ॥

मापार्थ-फिर चन्द्रमा सूर्य, अग्नि अर्थात ये तीनों देवता हैं क्रमसे अधिष्ठाता जिनके ऐसी इंडा पिंगला सुणुना नाडियोंका संवंध मोक्षका हेतु निश्चयसे होजाताहि अर्थात तीनों नाडि-योंका बाद्य एक हो जाताहि तब इंडा और पिंगलोक मध्यमें आणासंचारके अभावसे मरण अवस्था जत्मक होजाती है, क्योंकि, इंडा पिंगलामें जो प्राणींका संचार उसका नामही जीवन है, फिर मरण अवस्थाकी उत्पत्तिके अनंतर वायुको विरेचन करदे अर्थात नासिकाके पुटोंमेंसे श्वतः २ त्यागदे ॥ २८ ॥

महावेषोऽयमभ्यासान्महासिद्धिप्रदायकः ॥ वळीपळितवेपन्नः सेव्यते साघकोत्तमेः ॥ २९ ॥

महावेध इति ॥ अयं महावेधोऽभ्यासात्पुनःपुनरावर्तनाःमहासिद्धयोऽणिमाधास्तासां प्रदायकः प्रकर्षेण समर्थकः । वळी जस्या चर्मसंकोचः पळितं जस्साः केशेषु जीक्ल्यं वेषः कंपस्ताच् इतीति वळीपळितवेषमः । अत एव साधकेष्वभ्यासिष्ठत्तमाः साधकोत्तः मास्तैः संव्यतेऽभ्यस्यत इत्यर्थः ॥ २९ ॥

मापार्थ-यह महावेध अभ्यास करनेसे अणिमा आदि महासिद्धियोंको भर्छाप्रकार देताहै और वर्छा अर्थात इन्द्र अवस्थासे चर्मका संकोच और परिव्त अर्थात इन्द्रतासे केन्द्रोंकी छुडता और देहका कंपना इनको नष्टकरता है इसीसे साघकों (अभ्यासी) में जो उत्तम है वे इस महावेधका अभ्यासरूप सेवन करते हैं ॥ २९॥

एतत्रयं महागुद्धं जराष्ट्रत्युविनाञ्चनम् ॥ विद्ववृद्धिकरं चेवें द्यणिमादिग्रणप्रदम् ॥ ३०॥ महामुद्राद्वीनां तिस्रणामितगोष्यत्वमाह्-एताद्वित ॥ एतत्ववं महामुद्राद्वित्रयं महा-मुद्रामितरहस्यम् । अत्र हेतुगर्भाणि विद्योषणानिः हि यस्माजरा वार्धकं मृत्सुख्रासः प्राणदेहवियोगः तयोविद्योण नाशनं बहेजोठरस्य दृद्धिद्वीतिस्तरसाः करं कर्तं आणिमा आदिर्थेषां तेऽणिमाद्यस्ते च ते ग्रुणाद्य तात्र प्रकर्षेण द्वातीत्वणिमादिग्रणप्रदम् । चकार आरोग्यविद्वापादिससुच्चपार्थः। एवश्च्योऽप्रधारणार्थः ॥ ३० ॥

भापार्थ-अन महाग्रद्धा आदि पूर्वोक्त तिनीको अत्यंत ग्रुप्त करने योग्य वर्णन करते हैं कि, ये तीनी ग्रुद्धा अत्यंत ग्रुप्त योग्य करने योग्य हैं और नरा और मुख्यने विशेषकर नष्ट करती हैं और नठराग्निको चढ़ाती हैं और आंधाना आदि सिद्धियोंको देती है ज्यांत अंधिमा आदि ग्रुपोंको मुखीपकार उत्यन्न करती हैं और चकारके पढ़मेंसे आरोग्य और विहुद्धा जय समझना और इस क्षोक्रमें एव पद निश्चयका वोधक है ॥ ३० ॥

अष्टषा क्रियसे चैव याचे याचे दिने दिने ॥ प्रण्यसंभारसंघापि पापौचभिद्धं सदा ॥ सम्यक्तिशक्षावतामेवं स्वरुपं प्रथमसाघनम् ॥ ३१ ॥

चयैतज्ञयस्य पृयवसाधनाविशेषमाह्—यष्टधेति ॥ दिनेदिने प्रतिदिनम् । यामे यामे प्रहरे प्रदेर पीनःपुन्ये द्वित्रेचनम् । षष्टभिः प्रकारेत्य्धा क्रियते। चश्वव्हेऽत्रधारणे । प्रतत्त्रविभित्यज्ञापि संबद्ध्ये । क्षिद्धं प्रण्यस्य संभारः समृहस्तस्य संधायि पुनः सीद्धं प्रापानामोधः पुरः समृह इति यावत् । तस्य मिद्धं क्रुलिशिभव नाशनं सद्। सर्वद्वा यदाभ्यस्तं तद्देत्र पापनाशनम् ॥ सम्बक् सापदाधिकी शिक्षा गुरूपदेशो विद्यत्वे वेषां ते तथा । एवं दिने दिने यामे यामेऽष्टधेत्युक्तरीत्या पूर्वेसाधनं स्वरूपस्वरूपमेव कार्यम् ॥ ३२ ॥

भाषार्थ-अब इन तीनोंके पृषक् २ साधन विशेषश्ची कहते हैं कि, प्रह्म २ में, और दिन २ में बारंबार आठ प्रकारसे ये तीनों छट्टा की जाती हैं. यहां भी एव शब्द निश्चयका वाची है और ये तीनों छट्टा पुण्यके समृहको करती हैं और पाषोंका जो समृह है उसको छद्द सदैव करती हैं और मछीपकार गुक्ती है शिक्षा जिनको ऐसे. पुरुपोंको पूर्वोक्त आठ प्रकारका जो महर २ और दिन २ में साधन है वह अल्प २ (थोडा २) ही करना योग्य है आधिक २ नहीं ॥ ३१॥

वय खेबरी।

कपारकुर्रे निह्ना प्रनिष्टा निपरीतगा ॥ भ्रुनोरंतर्गता दृष्टिर्भुद्रा मनति खेचरी ॥ ३२ ॥

खेचीं विवक्षराद्दी तत्स्वरूपमाह—रूपालेति ॥ कपाले मूर्विन कुद्दरं सुपिरं वरियन् कपालकुद्दरे विपरीतं प्रतीपं गच्छतीति विपरीतया पराष्ट्रसुखीमृता जिह्ना रसना स्यात् । भुवोरतर्गता भुवोमेध्ये प्रविष्टा दृष्टिदेशैन स्याद् । सा खेचरी सुद्रा सवति । कपालकु-हरे जिह्नापवेशपूर्वकं भुवोरतर्दर्शनं खेचरीति रूक्षणं सिद्धम् ॥ ३२ ॥

मापार्थे अब सेचरीम्हाके क्यनका अभिकापी आचार्य प्रथम खेचरीके स्वरूपका वर्णन करते हैं कि, कपालके मध्यमें जो छिद्र है उसमें विपरीत (उल्टी) हुई जिह्ना तो प्रविध हो जाय और अक्टुटियोंके मध्यमें दृष्टिका प्रवेश होजाय तो वह सेचरीम्हरा होती है अर्थात् क्या-लक्षेत्र छिद्रमें जिह्नाके प्रवेश पूर्वक जो भ्रस्तुटियोंके मध्यका दर्शन उसे खेचरीम्हरा कहते हैं २२॥

छेदनचाठनदोहैः कर्छा कमेण वर्षयेत्तावत् ॥ सा यावदूभमध्यं रुपुशति तदा खेचरीसिद्धिः ॥ ३३॥

खेचगीसिन्धर्वक्षणमाह—छेदनीति ॥ छेदनम् अनुपदमेव वध्यमाणम् । चावनं इस्तः चौरंगुप्रवर्जनीभ्यां रसनां गृहीत्वा सञ्यापसञ्यतः परिवर्तनं, दोहः करयोरंगुष्ठवर्जनीभ्यां गोदोहनवत्तद्दोहनं तैः कवां जिह्नां तावहर्षयेदीर्घा कुर्योत् । तावत् क्रियत् । यावत्सा कला भूमध्यं विद्विष्टेवीर्मध्यं रपृशति यदा तदा खेचर्याः सिन्निः खेचरीसिप्निर्मवित् ॥ ३१ ॥

भापार्थ-जब खेचरीमुद्राको सिद्धिके छक्षणका वर्णन करते हैं कि, छेदन जिसका आगे शीन्नही वर्णन करेंगे और पालन अर्थाद हायके अँगूठे और तर्जनीसे जिह्नाकों पकलकर थाम और दक्षिणकरासे परिवर्तन (इळाना) और पूर्वोक्त अँगूठे और तर्जनीसे गोदोहनंके समान जिह्नाका दोहन इन तीनोंसे कछा (जिह्ना) को तबतक बढ़ाँव जबतक बह् कछा भृकुटियोंके मध्यका स्पर्श करें फिर स्पर्श होनेपर खेचरी मुद्राकी सिद्धिको जाने ॥ ३३॥

रखुदीपत्रनिभं शस्त्रं सुतीक्ष्णं स्निग्धनिर्मरुम् ॥ समादाय ततरतेन रोममात्रं समुन्छिनेत् ॥ ३४ ॥

तत्साधनमाई—स्वरीति ॥ स्वरी ग्रुडा तस्याः पत्रं दले स्वरीपत्रेण सदशं स्वरी-पत्रानिमं सुवीदणमितिवीदणं दिनग्धं च तित्रमेलं च हिनग्धानिमेलं शक्तं छद्नसाधनं समादाय सम्यगादाय गृहीत्वा ततः शक्षप्रहणानेतः तेन शक्षेण रोमप्रमाणं रोम-मात्रं समुच्छिनेत्सम्यगुच्छिनोच्छियत् । स्तनामूलशिरामिति कर्माध्याहारः । भिन्ने-यात्र्य सीहेडो वजस्तुक् सी स्वरी ग्रुडां इत्यमाः ॥ ३४ ॥

भाषार्थ-अन खेचरीकी सिद्धिके साधनींका वर्णन करते हैं कि, स्त्रही (सेहुंड) के पत्तेके समान जो अत्यंत तीहण शब्द है चिकने और निर्मेछ उस शब्दको यहण करके उससे जिह्नाके

मूळकी नाडीको रोममात्र छेद्न करदे ॥ ३८ ॥

ततः सेंघवपथ्याभ्यां चूर्णिताभ्यां प्रघर्षयेत् ॥ प्रनः सप्तदिने प्राप्ते रोममात्रं सम्राच्छिनेत् ॥ ३५ ॥ तत इति ॥ ततरछेद्नानंतरं चूर्णिताभ्यां चूर्णीकृताभ्यां सेंधवं सिछ्देशोद्भवं छवणं पृथ्यं हृरीतकी ताभ्यां प्रवर्षयेत्मकृषण वर्षयां छछनं शिराग्रेदेशम् । सप्तदिनपर्यतं छेदनं सेंधवपर्याभ्यां वर्षणं च सार्यमातावेंथेयम् । योगाभ्यासिनो छवणानिपेधा-स्ताद्रपर्थयाचूर्णं गृहाति ब्रुछे सेंधवािक्तित् ह्याभ्यासात्पृत्रं सेवदािसाधनािममायेण । सप्तानां दिनानां समाहारः सप्तादेनं तास्मन् प्राप्ते गते सति अप्टमं दिन इत्यर्थात् । ये प्राप्त्यर्थास्त्रं सर्यादेनं तास्मन् प्राप्ते गते सति अप्टमं दिन इत्यर्थात् । ये प्राप्त्यर्थास्त्रं सरायर्थाः । पूर्वच्छेदनापेक्षयाधिकं रोगमात्रं समुच्छिनेत् ॥ ३५ ॥

भापार्य-ओर हेदनके अनंतर हुणे किये (पीसे) हुये सेंघन (छन्म) और हरहेसे जिह्नाके मुख्तेन भर्छोपकार पिसे सात दिनतक प्रतिदिन होदन और पिसनेको पूर्वोक्तप्रकारसे प्रातःकाल और सायंकालको करे खोर योगके अभ्यासीको छबणका निपेध है इससे यहां खिट्र (करया) और प्रयाका हुणे छेना योगियोंको कहाँहे और मुख्यंबर्म तो संविक्त कथन हुटयोगके अभ्याससे पूर्व खेचरीकी सिद्धिके अभिप्रायसे है फिर सात दिनके बीतनेपर आठवें दिन रोममात्रका होदन करे अर्थात प्रयम्हेटनसे अधिक रोममात्रका होदन करे ॥ ३५ ॥

एवं क्रमेण पण्मासं नित्यं युक्तः समाचरेत् ॥ पण्मासादसनामूळक्किरावंधः प्रणक्यति ॥ ३६ ॥

एविभिति ॥ एवं क्षमेण पूर्व रोममात्रच्छेदनं सप्तादिनपर्यंतं ताबदेव सार्यभातक्कें दनं धर्षणं च । जप्टमे दिनेऽधिकं छेदमामेत्युक्तक्रमेण पण्मासं पण्मासपर्यंतं नित्यं युक्तः सन् समाचेत्सम्यगाचतेत् । छेदनवर्षणं इति कर्माच्याहारः । पण्मासादनंतरं रसना जिह्ना तस्या मुख्यधोमागो रसनामूळं तत्र या क्षिरा कपालकुह्ररसत्तासंयोगे प्रतिवंधिकामृता नाडी तस्या वंधो वंधनं प्रणक्यति प्रकृषण नश्यति ॥ ३६॥

भापार्थ-इस प्रकार कमसे प्रथम रोममानका छेदन ओर उसकाही सातादेनचर्यत सार्थकाल प्रातःकालके समय धर्षणको प्रतिदिन युक्तहुआ छः मासपर्यंत यूरे ओर आठबेदिन पूर्व किये छेदनसे अधिक रोममानका छेदन करके पूर्वोक्त धर्षणको करता रहे इस रितिसे छः मासके अनंतर जिह्नाके मूलभागमें जो दिशावंच है अर्थात जिससे निह्ना कपाल छिद्रमें नहीं पहुँच सकती वह बंचन है वह भल्जिकार नष्ट होजाता है ॥ ३६॥

कर्छ। पराङ्मुर्खी कृत्या त्रिपये पारियोजयेत् ॥ सा भवेत्सेचरी मुद्रा च्योमचक्रं तदुच्यते ॥ ३७ ॥

छेदनाहिना जिहानुद्धी यस्तर्वर्थं वदाह-कळामिति ॥ कळां जिहां पराङ्क्षाव-मास्यं यस्याः सा तथा तां पराङ्क्षुस्तिं प्रत्यङ्क्षुस्तिं कृत्वा तिक्षणां नाडीनां पंथाः त्रिपयस्तर्हिमम्रिपये कपाळकुहरे परियोजयेत्यं वोजयेत् । सा त्रिपये परियोजनरूपा स्विचरी सुद्रा सङ्ग्रीमचक्रमिस्युच्यते व्योमचक्रसान्देनोच्यते ॥ २७ ॥ माषार्थ-अन छेदन आदिसे जिह्नाको गृद्धि होनेपर करने योग्य कमैको कहते हैं कि, जिह्ना को पराङ्मुख करके अर्थाद पश्चिमको लीगकर तीनों नाडियोंका मार्ग जो कपालका छिद्र है उसमें संयुक्त करदे वहीं खेचरी मुद्रा होतीहैं और उसको ही व्योमचक कहते हैं ॥ ३७॥

रसुनासूर्ध्वर्गा कृत्वा क्षणार्धेमपि तिष्ठति ॥ विषेतिसुच्यते योगी व्याधिमृत्युजरादिभिः ॥ ३८ ॥

अथ खेचरीग्रुणाः ॥ रसनामिति ॥ दश्मैं ताळूपारै विवरं मच्छवीति तां ताहबूँ। रसनां निहां कृत्वा कृष्णार्धे क्षणस्य यहुर्वस्य अधे क्षणार्धे घटिकामात्रमपि खेचरी ग्रुज्ञ विद्यति चेचाई योगी विवै: सपेनृश्चिकादिविवैधिकृष्यते विदेषेण ग्रुष्यते । व्यापि धाँत्वैषम्यं वृत्युक्षरमः प्राणदेहवियोगो जरा वृद्धावस्या ता आद्यो येपां वाल्या-दीनां तैश्च विग्रुप्यते । 'उत्सवे च प्रकाष्ठे च ग्रुह्तें नियमे तथा । क्षणक्षव्दे। व्यष्टस्यां समयेक्षपे निग्रुद्धते इति नानार्थः ॥ ३८ ।॥

भाषार्थ-अब खेचरिके ग्रुणोंका वर्णन करते हैं कि; जिह्नाको ताङ्के अमरले छिद्रमें करके जो योगी क्षणार्थमी टिकता है अर्थात् एक घटिकामांत्र भी स्थित रहताहै (यहां क्षण पदसे इस वचनके अनुसार महत्वका महण है) वह योगी धातुओंकी विपमतारूप व्याधि और हुख धर्मात माण और देहका वियोग और बुद्ध अवस्था आदिकोंसे और सुप विच्छू आदिके विषोसे

विशेषकर दूर जाताहै ॥ ३८ ॥

न रोगो मरणं तंद्रा न निद्रा न श्लुघा तृषा ॥ न च सूच्छां अवेन्तस्य यो श्रुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ ३९ ॥

न रोग इति ॥ यः खेवरीं छुद्रां वित्ते तस्य रोगो न मरणे न तद्रा तामसातः बरणञ्जीविक्षेवः न निद्रा न छुधा न दुषा विपासा न मुच्छी चित्तस्य तमसामिश्रताः वस्याविषेपश्च न भवेत ॥ ३९ ॥

भाषार्थ-जो योगी खेचरीहदाको जानता है उसको रोग, भरण खीर अंतःकरणकी तमोगुर्ण इतिरूप तदा जीरे निद्रा क्षषा तथा और चितकी तमोगुर्णाञवस्यारूप मुच्छी ये सब नहीं

होते हैं ॥ ३९॥

पीडचते न स रोगेण डिप्यते न च कर्मणा ॥ बाच्यते न स स्राहेन यो सुद्रां वेत्ति खेचरीस् ॥ ४० व

पींडचत इति ॥ यः लेक्से मुद्रां वेत्ति च रोगेण ज्वरादिना न पींडचते ॥ ४० ॥ मामार्थ-जो लेक्सिको जानता है वह रोगसे पींडित नहीं होताहै और न कमेरी िष्टस होताहै और न काल्से बांघा जाताहै ॥ ४० ॥

वित्तं वरति खे यस्माजिह्ना चरति खे गता ॥ वेनैषा खेचरी नाम मुद्रा सिद्धेनिरूपिता ॥ ४२ ॥ चित्तमिति ॥ यस्माद्धेताश्चित्तमंतःकरणं खे श्व्वोरंतरबकाशे चराति जिहां खे तत्रैव गता सती चरति । तेन हेतुना एवा कायेता सुद्रा खेचरी नाम खेचरीति मतिद्वा । नामेति प्रतिद्वावच्ययम् । तिद्धेः कायेलादिमिनिकपिता । खे श्व्वोरंतव्योक्ति चरति गच्छति चित्तं जिहा च यस्यां सा खेचरीत्यवययदाः सा स्युत्पादिता । उत्तेषु त्रिष्ठ श्चेकेषु व्याच्यादीनां पुनरुक्तिस्तु तेषां श्चेकानां संग्रहीतत्वाच दोपाय ॥ ४९ ॥

भापार्थ-विस्ति वित्त (अंतःकरण) मुझ्टियोंके मध्यक्ष्य आकाशों विचरता है जीर जिहाभी अञ्चित्योंके मध्यमेंही नाकर विचरता है विस्तित सिद्धों (कीप्रल जावि) की निकरण पण कींहुई यह छुत खेचरी इस नामसे प्रसिद्ध हे अञ्चाटियोंके मध्यस्य आकाशों जिस छुन्द्राके करनेसे निह्ना विचर उसे खेचरी कहते हैं इस खुरपतिसे सिद्धोंने यह अन्वर्यस्त्रा वर्णन की है, इन पूर्वाक तिनों क्षेत्रकोंने ध्याधिआदिशों जो पुनरुक्ति है वह इसिल्पे दूपित नहीं है कि, ये तीनों क्षोक संगृह्ति (किसीके स्चेहुए) हैं अर्थाव मुख्के नहीं है ॥ ४१॥

सेचयां सुद्रितं येन विवरं संविकोर्घतः ॥:

न तस्य क्षरते विन्दुः कामिन्याः श्चेपितस्य च ॥ ४२ ॥

खेचर्येति ॥ येन योगिना खेचयी छुद्रचा छविकाया उद्योमिति छविकार्धतः । स्विविभिक्तिकस्तितः । छविका ताछ तस्या उद्येत स्परिभागे स्थितं विवरं छिद्रं सुद्धितं पिहितम् । कामिन्या युवत्याः श्लेषिवतस्यार्शिगतस्यापि । च शब्दोऽप्यये । तस्य विद्वविधि न स्तते न स्वलित ॥ ४२ ॥

भाषार्थ-जिस योगीने खेर्चेशीमुहासे छीबका (ताहु) के उत्तरका छिद्र डकलियां है कामि-मीके सन्ना करनेपूरभी उसु योगीका बिद्र (बीब) क्षरित (पडता) नहीं होता अर्थात् अपने

मस्तकरूप स्थानसे नहीं गिरता है ॥ ७२ ॥

चितोऽपि यदा विंदुः संप्राप्तो योनिमंडलम् ॥ त्रजत्यूष्व स्ताः शक्तया निवस्रो योनिसुद्रया ॥ ४३ ॥

चित इति ॥ चितिवादि स्वितिवादि विद्विद्या यस्मिन् कार्छ योतिमंडरूँ योतिस्यानं संग्रातः संगतस्वदैव योतिष्ठद्रया मेहाक्कचनरूपया । एवेन बज्जोलीसुद्रा स्वचिता । निचद्रो नितरां वद्धः शत्त्याकर्षणशत्त्याहृद्यः प्रकृष्टं उच्चे त्रजाति । सुष्टु-म्नामार्गण विद्वस्यानं गच्छति ॥ ४३ ॥

भाषार्थ-जोर चलायमान हुआभी विंह जिस,समय योनिके मंहरूमें ग्राप्त होजाताहै तौभी हिंगके संक्षेत्रचनरूप योनिम्रद्रासे अर्थात् पद्रोतीलेले निरंतर वैधाहुआ विंदु आकर्षणशक्तिसे बिंचा हुआ सुपुन्ना गाहीके मार्गसे उट्ये (विंदुके स्थानमें) को चलाजाता है ॥ ४३ ॥

ऊर्ष्वजिह्नः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोति यः ॥ मासार्षेन न संदेहो चत्युं जयति योगवित् ॥ ४४ ॥ द्धांजिद्ध इति ॥ दर्ष्यांशंविकोध्यंवितरोग्युता जिद्धा यस्य स द्धांजिद्धः रियरो निश्चले मुत्ता । सोमस्य लंबिकोध्यंवितराग्रितचंद्वामृहस्य पानं सोमपानं यः पुमान करोति । योगं वेत्ताति योगवित् स मासस्यार्थं मिसार्थे तेन मासार्थन पक्षेण मृत्युं मरुणं जयति अमिमवति । न संदेद्धः । निश्चितमेतिद्वयर्थः ॥ ४४ ॥

मापार्थ-तालुके उत्परके हिद्रके उन्मुख है जिह्ना जिसकी ऐसा जो योगी वह सोमपान कर-ताहै अर्थात् ऊर्ध्व हिद्रमेंसे गिरतेहुए चंद्रामृतको पीता है योगका ज्ञाता वह एकही जासाईमें चर्मात् पक्षमरसे मृत्युको जीतता है इसमें सन्देह नहीं है अर्थात् यह विश्वित है ॥ ४४ ॥

नित्वं सोमक्रछापूर्णं शरीरं यस्य योगिनः ॥ तक्षकेणापि दृष्टस्य विषं तस्य न सर्पति ॥ ४५ ॥

नित्यमिति ॥ यस्य योगिनः झरीरं नित्यं प्रतिदिनं सोमकलापूर्णं चंद्रकलास्तपूर्णं तस्य तक्षकेण संपीवशेषेणापि दष्टस्य दक्षितस्य योगिनः झरीरं 'विषं गरळं तज्जन्यं द्वारतं न सर्पति न प्रसर्तति ॥ ४५ ॥

्रभागर्थ-जिस योगीका शरीर नित्य (संदेव) चंद्रकलारूप अधृतसे पूर्ण रहता है .तक्षक सपैसे बसेहुयेथी उसके शरीरमें विप नहीं फेलता अर्थात् सपैका विप नहीं पबता ॥ ४९ ॥

इंघनानि यथा विह्नस्तैंडवर्ति च दीपकः ॥ तथा सोमकडापूर्णं देही देहं न मुंचाति ॥ ४६ ॥

इंधनानीति ॥ यथा बिहः इंधनानि काष्टाद्यानि न ग्रुंचाति दीपको दीपः तैळवर्ति च तैळयुक्तां वर्त्ते न ग्रुंचति । तथा सोमकलापूर्णे चन्द्रकलासृतपृर्णे देहं, झरीरं देही जीवो न ग्रुंचति न त्यजिति ॥ ४६ ॥

भाषार्थ-जैसे लिग्न काष्ट आदि इंपनींको जीर दीपक तेल और वसीको नहीं त्यागकरते हैं अर्थात उनके विना नहीं रहते हैं तेसेही देही (जीवात्मा) सोमकलासे पूर्ण देहको नहीं त्याग-ता है अर्थात सोमकलासे पूर्ण देह संदेव बना रहता है ॥ ४६॥

गोमांतं भक्षयेद्वित्यं पिवेदमरवाहणीम् ॥ ऋजीनं तमहं मन्ये चेतरे कुछचातकाः ॥ २७ ॥

गोमांसामिति ॥ गोमांसं पारिमाधिकं बक्ष्यमाणं यो सक्षयेन्नित्वं प्रतिदिनममर बार्डणीमिप वक्ष्यमाणां पिवेत्तं योगिनम् । अद्वेतिति प्रयक्षारितिः । कुळे जातः कुळानः तं सरक्ष्योरपनं मन्ये । तहक्तं ब्रह्मविते-'क्रुतार्थो पितरो तेन धन्यो देशः कुळं च तत् । जायते योगवान्यत्र दत्तमक्षय्यतां त्रजेत् ॥ दृष्टः संभाषितः स्पृष्टः प्रमृहत्योविवेनवात् । भवकोदिश्वापातं पुनाति वृज्ञिनं नृणाम् ॥' ब्रह्मादपुराणे । 'प्रहस्थानां तहस्रणे वानमस्यश्चेन च । ब्रह्मचारिसहस्रण योगाभ्याती विशिष्यते ॥' è

÷

ľ

ŗ

ŗ

राजयोगे वामदेवं शति शिववाक्यम्-'राजयोगस्य माझस्यं को विजानाति तत्त्वतः । तज्ज्ञानी वसते यत्र स देशः पुण्यमाजनम् । दर्शनाद्चेनादस्य त्रिसमञ्जलसंयुताः ॥ स्वा ग्राक्तिपदं यांति कि पुनस्तत्परायणाः ॥ संतर्योगं वर्हियोगं यो जानाति विशेष्यतः । त्यया मयाप्यसौ वदाः शेषेविधस्तु कि पुनः ॥' इति । कूमेपुराणे-'एककार्ल किकार्ल वा विकार्ण तिस्यमेव वा । ये युवंते महायोगं विज्ञेयास्ते महस्यतः ॥' इति । इतरे वश्यमाणगोमासमक्षणामरवासणीपानरहिता, स्वयोगिनस्ते क्रल्यातकाः क्रलनान्श्रकाः सत्कुले जातस्य जन्मनो वैयर्थ्यात् ॥ ४७ ॥

मापार्थ-जो योगी प्रतिदिन गोमांस (जो जांगे कहेंगे) को मक्षण करता है और प्रति-दिन अमरवारणी (जो आगे कहेंगे) को पीतों है उसकोही (हम श्रेष्ठसूक्रमें उसक मानते हैं अन्य सब मतुष्य बुख्यातक (नाइक्क) हैं क्योंकि श्रेष्ठकुक्रमें उनका जन्म निर्धिक है, सीई ब्रह्मवेक्तेमें कहाह कि, योगीके माता पिता कुतार्थ हैं और उसके देश और कुछकों अन्य है जहां योगवान पढ़ा होता है और योगीको दिया दान अक्षय होता है पुरुष और मक्कितका विवेकी योगीजन दर्शन, भाषण स्पर्श करतेस मनुष्योंके कोटियां जनमांके पापास पवित्र कर-ते हैं ब्रह्मांदपुराणमें छिखा है कि, सहस्य ग्रहस्था और सो चानम्पर्थ और सहस्त्र ब्रह्मचारियोंके योगाम्यासी अधिक होता है और कायोगके विवयमें आमदेषके प्रति शिवनीका वाक्य है कि, राजयोगके स्याय माहात्म्यको बर्गेन जान सकता है ? राजयोगका ज्ञान वाक्त वसता है कह देश पुण्यात्मा है इसके दर्शन और पुजनसे इक्कीस क्रिक सहित मूर्स भी स्रतिके पदको प्रात होते हैं योगमें तत्पर तो क्यों न होंगे जो अंतयोंग और वाहियोंगको विशेषकर जानता है वह सुझे और तुझेभी नमस्कार करने योग्य है और श्रेष्मसुष्योंको बंदना करने योग्य तो क्यों न होगा । कूर्यपुराणमें छिखा है कि, एकसमय वा विकारमें वा विकारमें वा निर्मा के महायोगका अभ्यास करते हैं वे महेश्वर (शिव) जानने । इन वचनोंसे योग सर्वोत्तम है १९७।

गाज्ञान्द्रेनोदिता जिह्ना तत्प्रवेज्ञो हि ताछिनि ॥ गोमांसमस्पं तस महापातकनाज्ञानम् ॥ ४८॥

गोमांसशब्दार्थमाह—गोशब्देनोति ॥ गीशब्देन गोहत्याकारकेण शब्देन गोपदेनेः त्यर्थः । जिह्ना समनोदिना दायिवा वास्त्रजीति सामीपिकायोः सप्तमी । वास्त्रसमीपो- क्षंत्रिते तस्या निहायाः प्रवेशो गोमांसमक्षणं गोमांसमक्षणशब्द्याच्यं वत्तु वाहरूः गोमांसमक्षणं द्व महापावकानां सर्णस्त्रयादीनां नाशनस् ॥ ४८ ॥

भाषार्थ-अब गोमांस राव्यके अर्थको कहते हैं कि, गोषदसे जिह्ना कहोई नाती है और तालुके समीप जो उर्व्विटिट उसमें जो जिह्नाका प्रवेद्य उसको गोमांसमक्षण कहते हैं-वह गोमांसमक्षण महापातर्काका नाचा करनेवालां है ॥ ४८ ॥

ि बिह्नाप्रवेशसंस्त्वविह्नगैत्पादितः खळु ॥ टे चंद्रात्स्ववित यः सारः सः स्यादमस्वादणी ॥ ४९ ॥ अमस्तारुणीबान्दार्थमाइ—शिहाति ॥ जिहायाः प्रतेशो लंगिकोर्घ्याचिते प्रवेशनं तस्मारसंभूतो यो बहिरूज्या तेनोस्पादितो निष्पादितः । अत्र बहिश्वव्देनोष्ण्यसुपरु-स्यते । यः सारः चंद्राद्शुयोरंतर्शममागस्यास्तोमारस्वति गळिते सा अमस्तारुणी स्यादमस्वारुणीपद्वाच्या मवेत् ॥ ४९ ॥

मापार्थ-अब अमरवारुणी ज्ञब्दके अर्थको कहते हैं कि, ताहुके ऊर्व्वं हिट्समं विह्नाके प्रदेशसे उत्तरत हुई जो बंद्रि (उत्पा) उत्तसे उत्पन्न हुआ जो सार चंद्रमासे हरता है अर्थात् अक्रुटियोंके मध्यमें वामभागमें स्थित चंद्रमासे विद्वुह्य सार गिरताहे उसको अमरवारुणी

कहते हैं ॥ ४९ ॥

चुम्बंती यदि छेबिकायमनिक्षं जिह्नारसस्पंदिनी सक्षारा कटुकाम्छद्वग्वसदृक्षी मध्याग्यहुल्या तया ॥ व्याधीनां हरणे जरांतकरण क्षम्रागमोदीरणं तस्य स्यादमरत्वमष्टगुणितं सिद्धांगनाकर्षणम् ॥ ५० ॥

चुंदेवीति ॥ यदि छंनिकाशं छंनिकोध्वेविवरं चुंदेवी स्पृशन्ती । जानेशं निरंतरम् । स्वत एव रसस्य सीमक्रलाष्ट्रवस्य संपदः प्रपदनं प्रखरणमस्यामस्तीति रसस्पंदिनी यस्य जिद्धा । शारेण छवणस्तेन सहिता सक्षारा कहुकं मरिचादि आक्रं चिंचाफळादि हुग्धं प्रयस्तः सहशी समाना । मधु सीद्धमान्यं घृतं वाभ्यां तुस्या समा तथाशन्दः समुचये । एतिविवेषणे रसस्यानेकरसस्यान्यधुरवातिकरयस्याच जिद्धाया व्यपि रसस्पंदने तथातन् सक्तम् । तिहि तस्य व्यधिनां रोगाणां हरणमपगयो जराया चृद्धावस्थाया अंतकरणं नाज्ञानं ज्ञाह्याणामाधुयानामानमः स्वामिश्रखायमनं तस्योदिरणं निवारणम् । अधि तृणाः आणिमाद्यस्ते अस्य संजाता इत्यष्टगुणिवममस्यममस्यमस्याः । सिद्धानामंगनाः सिद्धांगनाः स्वामिश्रक्षां स्वामिश्रक्षां स्वामिश्रक्षां स्वामिश्रक्षांगनाः स्वामिश्रक्षां स्वामिश्रक्षांगनाः स्वामिश्रक्षांगनाः स्वामिश्रक्षांगनाः स्वामिश्रक्षां स्वामिश्रक्षांगनाः सिद्धांगनाः सिद्धांगनाः स्वामिश्रक्षांगनाः स्वामिश्रक्षांगनाः स्वामिश्रक्षांगनाः स्वामिश्रक्षां स्वामिश्रक्षांगनाः स्वामिश्रक्षांगनाः स्वामिश्रक्षांगनाः स्वामिश्रक्षां स्वामिश्रक्षां स्वामिश्रक्षांगनाः सिद्धांगनाः स्वामिश्रक्षां स्वामिश्यक्षां स्वामिश्यक्षां स्वामिश्रक्षां स्वामिश्यक्षां स्वामिश्यक्यां स्वामिश्यक्षां स्वामिश्यक्षां स्वामिश्यक्षां स्वामिश्यक्

मापार्थ-यदि रस (सोमकळाका अमृत) का स्पंदन (झरना) करनेवाळी और छवणके ससके समान और मरीच आदि कड और इमकी आदि अस्क और व्य इनके सहशा और मधु (सहत) और प्रण इनकी तुल्य इन सन विदेशपणींसे स्तमें अनेक रस और मधुरता, और क्षिणका (चिकनाई) कहीं वस सर्के झरनेवाळी विद्याकोंभी चैसीही कहीं समझना अर्थात प्रचित्तकार जिह्ना ताछके उत्पर वर्तमानिष्टका वारंबार चुंचन (सर्पर्श) करे तो उस ममुच्यकी व्यावियोंका हरण और बह अवस्थाका क्षेत करना और सम्झल आप शावका निवारण और अंगिमा आदि आठ सिद्धिंकी विचारण और अंगिमा आदि आठ सिद्धिंकी चिमान समस्व (चेवल) और सिद्धींकी अंगनाओंका वा सिद्धरूप अंगर आक्र आक्र भानाओंका वा सिद्धरूप अंगराओंका आकर्षण (चुळाना) उसको ये फळ होते हैं॥ ९०॥

सूर्भःषोडज्ञपत्रपद्मगछितं प्राणाद्वातं इठा-दुर्घ्यात्यो रसनां नियम्य विवरे ज्ञाति वरां चिन्तयन् ॥

उत्कञ्चोरुक्राज्ञं च विसर्व धारामयं यः पिने-क्रिन्यांधिः स मृणारुक्रोमरुक्पुर्योगी चिरं जीवति ॥ ५९ ॥

मापार्थ-नो योगी। निहाजो कपाएके छिद्रमें एनाकर सीर उपरको छुद्ध। करके इससे निपतित करणी सूचित को शीर परमञ्जाकि सो कुंडिएमी उसका ध्यान करता हुआ। प्राण-बायुके साथन और हुउयोगसे भात और पोडका है पत्र जिसके ऐसे पद्ममें मस्तक्से पतित और निर्मेश और भागकर और उपरको है तरंग जिसकी ऐसे चंद्रकरोंके सहको पीताहै ब्याधिसे रहित और मृणाङ (बिस्) के समान कोमङ है बचु (देह) जिसका ऐसा बह

योगी चिरकाइतक जीता है ॥ ५१ ॥

यत्त्राञ्चं प्रहितसुषिरं मेरुष्ट्रपीतरस्थं तिर्नेमस्तरः प्रवद्ति सुपीस्तन्सुसं निम्नगानाम् ॥ चंद्रातसारः स्रवति वपुपस्तेन मृत्युनंराणां सद्द्रप्रीयात्सुकरणमधो नान्ययाकार्यसिद्धिः ॥ ५२ ॥

यह्माळेयमिति ॥ मेहवसवें ज्ञता शुष्ट्रमा मेहस्तस्य यृशों परिमास्तस्यांतर मध्ये तिष्ठतीति मेहपृष्ठी-तरस्यं यत्माळेयं सोमकळाजळं महितं तिहितं यस्मिस्तत्त्वया त्तव तस्मितं विदेशं तिसिन्वरे ग्रुथीः शोभना रजस्तमोभ्यामनिभूतसस्या धीकुंद्धिर्यस्य सः । तस्यमास्मत्तरं प्रवद्ति भक्तंण वद्ति । 'तस्याः शिक्षाया मध्ये परमारमा व्यवस्यतः' इति श्रुतेः । जारमेशे विग्रुखे स्रेयपिष्ठभ्रायां तत्रामिन्यक्तिस्तिस्मस्तत्त्वीशत्यु क्रम् । तिम्नगानां गंगायद्वनात्यस्त्रीतिमस्त्राद्धियाया । विम्नगानां गंगायद्वनात्यस्त्रतीनमद्भाद्धियस्य व्यवस्यामामिन्द्यार्थित्रभ्रवति। तत्तिस्मत्वरे तस्यमीपे स्रुक्षमभ्रमित चंद्रात्सोमाद्धपरः श्रितिस्त्रतां सत्ति स्तरि तेन चंद्रतारस्त्रणेन नराणां मनुष्याणां स्तर्युपरेण मनति । अतो हेतोस्तत्युर्शीदितं सुक्तरणं शोमने करणं खेतरीब्रुशस्यं वध्नीयात् ।

सुकरणे बद्धे चंद्रसारस्रवणामावानमृत्युर्ने स्यादिति मावः । धन्यया सुकरणवंधनामादे कायस्य देहस्य सिद्धीरूपद्यावण्यवत्यवस्रवसंहननरूपा न स्यात् ॥ ५२¦॥

भाषार्थ-मेसके समान सबसे उँची जो हुफ्ना नाडी उसके मुद्दी (उपस्के भाग) के मध्यमें टिकाहुआ जो प्रालेय अर्थाद सोमकलाका जल है जीर जिसमें वह जल स्थित है ऐसा विवर (छिद्र) है उस विवरमें रजोग्रण तमोग्रणसे नहीं हुआ है तिरस्कार जिसका ऐसी जुद्धि वाले मनुष्य आत्मतत्वको कहते हैं क्योंकि श्रुतिमें लिखा है कि, ह्युप्नाकी शिखाके मध्यमें परमात्मा स्थित है क्योंकि आत्मा विश्व (व्यापक) है और खेचरी प्रद्रामें अत विवरमें आत्मा प्रगट होताहै इससे उसमें तत्व है यह कहना ठीक है-और गंगा, यग्रुता, सरकती : नमेंद्रा जािंद इससे उसमें तत्व है यह कहना ठीक है-और गंगा, यग्रुता, सरकती : नमेंद्रा जािंद इससे उसमें तत्व है यह कहना ठीक है-और गंगा, यग्रुता, सरकती : नमेंद्रा जािंद हे उसके प्रताह जो हुक्स समित्र है और चंद्रमासे जो देहका सार्राश झरताह उससेही मनुष्यांकी शृर्य होताह किससे,शोभन करणहर खेचरीया बोर (पर्र) क्योंकि क्योंग्रग्रक करनेसे चंद्रमक का कर खावण, वल वजके समान सहनत (इंद्रता) रूपिसिंह में होगी शावाय यह है कि, जो सोमकलाका जल हुफ्नाले मध्यमें स्थित है वह जल जिस्, हिन्द में है उस हिन्द में हिन्द में समार्थ के स्थान के स्थान सहने स्थान सहने समार्थ अह है जी सोमकलाका जल हुफ्नाले मध्यमें स्थित है वह जल जिस्, हिन्द में है उस हिन्द में हिन्द में समार्थ हुत पिगल आदि नाहियोंका शुख है और समार्थ इस पिगल के वहने हैं कि सोम इंद्र पिगल आदि नाहियोंका शुख है और समार्थ का प्रात्त हुत हिससे सेच्या हुत ही तिस्से सेच्या के व्याप आदि नाहियोंका शुख है और के विश्व हिससे के विश्व के वयोंकि न करनेसे वेहकी तिस्ति नहीं होसकती अर्थांत प्रयाद प्रवाह होगा।। ९२॥

सुषिरं ज्ञानजनकं पंचस्रोतःसमन्वितम् ॥ तिष्ठते खेचरी सुद्रा तरिभन् ज्ञून्ये निरंजने ॥ ५३ ॥

सुपिरामिति ॥ पंच चानि खोतांसीडादीनां प्रवाहास्तेः समन्वतं सम्यगनुगतम् ॥ "सप्तस्रोतःसमन्वतम्" इति कचित्पाटः । ज्ञानजनकमलौकिकवोधितात्मसाक्षात्कार जनकं यत्सुपिरं विवरं तिस्मन्दुपिरेऽज्ञनमविद्या तत्कार्यं ज्ञोकमोहादि च निर्मतं यस्मात्तिवां तास्मित्रंजने ग्रून्ये सुपिरावकादो खेचरी मुद्रा तिष्ठते स्थिरोमवति । 'श्रकाजनस्थेयाख्ययोध्य' इत्यात्मनेपदम् ॥ ५३ ॥

भापार्थ-इंडा आदि नाहियोंके जो पांच स्रोत (प्रवाह) हैं उनसे युक्त जो सुपिर(ब्रिट्र) है वह ज्ञानका उत्पादक है अर्थात् आत्माके प्रत्यक्षका जनक है-चोक मोह आदिसे रहित रूप निर्जन और शुम्परूप जो है उसके विषे खेचपीसुद्रा स्थिर होतीहै अर्थात् खेचरीसुद्राकी

महिमासे उस छिद्रमें मनके प्रवेशसे व्यात्मज्ञान होताहै ॥ ५३ ॥

एकं सृष्टिषयं बीजनेका सुद्धा च खेचरी ॥ एको देवो निराजंब एकावस्या मनोन्मनी ॥ ५८ ॥

प्कामिति ॥ छष्टिमर्थं सृष्टिक्षं प्रणवास्त्यं वीजमेकं सुरव्यम् । तदुक्तं मांडुक्योप-निषदिं शोमित्येतदक्षरिमदं सर्वेम् दृति । क्षेचरी सुद्रा एका सुरुपा । निरालंव आलं- वनसून्य एको मुख्यो देवः । बार्बवनपरित्यावैनात्मनः स्वरूपावस्थानात् । उन्मन्य-वस्यैका मुख्या । 'एके मुख्यान्यकेवळाः' इत्यमरः । बीजाविषु प्रणवादिवन्मुद्रामु खेचरी। मुख्येत्यर्थः ॥ ९४ ॥

मापार्थ-मृष्टिष्ट्रप जो प्रणव (ॐ) नामका धीन है वह मुख्य है सोई मांड्स्य उपानिय-क्रमें कहा है कि, यह सम्प्रण जगत ॐ इस अक्षरहरूप है-और खेनपिष्ट्रद्वामी एक (मुख्य) है और निराठंव अर्थात आठंवनक्रम्य देव परमात्मा भी एकही है और मनोन्मनी अवस्था भी एकही है । यहां एकक्षक्द इस अमस्के अनुसार मुख्यका वोषक है अर्थात बीन आदिमें किसे प्रणव मुख्य है ऐसेही मुद्राजींमें खेनपीयी मुख्य है ॥ ५४ ॥

वयोद्धीयानबन्धः।

बद्धो येन सुषुरनायां प्राणश्तूडीयते यतः ॥ तस्माइडीयनाख्योऽयं योगिभिः सम्रदाह्नतः ॥ ५५ ॥

उद्धीयानवेधं विवधुस्तावहुडीयानशब्दार्थमाह—बद्ध इति ॥ यतो यसमाद्धतीयेन धंधेन बद्धो निरुद्धः प्राणः श्रुषुम्नायां मध्यनाडवामुद्धीयते श्रुष्टमां विहायसा गच्छति तस्मात्कारणाद्यं वंधो योगिभिर्मत्येद्विदिमिरुद्धीयनमाख्याभिधा यस्य स उद्धीय-नाख्यः समुद्राहृतः सम्यग्ब्युत्परयोदाहृतः कथिवः । श्रुष्टमायामुद्धीयतेऽनेन वद्धः प्राण इत्युद्धीयनम् । उत्युर्वतं 'डीङ्-विहायसा गतीं' हृत्यस्मात्करणे व्युद् ॥ ५५ ॥

मापार्य-अन उद्घीयानचंघको कहनेके आभिलापी आचार्य प्रथम उद्घीयान इत्वके अर्थको कहते हैं कि, जिस वंघसे वंधाहुआ प्राण मध्य नाडीरूप सुपुत्राके विषे उदलाय अर्थात आकाशमेंसे सुपुत्रामें प्रविष्ठ होलाय-तिस कारणसे यह दंघ मस्पेद्र आदि योगियोंने उद्घीयान नामका कहाँ है अर्थात सुपुत्रामें जिससे प्राण द्वे इस व्युत्पत्तिसे इसका उद्घीयान नाम स्क्ला है ॥ ५५ ॥

उड्डीनं कुरुते यत्माद्विश्रांतं महाखगः ॥ उड्डीयानं तदेव स्यात्तत्र वंषोऽभिधीयते ॥ ५६ ॥

उद्घीनमिति ॥ महाश्रासी खगश्च महालगः शाणः । सर्वेदा देहावकाशे गतिय-न्वात् । यस्माद्वंधादविश्रांतं यया स्याचथोद्धीनं विदेशमगतिं कुरुते । सुपुरनायामि-स्यध्याहार्यम् । तदेव बंधविशेषमुद्धीयानमुद्धीयाननामकं स्यात् तत्र तस्मिन्विषये बंधोऽभिधीयते वंधस्वरूपं कथ्यते मयेति श्रेवः ॥ ६६ ॥

भाषार्थ-संदेव देहके अवकाशमें गति हैं जिसकी ऐसा महासंगढ़प आण जिस बंधसे नि-रंतर उड़ीन (पश्चीके समान गति) को धुपुनार्में करता है विही वंध उड़ीयान नामका होताहै उसमें में बंबके संदर्भको कहताहूं ॥ ५६.॥

ि उपदेश:

उदरे पश्चिमं तानं नाभेखर्ची च सारयेत ॥ **उड़ीयानो हाशें वंधो मृत्युपातंगकेसरी ॥ ५७** ॥

बह्रोयानवंधमाह-उदर इति ॥ उद्रे हुंदै नामेरूव्य चकारादधः उपरिमागेऽधो-भागे च पश्चिमं तानं पश्चिममाकर्षणं नाभेक्ष्यीधोमागी यया पृष्ठसंख्यी स्यातां तथा तानं ताननं नामाकर्षणं कारयेत्क्रयीत् । णिजर्थोऽविविक्षतः । असी नामेकव्यीधी-मागयोस्तानकप उद्धीयान उद्धीयानात्व्यो वंधः । कीदशः मृत्योख मार्तगो गजस्तस्य केसरी सिंह: सिंह इव निवर्तक: ॥ ५७ ॥

भाषार्थ-उदर (पेटके तुंद) में नाभिके ऊपर और नीचे पश्चिम तान करे अर्थात नाभिके छपरके और निचले भागको इस प्रकार तान (आकर्षण) करे जैसे वे दोनों भाग पृष्टमें लग-जांय यह नामिके उद्धें अधोमागका तान उड़ीयान नामका वंव होताहे और यह वंघ मूख-

क्रप हस्तीको केसरी है अर्थात नाशक है ॥ ५७ ॥

उड्डीयानं तु उद्दर्भ ग्रहणा कथितं सदा ॥ अभ्यतेत्वततं यस्तु बृद्धोऽपि तहणायते ॥ ५८ ॥

ज्ङीयानं त्विति ॥ गुरुर्हितोपदेष्टा तेन गुरुणा चङ्कीयानं तु सद्दा सर्वेदा सहजं-स्वामाविकं कथितं प्राणस्य बहिर्गमनम् सर्वेदा सर्वस्यैव जायमानत्वात् । यस्तु यः प्रस्पस्त सततं निरंतरमभ्यसेत् । उड्डीयानमित्यत्रापि संवध्यते । सतु वृद्धोऽपि स्विनिः रोऽपि'तरुणायते वरुण इवाचरावि तरुणायवे ॥ ५८ ॥

माषार्थ-हितके उपदेश गुरुने उडीयान सदैव स्वामाविक फहा है अर्थात प्राणका बहिर्ग वन-स्वभावसे सबको होताहै परन्तु नो पुरुष इसका निरंतर अभ्यास करता है इद्धभी वह

सरुण (गुवा) के समान आचरण करता है ॥ ५८ ॥

नाक्षेक्षःर्वमध्यापि तानं कुर्यात्त्रयतनतः ॥ ष्ण्याससम्बर्धेन्मृत्यं जयत्येव न संज्ञ्यः॥ ५९ ॥

त्र नाभेरिति ॥ नामेकव्वसुपरिमागेऽधश्चाप्यधोमागेऽपि प्रयत्नतः प्रकृष्टो यतनः प्रयत्न हतस्मात्मयत्नतः । यत्नविशेषात्रानं पश्चिमतानं क्रयोत् 🖟 पूर्वीर्धेनोङ्कीयानस्वरूपः मक्तम् । अथ तत्प्रश्नंसा । यण्मासं पण्मासपर्यतम् उद्घीयानमिष्यच्याहारः । सभ्य-सेत्प्रनःपुनरक्षतिष्ठेत्स स्टत्युं जयत्येव संशयो न । अत्र संदेही नास्तीत्यर्थः ॥ ५९ ॥

भाषार्थ-नाभिके ट्रार और नीचे मलीपकार यलसे तान करें अर्थात यल विशेषसे पश्चि-मतान की और पण्मास (छःमास) पर्यंत इस उद्घीयानबंधका वारंवार अभ्यास करें तो

मृत्यको जीतताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ५९ ॥

सर्वेषायेव वंघानायुत्तामो ह्याडियानकः ॥ **सिंहियाने होंदें वीचे मुक्तिः स्वामानिकी मनेत् ॥ ६० ॥** सर्वेपामिति ॥ सर्वेपां वंधानां मध्ये दङ्कीयानकः वङ्कीयानकंघ एव । स्वार्थे काम् त्ययः । उत्तमः उत्कृद्धः हि यसमाधुक्कीयाने वंधे दृढे सति स्वामाधिको भावसिद्धैत द्यक्तिर्भेवेत् । उङ्कीयानवंधे कृते विदेशमगत्या सुधुम्नायां प्राणस्य सूक्ष्मि गमनात् १ 'समाधौ मोक्षमाप्रोति' इति वाक्यात्सद्वजैव सुक्तिः स्मादिति मावः ॥ ६० ॥

भाषार्थ-संपूर्ण वंघोंके मध्यमें चड़ीयान वंघ उत्तम है, क्योंकि उड़ीयान वंघके हट होनेक् स्वाभाविकी मुक्ति होती है अर्थात् उड़ीयान वंघके करानेसे पक्षीके समान गितिसे सुप्ताविके प्राण मस्तकों कराजाताहै उस समाधिमें इस वाक्यके अनुसार अनायाससे मुक्ति हो

नाती है ॥ ६० ॥

अय मूळवंधः ।

पार्विणभागेन संपीडच योनिमार्क्तंचयेद्रगुद्धः ॥ अपानमुर्व्वमार्क्तव्यः मुरुवंघोऽभिधीयते ॥ ६९ ॥

मूह्वंधमाह्-पार्ष्णमागेनेति ॥ पार्ष्णेमांशो ग्रह्मबोत्धान्नहेत्तस्तेन चोर्नि चोर्नि-स्थानं ग्रह्मेन्द्रयोमेध्यमागं संपीडच सम्यक् पिडियत्ना ग्रह्मं पाष्ट्रमाकुंचयेत्संकोच-चेत् ज्ञपानमधोगार्ति वायुद्वंधुपयांकुच्याकुष्टं कृता मूह्वंधोऽभिधीयते कथ्यते । पार्ष्णमागेन योनिस्थानसंपीडनपूर्वकंग्रहस्याकुंचनं मूह्वंध इत्युस्यत इत्यर्थः ॥६१॥

भापार्थ- अब मूळवंबमुद्राका वर्णन करते हैं कि, पार्थिके भाग (ग्रुल्कोंका अवभ्यदेश) से योनिस्यानकी अर्थाद् ग्रदा और छिंगके मध्यभागको भर्छाप्रकार पीडित (दवा) करके ग्रदाका संकोच करें और अपान वायुका ऊपरको ब्याकर्षण करें यह मूळवंच होता है ऐसा योगजालको जाननेवाळे ब्याचार्य कहते हैं ॥ ६१ ॥

अधोगतिमपार्नं या ऊर्चगं क्रुरुते वडात् ॥ थाकुंचनेन तं प्राहुर्मूछईधं हि योगिनः ॥ ६२ ॥

अधोगतिमिति।॥ यः अधोगतिम् अधोऽर्घागतियस्य स तथा तमपानमपानतायुमाकुंचनेन मूलाधारस्य संकोचनेन बलाद्धशदूर्वे गच्छतीत्यूर्व्वगस्तयुर्वेगं सुबुद्धायापुर्वेगमनजीलं कुरुते । वे इति निश्चपेऽन्ययम् । योगिनो योगाभ्यासिनस्तं सुलवधं मूलस्य मूलस्यानस्य वंधनं मूलवन्धस्तं मुलवंधनित्यन्वर्थं र्रूगाहुः । अनेन मूलवंधश्चार्ये
वक्तः । पूर्वेश्वोतेन तु तस्य वंधनपकार उक्त इत्यगैनरुत्तयम् ॥ ६२ ॥

मापार्य-ची वंघ क्षवः (नीचिको) गति है जिसकी ऐसे छपान वायुको बरुसे ऊर्ध्वगामी काता है अर्थात जिसके करनेसे अपान सुप्रद्रामें पहुँच जाता है योगके अम्यासी टसः वंघको मूरुवंघ कहते हैं अर्थात मूरुस्थानका जिससे बंधन हो वह मूरुवंघ उत्त्वयंनामसेः कहाता है इस खोकरें मुरुवन्य शुञ्दका स्वर्थ कहा और पिछन्ने खोकरी बन्धनका प्रकार कहा है. इसस्टे

पुनरुक्तिदोष नहीं है ॥ ६२ ॥

गुदं पाण्यां तु संपीडच वायुमाञ्चेचयेद्रलात् ॥ वारं वारं यथा चोर्ची समायाति समीरणः ॥ ६३ ॥

स्थ योगवीजोक्तितया मुख्वधमाह—सुद्दिमित ॥ पाष्ण्योर्ग्रेक्सयोरधोभागेन सुद्दे वासुं संपीद्ध्य सम्यक् पीढियत्वा संयोज्येत्यपः । तुराज्दः पूर्वसमादस्य विशेषत्व-चोतकः । यथा येन प्रकारेण समीरणो वासुरूर्वे सुसुम्राया उपरिमागे याति गच्छति चषा तेन प्रकारेण 'बलाद्धाद्धारंबारं पुनःधुनर्भासुमपानमाकुंचथेद्रगुद्दस्याकुंचनेनाकर्ष-येत् । अये मुख्वधं इति वाक्याध्याहारः ॥ ६३ ॥

भाषार्थ-अन योगर्वाजमें कहीहुँई रीतिसे मूळवंषको कहते हैं कि, पार्थ्णिस ग्रदाको अछा प्रकार पीडित करके बायुको चलसे इस प्रकार बारवार आकर्षण करें जैसे वो. हुपुनाके व्यस्के भागमें पहुँचनाय यह मूळवंष्य कहाता है इस श्लोकमें हु यह शब्द पिछ्ळे मूळवंष्यसे विशेष जतानेके लिये हैं ॥ ६३ ॥

प्राणापानी नादविंद् युळवंधेन चेकताम् ॥ गत्वा योगस्य संतिद्धिं यच्छतो नात्र संज्ञयः ॥ ६२ ॥

जय युलवंधगुणानाह्-प्राणापानाविति ॥ प्राणधापानय प्राणापानावृध्वधिविति । यायु । नावेऽनाहृतधानिः विदुत्तुस्तारती मुलवंधनेकतां गर्वकिष्यु योगस्य संसिद्धिः सम्बद्धिः । स्वयं सम्बद्धः । सुलवंधे स्वतेऽपानः प्राणानस्वक्षित्रय सुपुम्नायां प्रविश्चति । ततो नाद्धिम्बद्धाः सम्बद्धिः सम्बद्धिः सम्बद्धिः सम्बद्धिः । स्वयं सम्बद्धाः स्वति । ततो स्वति । स्वयं सिद्धनाथाय स्वित्वः सम्बद्धाः स्वति । ततो स्वयं सिद्धनाथाय स्वित्वः । स्वयं सिद्धनाथाय स्वित्वः । स्वयं सिद्धनाथाय स्वित्वः । स्वयं सिद्धः । सिद

माषार्थं — अब मूळबन्धके गुणाँका वर्णन करते हैं कि, नीचेको है गति, जिनकी ऐसे प्राण खीर अपान दोनों वायु खीर अनाहत (स्वामाविक) ध्वान और बिंदु (अनुस्वार) ये दोनों मूळवंघसे एकताको प्राप्त होकर योगाम्यासीको योगकी सिद्धिको मठीप्रकार देते हैं इसमें संश्रां ने वाहीं है, ताल्पर्य यह है कि, मूळवंघके करनेसे अपान प्राणके संग एकताको प्राप्त होकर अधुपनामें प्रविष्ट होनाताहै फिर नादकी प्रकटता होती है फिर नादके संग प्राण अपान हदः यके अपर जाकर खीर नादके संग विदुकी एकताको करके मस्तकों चले जाते हैं किर योग-इसीद्धे होनाती है ॥ ६८॥

खपानप्राणयोरेनपं स्यो मुज्जुरीवयोः ॥ युना अनित बुद्धोऽपि सततं मुख्यंपनात् ॥ ६५ ॥ अपानप्राणयोरिति ॥ सतर्तं मुख्यंपनानमुख्यंपसुद्धानस्यानपाणयोरेनयं स्वति। भूत्रपुरीवयोः संचितयोः सयः पतनं मदीत । इद्धोऽपि स्यविरोऽपि सुवा सरुकों मदित ॥ ६५ ॥

भापार्थ-निरंतर मूळवंश्वराजे करनेसे अपन और प्राणकी एकता और देहमें संचितहरें सूत्र और मळका क्षय होताहे तिससे बृह्दभी मनुष्य थुवा होजाताहे ॥ ६५ ॥

अपाने ऊर्ष्वगे जाते प्रयाते विह्नमंडलम् ॥ तद्गऽनलक्षिता दीर्घा जायते वायुनाऽऽहता ॥ ६६ ॥

अपान इति । मूळवंध ग्राद्माने अधोगमनहीं वायी कर्ष्ये कर्ष्ये गच्छवीत्युर्ष-गस्तिस्मिन्तादृशे सति बिह्नपंडलं बहेमेण्डलं त्रिकोणं नामेरधोमगोऽस्ति । तदुर्क्त याह्न-घट्ययेन-'देद्दमध्ये शिविद्धानं तप्तजांबूनद्ममम् ।,'त्रिकोणं तु मद्यन्याणां चतुर्स्व चतुष्पदाम् ॥ मंडलं तु प्रगानां सत्यमेतद्वशीमि ते । तन्मध्ये तुःशिक्षा तन्त्री सद्य तिष्ठति पावके ॥' इति । तद्य तिस्मकाले वायुना अपानेनाह्ता संगता सत्यनलिक्षता जठरात्रिशिस्ता द्या आयता जायते । 'वर्षते' इति कचित्साढः ॥ ६६ ॥

भापार्थ-मूल्यन्य करतेसे क्योगाभी अपान जब उद्यंगाभी होकर अग्निमंडकमें पहुँच जाता है अर्थात नाभिके अयोभागों वर्तमान त्रिकोण जकराग्निके मंडकमें. प्रतिष्ट होनाता है दस्सम्य अपानवायुसे तादित की हुई जो जकराग्निकी शिखा है वह दीचे होनाती है अर्थात बट-जाती है सो याज्ञवस्त्रयने कहा है कि, तपाये हुये सुवर्णके समान अग्निका स्थान मृत्योंके देहों निक्त म्थ्यमें त्रिकोण और प्रगुकांके हेहमें क्ल्यकेण है और प्रसियोंके देहमें गोल है यह आपके प्रति में सत्य कहताई कीर बाग्निके प्रयोग से स्थान मुक्योंके एक्से हिम्से स्थान मृत्योंके के स्थान मृत्योंके हेहमें भाव है अर्थ स्थान मृत्योंके हे स्थान मृत्योंके हेहमें स्थान स्थ

ततो यातो बहुवपानी प्राणसुज्जस्य स्पक्तम् ॥ तेनात्यंतप्रद्रीतःसु ज्वलनो देहजस्तथा ॥ ६७ ॥

तत इति ॥ ततस्तद्दंतदं बद्धिधापात्रथं बह्वचपात्ता । उष्णं स्वर्कः यस्य स तथा दमनळं शिलादैष्णेहुण्णस्वर्कः प्राणमृद्धंगतिमानेळं यातो गच्छतः वतोऽनळशिलादै-व्यादुष्णस्वरूपकादिति वा योजना । वेन प्राणसंगमनेन देहे जातो देहजो ज्वलनोऽ-शिरत्यंतमाधिकः दीप्तो मवति । तथेति पादपूर्णे । व्यानस्योध्धेगमने दीप्त एव ज्वलनः प्राणसंगत्याऽत्यंतं प्रदीप्तो मवतीत्पर्थः ॥ वे७ ॥

भापार्थ-फिर अग्नि और क्ष्पान ये दोनों अग्निकी दीर्घ हिरखासे उप्णरूप हुए उर्घ्यगति प्रापन में पहुँच जाते हें तिस प्रापवायुके समागमसे देहमें उत्पन्न हुई जठराग्नि अस्पंत प्रन्यख्ति होजाती है सर्याद अपानकी उर्ध्यगतिसे दीसहुई आग्नि अस्पंत प्रदीस होजातीहै ॥ ६७ ॥

देन छुंडलिनी सुप्ता संतप्ता संप्रबुष्पते ॥ दंडाहता सुद्रंगीव नियस्य ऋतुतां वृत्तेत् ॥ ६८ ॥ तेनीति ॥ तेन जब्हनस्यात्यंतं प्रदीपनेन धेतप्ता सम्यक् तप्ता सती सुप्ता निद्विता कुंडिबनी शक्तिः संप्रकुष्यते सम्यक् प्रदुद्धा मविति । देखेनाहृता दंढाहृता चासी सुर्जगीव सर्पिणीव निम्बस्य निम्वासं कृत्या ऋजुर्ता सरहतां त्रजेद्रच्छेत् ॥ ६८ ॥

भाषार्थ-तिस क्षाप्रिके अत्यंत 'दीपनसे भकी प्रकार तुपायमान हुई छुंडार्टनी राक्ति इस प्रकार भकीप्रकारसे प्रबुद्ध होजाती हैं और कोमळ होजाती हैं जैसे दंडसे हतीहुई सार्पणी कोमळ

होजाती है ॥ ६८ ॥

बिछं प्रविष्टेष ततो त्रह्मनाञ्चंतरं त्रजेत् ॥ तस्मान्नित्यं सृङ्बंधः कर्तेन्यो बोगिभिः सदा ॥ ६९ ॥

विलं प्रविद्यति ॥ वती ऋजुताप्राप्त्यनेवरं विलं विवरं प्रविद्य सुर्वगीव श्रह्मनाक्ष्य सुजुन्ना वस्या कविरं मध्यं गच्छेचस्माद्वेतीर्योगिमियोगाभ्या।सिर्माहकवेथी नित्यं प्रति-वितं सदा सर्वोग्यनकाल कर्तन्त्या कर्त्त योग्यः॥ ६९॥

माषार्थ-उसके अनन्तर विरुप्ते प्राविष्ट संपिणीके समान बङ्गानाङी (सुपुन्ना) छे मध्यर्भे इंडर्लिनी प्रापिष्ट होजाती है तिससे योगान्यारितयोंको प्रूळकच्य प्रतिदिन करने योग्य है ॥६९॥

कंठमाकुंच्य हृद्ये स्थापयेचित्रुकं हृदम् ॥ वंषो जालंघराख्येऽयं जरामृत्युविनाज्ञकः ॥ ७० ॥

चार्लयर्वधमाह-बंद्रमिति ॥ कंद्रे गर्ले विक्रमार्कुच्य हृद्ये वक्षःसमिपे चतुरांगुलां-वित्वप्रदेशे चित्रुकं इत्तुं हटं स्थिरं स्थापयेत् स्थितं क्र्यांत । अयं कंद्राकुंचनपूर्वकं चत्रांगुलांगितहृद्यसमिषेऽधोनमनयलपूर्वकं चित्रुकस्थापनरूपे' जार्ह्धपर इत्याख्या-यत इति जालंभगरूपां जार्ल्धरामामा चेवः । क्षीहृद्याः ? जरा बृद्धावस्था मृत्युर्भरणं वर्षोर्विनाशको विशेषण नाभाषतीति विनाशको विनाशको ॥ ७० ॥

भाषार्थं अव जालंघरंचधको कहते हैं कि, व्रक्रेके विख्का संकोच करके वहारखक्के समी-पद्धप हृंदयमें चार अंगुल्के जंतरपर चिबुक (ठोडी) को दृढगीतिस स्थापन करे, कंठके आ-खंचनपूर्वक चार अंगुल्के अंतरपर इत्यक्ते समीपमें नीचेको नगनपूर्वक चिबुक्का स्थापनद्धप यह जालंघर नामका वंघ कहाहै और यह वंघ जरा और मृत्युका विनाज्ञक है ॥ ७० ॥

बभाति हि शिराबारुमघोगामि नभोजरुम् ॥ ततो बारुंघरो बंधः कंडदुःखोधनाशनः ॥ ७१ ॥

जालंधरपदस्यायेमाइ—बघ्नातीति ॥ हि यस्माच्छिराणां नावीनां जालं ससुदार्थं बद्गाति । अधोगेतुं शीलमस्येत्यधोगामी नमतः कपाछकुहरस्य जलमसृतं च व्राप्तीते अतिबद्गाति । ततस्तस्माजालंधरो जालंधरमामकोऽन्वयी वधा जालं दशाजालं जला-नां समृहो जालं धरतीति जालंधरः । सीहद्यः वं.ठे गलप्रदेशे चो हुःखोयो विकारजातो दुःखसमूहस्तस्य नाशनो नाशकतो ॥ ७१ ॥ भाषार्थ-अप जालंत्रसप्दके अर्थयो कहते हैं कि, जिससे यह वंच शिस (नार्डी) ऑके समूहरूप जालको बाँचता है और क्षणटके छिद्ररूप नमका जो जल है उसका प्रतिबन्ध कर-ताहे तिससे यह जालंत्रर नामका अन्तर्थ वंच जालन्यरक्ष्य कहाता है नयोंकि जाल नाम समुदाय और जलेंके समूहको कहते हैं और यह जालन्यरक्ष्य कप्टमों जो दुखोंका समूह है उसका नाजक है ॥ ७२॥

नार्छधरे कृते वंधे कंठहंकोचळ्झणे ॥ न पीयूपं पतत्यम्भे न च बाद्यः प्रकुप्पति ॥ ७२ ॥

जार्रथरग्रणानाइ—जार्रथर इति ॥ श्रंटस्य गरुविरुस्य संदोचनं संकोच आर्कुः चनं तदेव रुक्षणं स्वरुपं यस्य स संदर्धकोचरुत्रणाः तरिमन् तादर्शे जार्रथरे जार्रथरे जार्रथरे संतके वंधे कृते सति पीस्प्रमहातमयो जार्र्यक्षन् न पति न सरित । वासुख माणख न क्रप्यति नाड्यंतरे वार्योगमनं मकोपस्तं न क्रोतीहर्यथः ॥ ७२ ॥

भाषार्थ-अब जार्रुपरांपके गुणाका वर्णन करते हैं कि, बंडव्हा संक्रीच है स्कर्ण जिसका ऐसे जार्रुपरांपके करनेपर पूरोंका अनुत जटराग्निम नहीं पडता है और बायुका भी कोप नहीं होता बायोद अन्य नाडियोंने बायुका गमन नहीं होता है ॥ ७२ ॥

कंठहंकोचनेनेव द्वे नाडची स्तंभयहेटम् ॥ मध्यचक्रमिद्ं होयं पोडज्ञाधारवंयनम् ॥ ७३ ॥

फंटवंकोचनेनेति । व्हं गाढं फंटवंकोचनेनेव कंटवंकोचनमात्रेण हे नाड्यी इडा-पिंगले स्तंमयेद्रं जालंधर इति कर्ट्यदाच्याहारः । इट्टे कंटरवाने स्थितं विश्वहारूपं चैकं मध्यचकं मध्यमं चक्रं त्रेयम् । कीटर्श पोषद्याधारतंष्ठनं पोष्ठतासंख्याका चे आधारा अंग्रुष्टाधारादिव्रह्मरंप्रांतास्तेषां वंचनं वंधनकारत्यम् । 'अंग्रुष्टगुरुककात्तृरुसी-वनीर्विमनामयः । हृद्रीवा कंटर्श्वय लंबिका नाविका तथा ॥ ध्रूमध्यं च ललाटं च च सूर्या च ब्रह्मरंप्रकम् । एते हि पोष्टग्राधाराः क्यिता चोगिषुंगवैः ॥' तेष्वाधारेष्ठ धारणायाः फलविशेषस्तु गोरक्षसिद्धांतादवर्गतन्यः ॥ ७३ ॥

भापार्थ-यह जारंधरवन्य चटनासे कंठके संकोच करनेसेही इटा पिंगलारूप दोनों नावि॰ योंका संभन करता है और कंठस्थानमें स्थित इन सीव्ह खाघारीका वंधन करनेवाला मध्य क्क (विश्रद्धनाम) जानना । खंगुड, गुरुफ, जातु, उरु, सीविनी, लिंग, नािम, हद्य, श्रीवा, कंठदेज, लंबिका, नािसका, सूट्यियोंका मध्य, मस्तक, मृद्धी, अहांख्य योगियोंमें श्रेष्टोंने ये सीव्ह साधार कहे हैं इन खावारोंमें घारणका फळ विशेष तो गोरक्षसिद्धांत खंगसे जाननाध्वी

सूरुस्यानं समार्कुच्य राड्डियानं तु कारयेत् ॥ इडां च पिंगलां वडा वाहयेत्पश्चिमे पथि ॥ ७४ ॥ इक्तस्य दंघत्रयस्योपयोगमाइ-युङ्स्थानमिति ॥ मूङ्स्थानमाधारमृतमाधारस्थानं समाकुंच्य सम्यामुङ्क्य दिख्यानं नामेः पश्चिमतानरूपं वंधं कारये स्क्रयोत् । णिज-व्याद्वात् । शिज-व्याद्वात् । शिज-व्याद्वात् । शिज-व्याद्वात् । ग्रंडिन्त्ययेः । 'कंडमं-कोचनेनेव दे नाड्ये। स्तंमयेत् इत्युक्तः । पश्चिमे पथि द्वपुम्नामार्गे वाह्येद्रमयेत् प्राणामिति शेषः॥ ७४॥

भाषार्थ-अब पूर्वोक्त तीनी वंधोंके उपयोगका वर्णन करते हैं कि मूख्स्थानको अर्थात् आधारस्त आधारस्यानका भळीपकार संकोच करके नाभिके पश्चिमतानकर उद्धीमानवेषको करे और जाळवरवंबसे अर्थाद कंठके संकोचसेही इडा और पिंगळाढूप दोनी नाडियोंको

स्तंभन करे फिर प्राणको पश्चिममार्गमं (सुप्रनामं) प्राप्त करे ॥ ७४ ॥

अनेनैव विधानन प्रयाति पदनारुयम् ॥ ततो न जायते मृत्युजरारोगादिकं तथा ॥ ७५ ॥

अनेनोति ॥ अनेनैबोक्तेनैव विधानेन पवनः प्राणो छयं स्थैर्ये प्रयाति गरयमावपूर्वकं क्षे स्थितिः प्राणस्य छयः ततः प्राणस्य छयान्मृत्युजरारोगादिकम् । तथा चार्ये । म जायते मोद्भवति । आदिपदेन वर्छीपछित्तर्दद्वारुस्यादि प्राह्मम् ॥ ७५ ॥

भाषार्थ-इस पूर्वोक्त विचानसेही आण ख्य (स्विरता) को प्राप्त हो जाता है, गमनकी निञ्जति होनेपर ब्रह्मस्वर्में स्थितिही आणका ख्य होताहै उस प्राणके ख्यसे मृस्यु, जरा रोग और आदिपदसे वर्जापळेत, तदा, आख्स्य आदि नहीं होते हैं ॥ ७५ ॥

बंध्ययभिदं श्रेष्ठं महातिष्ठैश्च वेषितम् ॥ सर्वेषां हृठतंत्राणां साधनं योगिनो विद्वः ॥ ७६ त

वंधत्रयमिति ॥ इदं पूर्वोक्तं वंधत्रयं श्रेष्ठं पोडशायारवंधेऽति प्रशस्तं महासिद्धैर्म-स्टोंद्रादिमिश्रकाराहरिधादिग्रति मिः' तेवितं सर्वेशं इठतंत्राणा इठोपायानां साधनं सिद्धित्रत्रकं योमिनो योरशाचा विद्वजीनंति ॥ ७६ ॥

भोपार्थ-ये पूर्वोक्त तीनों वंघ श्रेष्ठ हैं व्यर्थत् पोडरााधार चंघमें अत्यंत उत्तम है और मर्त्येद्र आदि योगिजन और वासिष्ठ आदि ग्रानियोंके सोवित है और संपूर्ण जो हुठयोगके उपाय हैं उनका साधन है यह बात गोरहा आदि योगीजन जानतेहैं ॥ ७६ ॥

यरिक्वित्स्वतते चंद्रादमृतं दिन्यस्विषाः ॥

तत्सर्वे असते सूर्यस्तेन पिंडो जरायुतः ॥ ७७ ॥

विपरीतकर्ता विवसुस्तद्वपोद्धातत्वेन पिंडस्य जराकरणं तावदाह—याँकिचिदिति ॥ दिन्यमुद्धः सुधामयं रूपं यस्य स तथा तस्मादिन्यरूपिणश्चेद्रात्सोगाचालुमूलस्थाय-रिकविचात्कमप्यमृतं पीयूपं खरते पत्तति तत्तवं सर्वे तत्पीयूपं स्वयों नाभिस्योऽनला-त्मकः मसते मासीकरोति । तद्वक्तं योरसनाधन—नाभिदेशे स्थितो नित्यं मास्करो द्दनात्मकः । असृतात्मा स्थितो नित्यं वालुमूछे च चंद्रमाः ॥ दर्षत्यधोमुखश्चेद्रो ग्रस-त्युर्चमुखो (विः । करणं तच कर्तव्यं येन पीयूष्माप्यते ॥ ' इति । तेन सर्यकर्त्रकाः

मृतप्रसनेन पिंडो देहो जरायुवः जरसा युक्तो भववि ॥ ७७ ॥

भाषार्थ—अब विषरीत करिंगिक कथनका अभिकाषी आचार्य प्रयम उसके व्योव्यातकर होनेसे पिंडके नराकरणका वर्णन करतेहैं कि, दिव्य (सवींतम) सुषामय है रूप निसमें ऐसे ताढ़के मूक्से स्थित चंद्रमासे जो छुछ अमृत झरताहै उस संपूर्ण अमृतको नाभिमें स्थित अमिक्स सूर्य मिल विद्या (सवींतम) सुषामय है रूप निसमें ऐसे ताढ़के मूक्से स्थित चंद्रमासे जो छुछ अमृत झरताहै उस संपूर्ण अमृतको नाभिमें स्थित अमिक्स सूर्य शिव विद्या स्थित है अभी सुख होकर चन्द्रमा निस अमृतको वर्ष-ताहै और उध्यिष्ठ होकर स्थान अमृतको वर्ष-ताहै और उध्यिष्ठ होकर सूर्य उस अमृतको अस केताहै उसमें वह करण (मुद्रा) करना चाहिये जिससे अमृतको नष्टता न हो अर्थात पुष्टि रहे फिर सूर्यके किये उस अमृतके अस्रके निसे विद्य अमृतको वहताहै ॥ ७७ ॥

तत्रास्ति करणं दिग्यं सूर्यस्य सुखवंचनम् ॥ सुद्धपदेशतो क्षेयं न तु शास्त्रार्थकोटिभिः ॥ ७८ ॥

रात्रेति ॥ सत्र तदिषये सूर्यस्य नाभिस्थानङस्य गुर्खं वंचतेऽनेनेति तादशं दिन्य-गुत्तमं दरणं वश्यमाणं गुद्रास्यमस्ति तद्गुरूपदेशतः गुरूपदेशान्त्रेयं झार्ढ् शक्यम् । शास्त्रार्थानां कोटिभिः न त मैव झर्त् शक्यम् ॥ ७८ ॥

भापार्थ-उस अप्रतकी रक्षा करनेमें जिसे सूर्यके मुखकी वंचन होय ऐसा आगे कहने-योग्य मुद्राद्धप करण है और वह करण गुरुके उपदेशसे जानने योग्य है और कोटियों शाखोंके अर्थसे जाननेको शक्य नहीं है ॥ ७८ ॥

्द्रस्थं नाभरघरतालोद्धर्यं भाद्धरपः शशी ॥ ्करणी विपरीताख्या ग्रहताक्येन स्थ्यते ॥ ७९ ॥

विपरीतंकरणोमाह—कर्ष्मं नामिरिति ॥ कर्ष्मेमुपरिभागे नामिर्यस्य स कर्ष्मनामि-स्तस्योध्मंनामिरधः अधोमागे तालु वालुस्यानं यस्य सोऽधस्तालुस्तस्याधस्तालोर्यो-गिन कर्ष्मेमुपरिमागे मानुर्वहनातमकः सूर्यो मवति । अधः अधोमागे शह्ममृतातमा चंद्रो मवति । प्रथमांतपाठे तु यदा कर्ष्मनामिरधस्तालुर्योगी मवति तदोष्मं मानुरधः श्रासी भवति । यदातदापद्योरस्याहारेणान्यसः । इयं विपरीतास्या विपरीतनामिका कर्मणा । कष्मीधारिक्तयोश्रद्रसर्ययोरधक्षेत्ररणेनान्यर्था ग्रुक्वाक्येन ग्रुरोवीक्येनैस स्वस्यते प्राप्यते नाम्यया ॥ ७९ ॥

माषार्थ-अव विपरितकरणीम्रद्राके स्वरूपका वर्णन करतेहैं कि उपस्के, भागमें है नामि निसके और अधेभागमें है ताछ निसके ऐसा नो योगी उसके उपस्के भागमें तो अग्निरूप सूर्य होजाय और अधोभागमें अमृतकर चंद्रमा होजाय और जब 'उर्ध्वनामिरयस्ताछ' यह प्रथमांत पाठ है तब यदा तदा पर्वोंके अध्याहारसे इस प्रकार अन्वय करना कि जब उपस् स्के भागमें नामि और नीचेके भागमें ताल जिसके ऐसा योगी होजाय तव उपर सूर्य और नीचे चंद्रमा होजातेहें यह विपरीत (उठ्टी) नामकी करणी उपर और नीचे स्थित जो चंद्रमा सूर्य हैं उनके नीचे उपर ऋमसे करनेसे अन्वर्य है अर्थात विपरीतकरणी अर्थ तभी चटसकता है जब पूर्वोक्त छुद्रा कीजाय और यह विपरीतकरणी ग्रहके वाक्यसे मिछ सफीहें अन्यया नहीं ॥ ७९॥

नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराभिनिनिधिनी ॥ साहारो बहुरुस्तस्य संपाद्यः सापकस्य च ॥ ८० ॥

नित्यमिति ॥ नित्यं प्रतिदिनमञ्चासोऽभ्यसनं तस्मिन् युक्तस्यावाहेतस्य जटराविं स्ट्राविस्तस्य विवर्धिनीः विदेषिण वर्धिनीति विपरीतकरणीविशेषणम् ॥ तस्य साधनु कस्य विपरीतकरण्यभ्यासिन षाहारो भोजनं वहुलो यथेच्छः संवाद्यः, संवादगीयः। च पादप्रणो ॥ ८० ॥

भापार्थ-प्रतिदिनके अभ्यासमें युक्त जो योगी है इसकी जरुराग्निकी यह विपरीतकरणी बढातीहै और इसीसे इस विपरीतकरणीके अभ्यासी योगीको यथेच्छ अधिक मोजन संपादन

करने योग्य है अर्थात् अल्पमोजन न करे ॥ ८० ॥

अरुपाहारो यदि भवेदश्चिदंहति तत्सणात् ॥ अयःशिरान्योर्ष्यपादः सणं स्यारप्रथमे दिने ॥ ८२ ॥

खलगहार इति ॥ चछलगहारः अन्यो मोक्तु मिद्यानस्याहारो भोजनं यस्य ताहशो भवेत्स्यांचदाऽत्रिजंठरान्छो देहं क्षणमात्राहृहेत् । शीघां दहेदित्यर्थः । ऊष्णोधः स्थितयो-श्रृंद्रसर्ययोगस्यउद्धेकरणिक्रयामाह—अधाशिरा इति । अधाः अधोभागे भूमी शिरो यस्य सोऽधाशिराः कराभ्यां कटिप्रदेशमञ्जूष्य बाहुपूछादारभ्य कूपैर्पर्यताभ्यां वाहु-भ्यां स्कृषास्यां गलपृष्ठभायशिरापृष्ठभायाभ्यां च भूमिमवष्टभ्याधाशिरा भवेत् । उद्धे-सुपर्यविरिक्षे पादी यस्य स उद्धेवादः प्रयमिद्देन आरंगदिने क्षणं क्षणमात्रं स्यात्॥८१॥

मामार्थ-वर्गोंके, यदि विषरीतकरणीका राज्यासी योगी अल्पहारी हो अर्थात अल्पमोजन कियाजातांहे तो जठगाप्ति उसी क्षणमाजमें देहको मस्म करहेतीहैं। अन उत्तर नीचे स्थित चन्द्रमा सूर्यके नीचे उत्तर करनेकी क्रियाको कहतेहैं कि, प्रथम दिनमें क्षणमर नीचेको जिर करें कर्थात गुजा दोनों स्कंघ गळ और जिर पृष्ठमाग (पीठ) से भूमिका स्पर्ध करके नीचे जिर किये स्थित हो और उत्तरको पाद करें अर्थात प्रतान हो और उत्तरको पाद करें अर्थात प्रांत हो और उत्तरको पाद करें अर्थात प्रांत के दिन क्षणमात्र इस प्रकार स्थित उही ॥ «१॥

क्षणाच किंचिद्धिकनभ्यसेच दिने दिने ॥ विटेतं पिटतं चैत पण्यासोध्ये न दृश्यते ॥ याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत्त तु कारुचित् ॥ ८२ ॥

(200)

क्षणादिति॥ दिनेदिने प्रतिदिनं क्षणात्किचिद्धिकं दिक्षणं त्रिक्षणम् एकदिनवृद्धचाः भ्योतदभ्यासं क्षर्यातं ॥ विपरीतकरणीगुणानाइ-विविद्यमिति ॥ विवितं चर्मसंकोचः पछितं केशेप शोक्लयं च, पण्णां मासानां समाहारः पण्यासं तस्मादध्वेमपरि नैव दृश्यते नेवावकोक्यते । साधकस्य देह इति वाक्याव्याद्वारः । यस्तु साधको यामगार्ज महरमात्रं नित्यमभ्यमेत्स तु कालजितकालं मृत्युं जयवीति कालजिनमृत्युजेवा भवेत एतेन योगस्य प्रारव्धकर्मप्रतिवंधकत्वमापे स्वितम् । तदक्तं विष्णुधर्म-'स्वदेहारंमः कस्यापि कर्मणः संक्षयावदः । यो योगः पृथिवीपाल शृणु तस्यापि लक्षणम्' ॥ इति । विद्यारण्येरापि जीवन्युक्तावुक्तम्-"यया भारव्यक्तमे तत्त्वज्ञानात्मवरुं तथा तस्मादिप कर्मणो योगाभ्यातः प्रवतः । यत एव योगिनासुदालक्ष्मीतहन्यादीनां स्वेच्छ्या देहः त्याग उपपद्यत" इति । मागवतेऽप्युक्तम्-'देहं जहात्समाधिना' इति ॥ ८२ ॥

भाषाय-फिर प्रतिदिन अणसे कुछ २ अधिक अभ्यास करें अर्थात हो क्षण, तीन क्षण, कार एक २ दिनकी बृद्धिसे अभ्यासको चडाता रहे अब विभरातकरणीके गुणींको कहते हैं कि, पूर्वोक्त प्रकारके करनेसे वर्छापिटत छः नासके अनंतर नहीं दीखतेहें अर्थात् यौवन अवस्था होजाती है और जो साधक प्रतिदिन प्रहरमात्र अभ्यास करताहि वह मृत्युको जीत-ताहै. इससे यहभी स्रचित किया कि, योग प्रारम्भकर्मकाभी प्रतिबंधक है। सोई कि गुधर्ममें कहा है कि, अपने देहके आरंभककमेकाभी नाजक जो यांग है हे पृथ्वीपाल ! उस योगको तू सुन और विद्यारण्यने जीवन्मुक्तियंथमें यह कहा है कि तत्त्वज्ञानसे पारव्यकर्म जैसे प्रवा हैं ऐसेही प्रारूवकमेंसे योगाभ्यास प्रश्र है इसीसे उदालक, बीतहत्य आदि योगियाने अप इच्छासे देहका त्याम किया, भानवनपंभी छिखा है कि, समाधिसे देहको व्याने ॥ ८२ ॥

वय बज़ोही ।

स्वेच्छया दर्तमानोऽपि योगांकीनियमैर्विना ॥ व्ज्रोर्छि यो विज्ञानाति स योगी तिद्धिशाननन् ॥ ८३ ॥

वज्रोल्यां प्रदृत्ति जनवितुमादी तत्फलमाह-स्वेच्छ्येति ॥ योऽभ्यासी वज्रोली वजोळीयुद्रां विजानाति विशेषेण स्वातुमवेन जानाति स योगी योगे; योगशास्त्रे उक्ता योगोक्तास्त्रियोगोक्तिनियमैत्रीहाचयोदिमिर्विना ऋते स्वेच्छया निजेच्छया वर्तमानोऽपि व्यवहरस्त्रिप सिद्धिमाजनं सिद्धीनामणिमादीनां माजने पात्रं भवति ॥ ८३ ॥

भाषार्थ-बन्नोळीसहाकी प्रवृत्तिको उत्पन्न करनेके लिये प्रयम बन्नोळीके फलका वर्णन करते हैं कि, जो योगाम्यासी बजोळीमुद्राको अपने अतुभवसे जानता है वह योगी योगशास्त्रमें कहेहुथे नियमाके विना अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहार करताहुआभी अणिमा आदि सिद्धि योंका भोक्ता है अर्थात् ब्रह्मचर्य आदि नियमीके विनाभी उसकी सिद्धि प्राप्त होती है ॥८३॥

तत्र वस्तुद्वयं वक्ष्ये दुर्छेथं यस्य कल्यांचेत् ॥ क्षीरं चैकं द्वितीयं तु नारी च वज्ञवर्तिनी ॥ ८८ ॥ तत्साधनोपयोगिबस्तुद्वयमाह-वजेति ॥ तत्र 'बज्जोलयम्यासे वस्तुनोहर्षे वस्तुद्रंपं दश्क्षं क्रवायिण्ये । कीहर्स् वस्तुद्रंपं यस्यकस्याचित् यस्यकस्यापि धनहीनस्य दुर्ल्यं द्वायेन लब्धुं ज्ञव्यं द्वायेनापि व्यव्यामध्ययोगिति वा । 'द्वाः स्यात्कव्यनिषयोगे' इति क्षोज्ञात् ॥ क्षिं तदस्तुद्वयमित्यपेक्षायामाह-क्षीगिति । एकं वस्तु क्षीरं पानार्थे मेहना-वंतर्गितिद्वयनिद्वयानद्वव्यायद्वव्यायेक्षायामाह-क्षीगितिव । एकं वस्तु क्षीरं पानार्थे मेहना-वंतर्गितिद्वयनिद्वयानद्वव्यायद्वव्यायेक्षाये स्वायं विकास विकास विवास विवास

मापार्थ-अन बज्रोलीस्ट्राके साधक दो । बस्तुओंका वर्णन करते हैं कि, उस. बज्रोलीकी सिहिंस निस्तिक्त निर्धन पुरुषको दुर्लभ जो दो वस्तु हैं उनको में कहताहूँ उन दोनीमें एक दूध है और दूसरे वश्वतिनी नारी है अर्थाद सैश्वनके अनंतर निर्धक हुई इंद्रियोंकी भूबरू-ताके लिये दूधका पान योग्य है और कोई यह कहते हैं कि, अभ्यासकालमें आकर्षणके लिये दूधका पान दोग्य है और कोई यह कहते हैं कि, अभ्यासकालमें आकर्षणके लिये दूधका पान उत्तम है सो ठीक नहीं, क्योंकि अंतर्गत हुए दूधका आकर्षण नहीं हो सकता

鲁 11 68 11

वेहने**न ज्ञानेः सम्यग्रःचांङ्कंचनमभ्य**सेत् ॥ प्रस्पोऽप्यथवा नारी रञ्जोशीसिद्धवास्त्रयात् ॥ ८५ ॥

बज्जेलीमुद्रामकारमाह—मेहनेनोति ॥ मेहनेन खीसंगानंतरं विन्दोः सरणेन साधनः भूतेन पुरुषः पुमानयतः नार्येषि योषिद्गि हानैमेंदं सम्यक् यत्तपूर्वेनमुद्दर्शकुंचनमुद्देन सुपर्वःकुंचनं केङ्गकुंचतेन विदोष्ठपर्याक्षर्वणमभ्यसेद्रज्ञोळीसुद्रासिद्रिमाष्त्रुपारिवर्षिः शुच्छेत् ॥ ८५ ॥

भाषार्थ-अन वजोळीप्रदाके प्रकारका वर्णन करते हैं कि, पुरुष अयवा स्त्री मेहन (विहुका हरना) से शनैः २ मळीप्रकार यन्नसे खरएको आकुंचन (संकोच) का अभ्यास करे अर्थात् र्लिंग इंद्रियके आकुंचनसे विहुके खपर खींचनेका अभ्यास करेतो वज्रोळीसुद्रा सिद्धिका प्राप्त होती है ॥ ८५॥

यनतः शरतनाछेन फूत्कारं नत्रसंदरे ॥ इनैः श्लेनः मर्क्सीत नापुसंच्यरकारणात् ॥ ८६ ॥

अय वज्रीलयाः पूर्वीगमिक्षयामाइ—यत्नव इति ॥ शस्तः मशस्तो यो नालस्तेन इंहस्तनालेन सीसऋ।दिनिर्मितेन नालेन श्रीः शनैमैद्देमेंद यथाप्रेधेमनार्थं फूत्करः क्रियते ताटशं फूत्कारं वज्रकंदरे मेह विदेशे वायोः संवारः सम्ययवज्रकंदरे चरणं गमनं तत्का-रणात्तस्तोः मक्कर्षात प्रकर्षण पुनः पुनः क्षवित ॥ वय वज्रोलीसाधनमिक्रया । सी-सक्तिनिर्मितां क्रियां मेद्रमदेश्ययेन्यां चतुर्देशांगुलमात्रां शलाकां कारियता मेद्र प्रदेशनः सम्यसेत् । प्रवर्मीदेने प्रकर्गण्यामां शलाकां कारियता मेद्र प्रदेशनः सम्यसेत् । प्रवर्मीदेने पर्कागुलमात्रां शलाकां प्रदेशयेत् । द्वितीयदिने द्वयंगुलमात्रां

त्तीयदिने व्यंगुल्मात्राम् । एवं क्रमेण' वृद्धौ द्वादशांगुल्मात्रप्रवेशे मेह्मार्गः शुद्धौ मवित ॥ पुनस्वदिशीं चतुर्दशांगुल्मात्रां इयंगुल्मात्रवाह्मात्रां प्रदेशिया वाह्मात्रवाहमात्रवाह्मात्रवाहमात

भाषार्थ-अय वजोली मुद्राकी पूर्वोङ्क कियाका वर्णन करतेहिं कि, सीसे आदिकी उत्तम ना-छीसे जनै: २ इस प्रकार हिंगके छिद्रैभं दायुके संचार (भछीपकार प्रवेज) के यत्रसे फुल्का-को करे जैसे अधिक प्रव्ययनार्थ प्रकारको करते हैं। अब बज्रोडीकी सावनप्रक्रियाको कहते हैं कि, सीसेसे बनीहुई छिंगमें प्रदेशके योग्य चीदह अंगुळकी शलाई बनवाकर उसकी लिंगमें प्रवेशका अभ्यास वरे । पहिले दिन एक अंग्रुलमात प्रवेश वरे इसरे दिन दो अंग्रुल मान और तीसरे दिन तीन अंग्रहमान प्रदेश करें इस प्रकार क्रमसे बढ़ि करनेपर बारह अंग्रज श्राकाकाके प्रवेश होनेके अनंतर हिंगका मार्ग शह होजाताहै फिर उसी प्रकारकी सार बीदह कंग्रालकी ऐसा शलाई बनवाये जो हो अंग्रुल देश हो और उच्चेमुखी हो उसकीभी बारह अंगल भर हिंगके हिद्रमें प्रवेश कर, टेडा और उज्जेमुख जो दो अंगुरु मान है उसकी बाहर रक्षे फिर सुनारके आग्निवमनके नालकी सहक नालको छेकर उस नालके अग्रभागको लिंगमें प्रदेश किये बारह अंगुलके नालका देदा और उध्यमुख दो अंगुल है उसके मध्यमें प्रदेश करके फ़तकार कर तिससे मही प्रकार हिंगके मार्गकी शुद्धि होतीहै फिर हिंगसे जहके आक-र्पणका सम्यास करे जरके आकर्षणकी सिद्धि होनेपर प्रवोक्तररोकमें कही हुई सीतिक स्त-सार विदक्षे उपरको आकर्षणका अभ्यास करे विदक्षे उच्चे आकर्षणकी सिद्धि होनेपर वज्री-- छीमुद्राकी सिद्धि होतीहै यह मुद्रा उस योगीको ही सिद्ध होती है जिसने प्राणवायुको जीत लियाँहै अन्यको नहीं होती है और खेचरीमुदा और प्राणका जय होनेपर तो भलीमकार सिद्ध होतीहै। भावार्थ यह है कि, दिंगके हिद्रमें वायुके संचार करनेके लिये उत्तमनाइसे शनैः २ यतपूर्वक फुल्कारको करे ॥ ८६ ॥

> नारीभगे पतिईंडुमभ्यासेनोर्घ्यमाहरेत् ॥ चित्रतं च निर्व विंडुमूर्घमाङ्गच्य रक्षयेत् ॥ ८७ ॥

एवं वजीवयभ्यासे विद्धे तहुचरं साधनमाह-नारीमग हित ॥। नारीमगे क्षेत्रधेली पत्ततीति पतन् पतंत्रासी विद्ध्य पविद्धिहस्तं पर्वाद्धहुं रविकाले पवेतं विद्धमभ्यासेन वज्रोलीक्षद्राभ्यासेनांव्यप्रधारिश्वाक्ष्मेयत् । पत्तन्तरपूर्वे मित्र पत्तन्तरपूर्वे विद्युगक्ष्मेयं न स्याचाह्रं पतितमाक्षेयोद्दिर्याह-चित्रवे चित्रे । चित्रवे नारीमगे पवितं निर्ज स्वकीर्यं विद्धे चक्रासच्द्रवः द्वार्थेयुग्वीक्षम्याहर्य रस्रयेत् र ेतु ॥ ८७ ॥

मापार्थ-अन वज्रोधीसुद्राकी सिद्धिके व्यंतरका जो साघन है इसका वर्णन करते है कि, निरिक्ते भग (योनि) में पदते हुये विद्ध (वीर्य) वा वम्याससे उपरको आवर्षण करें विद्धा पदनेसे पूर्व विद्धा आवर्षण न होसके तो पति-तक्कियों विद्धा आवर्षण न होसके तो पति-तक्कियों विद्धा आवर्षण करें कि चिट्टतहुआ अपना विद्धा और चकारसे छीका रच इनकी उपरको आवर्षण करें रहा करें अर्थात् मस्तकरूप जी वीर्यका स्थान है इसमें स्थापन करें ॥ ८७॥

एवं छंरक्षंयेद्धिंदुं नृत्धुं जयति योगादित् ॥ यरणं विदुषातेन चीवनं विदुषारणात् ॥ ८८ ॥

बज्रोळीग्रणानाइ—एविमिति ॥ एवमुक्तरीत्या बिंहुं यः संरक्षयेत् सम्यक् रक्षयेत् स बोगविद्योगामित्रो सृत्युं जयत्यिममगति । यतो बिंदीः ग्रुकत्य पातेन पतनेन मर्रणं मगति । बिंदीधौरणं विन्दुधारणं तस्माद्धिदृधारणान्तीवनं मगति । तस्माद्धिदुं संरक्षये-द्वित्ययेः ॥ ८८॥

माषार्थ—अन बज्रोलीके ग्रुणांका वर्णन करते हैं कि, इस प्रकार जो योगी बिंदुको मली प्र-कार रक्षा करताहै योगका ज्ञाता वह योगी ग्रुग्युको जीतताह क्योंकि, विदुक्ते पढनेसे मरण स्त्रीर विदुकी रक्षासे जीवन होताहै तिससे चिंदुकी रक्षा करें ॥ ८८ ॥

सुगंधो योगिनो देहै जायते बिंदुधारणात् ॥ याषद्विद्धः स्थिरो देहे तारत्काळमयं छतः ॥ ८९ ॥

छुरंध १ति ॥ योगिनो वज्रोलयभ्यातिनी हेई विदोः ग्रुकस्य धारणं तस्मात्मुगंधः शोमनो शंधो जांचते प्राहुभवति । देहे यावद्धिद्वः स्थिरस्तावस्त्रालमयं मृत्युमयं छ्वः। च छुतोऽपीत्ययः ॥ ८९ ॥

मापार्थ-वात्रोकीने अभ्यासकर्ता योगोके देहमें विद्वके धारण करनेसे [सुगंघ होनाती है क्षोर देहमें जनतक विद्व स्थिर है तचतक काळका भय कहां अर्थात् कालका भय .नहीं रह-ताहै ॥ ८९ ॥

> चित्तायत्तं नृणां शुक्तं शुक्तायत्तं च जीवितम् ॥ तत्तमाच्छक्तं मनञ्जेव रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ ९० ॥

चित्तायचिति ॥ हि यस्मान्त्रणां शुक्रं वीर्ये वित्तायतं चित्ते चले चलताचित्ते स्थिरे वित्तायतं चित्ते चले चलताचित्ते स्थिरे वित्तायत्त्रीयते निष्ये जीवनाच्छके निष्टे मरणं शुक्राधीनं वस्माच्छके निष्टे मरा सम्बद्धाः मानसं च प्रकृष्टाधाताविति प्रयत्नतः रक्षणीयमेव । सबस्यं रक्षणीयमित्यर्थः । एवशन्दो मिन्नक्षमः ॥ ९०॥

भाषार्थ-जिससे मतुष्योंका ग्रुक (वीर्य) चित्तके आधीन है अर्थात चित्तके चळायमान झेनेपर चळायमान और चित्तके थियर होनेपर थियर होजाताहै इससे चित्तके चर्शामूत है और मतुष्योंका जीवन ग्रुकके आधीन है अर्थात ग्रुककी रियरतासे जीवन और ग्रुककी नष्ट- तासे मरण होताई इससे जीवन छुक्के आधीन है तिससे छुक (बिंटु) और मनकी अछी प्रकार यहसे रहा कैरे॥ ९०॥

ब्रह्मस्या रलोऽप्येनं वीनं विद्वं च रहनेत् ॥ रेहेनाक्पर्येक्ष्यं सम्बगभ्यासयोगनित् ॥ ९१ ॥

ऋदुमत्या इति । एवं पूर्वोक्तिगभ्यातेन ऋदुविधाते यस्याः ता ऋदुमत्वा तस्या ऋदुमत्या ऋदुमनानाथाः खियो रेतः निर्म स्वर्कायं विदुं च रक्षणेत् । पूर्वोक्ता-भ्यासं दर्ज्याति—भेट्रेणोते । अभ्यासो बज्जोल्यभ्यातः स एव योगो योगसाधनत्वाक्तं वित्तात्वभेयासयोगिर्वत् भेट्रेणा सुद्धोद्वर्येणा सम्यम्यत्नपूर्वक्रमूर्व्वसुपयोक्तपयेत् । रज्ञो विदुं विति पर्माध्याहारः । व्ययं श्लोकः क्षिप्तः ॥ ९१ ॥

मापार्थ-क्य हुआ है निसके ऐसी ठाँके रन (भीय) की और अपने विश्कीमी हुसी पूर्वोक्त शम्यातसे रक्षा करें अर्थाद कर्युरानके शनंतर रन और भीयें दोनींकी रहा करें। पूर्वोक्त अन्यासकोही दिखारेंह कि, बजीलीके अन्यासकप योगका काता योगी लिंग इंद्रियसे रन और विश्वक भली प्रकार उपरक्षे आकर्षण करें (स्वीचे) यह खीक देपक है अर्थाद

मूळका नहीं है ॥ ११ ॥

तत्नोरिज्यामरोरिजेत्रोरुषा सेद एकतः ॥ जञ्जे सुसरम निहित्य दग्यगोनयतंभवम् ॥ ९२ ॥

सह तेवयमरोहरी विवश्चत्वचोर्वज्ञेळीविशेषतमाह—सहगोळिखेति ॥ बज्ञोहरा भेदी दिशेषः वहणोलितमरोछिय । तम हेतः-एकतः एकतावृक्षकललादित्यर्थः ॥ एकत्वव्दाज्ञानमधानाद्यं व्यवस्थाति । सहजोलिमाह—जल हाते । गोः पुरीपाणि गोमपानि देग्धानि च तानि गोमपानि च दृग्धगोमपानि वेषु संभव अराधिवर्षस्य तहम्यरोगपसंभवं जोमनं मस्म विभृतिः तत्व जले तोचे निश्चिप्य तीयमिश्चं इत्त्वेत्युः चराहोकेनान्वेति ॥ ९२ ॥

मापार्थ-अब सहनोटी और अमरोटी छुत्राओंका वर्णन करेतेहैं कि, बन्नोटीछुत्रका भेवृद्धि-शुप्ही सहनोटी और अमरोटी है, क्योंकि तीनोंका फल एक है उन दोनोंमें सहनोटीछुत्रका वर्णन करतेहूँ कि, दृग्य किये हुये गोमयाँका जो छंदर मरम है उसको जलमें डालकर

सर्यात् जलमिशित इस भरमको करे ॥ ९२ ॥

वज्रोठीनेष्टनाहुर्वे झींप्रंतोः त्वांगठेपनम् ॥ साक्षीतयोः सुलेनेद सुक्तव्यापारयोः सणात् ॥ ९३ ॥

वज्रांलीति ॥ वज्रांलाहुत्रार्थं मैशुनं तस्यादुर्ध्धमनतरं सुर्वेनेवानंदेनैवासीनयोरुपन्ने सिष्टपोः स्वणाद्रत्युत्सवान्युक्तस्यको न्यापारी रातिकिया याभ्यां ती. मुक्तन्यापारी विश्वाद्विकत्यापारयोः स्वी च पुमांख्य स्त्रीपुंसी तयोः स्वीपुंसीः स्वागलेपनं ज्ञोमनान्यं-गानि सामानि पूर्वेललानेब्रह्दयस्त्रं प्रसुजादीनि तेषु लेपनम् ॥ ९३ ॥

भाषार्थ-वज़ोलीसुद्राकी सिद्धिके लिये क्रियेहुये मैसुनके लगतर आनंदसे बैठेहुये और करसाहसे त्याग दिवाहे रतिका ब्यापार जिन्होंने ऐसे खी ओर पुरुप दोनों पूर्वोक्त अस्मको स्मने मस्तक, शिर, नेत्र, इदय, स्कंध, सुजा आदि लंगोंपर लेपन केरें ॥ ९३ ॥

सहजोलिरियं प्रोक्ता श्रद्धेया योगिभिः सदा ॥

अयं शुभक्रो योगो भोगयुक्तोऽपि मुक्तिदः ॥ ९८ ॥

सहजोिलीरित ॥ इयमुक्ता किया सहजोिलारित प्रोक्ता किथाता योगिमिर्मरस्येद्वा-द्विमः। कीहशी सदा श्रद्धेया सर्वदा श्रद्धातुं योग्या । अयं सहजोल्याख्या योग, लपायः ग्रुमकरः शुमं श्रेयः करोतीति शुमकरः। ' योगः संहननोपायच्यानसंगतिषु-कितु ' इत्यमिधानात् । कीहशो योगः मोगेन युक्तोऽपि शुक्तिशे मोक्षदः ॥ ९४ ॥ भाषायं-वह पूर्वोक्त सस्र्लेयनरूप किया मरस्येद्व आदि योगीननीने सहजोिष्टिष्टता कहा

भाषाय-वह पूनाक मस्त्र्यनरूप किया भरस्य आहु योगाननान सहगारहज्ञा कहे है जौर यह योगीननोंको सदेव अद्धा करने योग्य है, यह सहजोि नामका योग (डपाय) द्धापकारी जानना और भोगसे युक्त भी यह योग मोक्षका दाता है॥ ९४॥

स्रयं योगः पुण्यवतां धीराणां तत्त्वदार्ज्ञनाम् ॥ निर्मत्त्वराणां विध्येत न तु मत्त्वरज्ञान्तिनाम् ॥ ९५ ॥

खर्य योग इति ॥ अयमुक्ती योगः पुण्यं विद्यते येषां ते पुण्यवंतः सुकृतिनस्तेषां पुण्यवता धीराणां धेर्यवतां तत्त्वं वास्त्वविकं पश्यंताितः तत्त्वद्धिनस्तेषां तत्त्वद्धिनां सन्तराशिनकान्ता निर्मत्तरास्त्रेषां निर्मत्तराणामन्यग्रुणद्वेषरिहतानाम् । 'मत्तरोऽन्यग्रु-गोद्देषः' इत्यमरः । तादशानां पुंतः तिस्थेत तिर्द्धिं गन्छेत् । मत्तरशालिनां मत्तरवदां द्य न तिस्थेत् ॥ ९५ ॥

मापार्थ-और यह सहजोळिरूप योग प्रण्यकार और धीर और तत्व (ब्रह्म) के जो इद्रा है और अन्यके ग्रुणॉमें हेपरहित (निर्मत्सर) है ऐसे पुरुषांकोही सिद्ध होताहे और जो अत्सरी है अन्यके ग्रुणॉमें हेप (विर) के कर्ता है उनको सिद्ध नहीं होताहे ॥ ९९॥

ध्ययामरोडी ।

पित्तोल्बणत्वास्त्रथमांडघारां विद्याय निःष्ठारतयांत्यघा-रा ।। निषेच्यते ज्ञीतळमध्यघारा कापाळिके खंडमतेऽ-मरोळी ।। ९६ ।।

्यमरोलीमाह-पित्तोल्बणतादिति ॥ पित्तेनोल्बणोत्तव्या पित्तोल्वणा तस्या मावः पित्तोल्वणत्वं तस्मात् । यथा प्रथमा पूर्वे या ग्रॅंडुनः हिवांडुनो धारा ता विहाय छ्वां-द्धनिमेमनसमये किंचित्युर्वे धारां त्यक्ता । निर्मतः सारो यस्याः सा निःसारा तस्या मावो निःसारता तथा निःसारतया निःसारतेनोत्यधारा अन्त्या चरमा या धाग ता विहाय किंचिद्त्यां घरां त्यक्ता । श्रोतेला पिचादिदोपसास्त्राहिता या मध्यघर। मध्यमा धारा सा निषेक्यते नितरां सेक्यते । खंडो योग्रीवशेषो मतोऽभिमतो यस्य स संकमक्तिस्मिन् संकमते कापालिकस्यायं कापालिकस्त्रास्मन् कापालिके सण्ड-कापालिकक्षेप्रदाय इत्यंथै: । अमरोली प्रसिद्धेति श्रेषः ॥ ९६ ॥

भापार्य-अब अमरोठीष्ठद्राका वर्णन करते हैं कि, पित है उल्लण (अधिक) निसमें ऐसी जो प्रथम शिवांत्र (बिंदु) की पाण है उसको और नहीं है सार अंश जिसमें ऐसी जो अन्यधारा है उसको छोडकर जर्यात पहली और पिछली धारोंको किंचित २ त्यानकर पित आदि दोष और सारतासे रहित शीतळ मन्य धाएका जिस गितिसे नित्य सेवन (पान) कियाजाय वह किया योगविशेष जो खंड उसके माननेवाले कापालिक मतमें अर्थात् इंड- कापालिक मतमें अमरोठी नामकी गुद्रा प्रासिद्ध है ॥ ९६ ॥

अमरी यः पिवेज्ञित्यं नस्यं क्वंनिन्देनेदिने ॥ वज्रोळीमभ्यमेतसम्यगमरोळीति कृष्यते ॥ ९७ ॥

अमरीमिति ॥ अमरी शिवांबु वः पुमान् नित्यं पिवेत् । नस्यं कुर्वेत् श्वासेनामयां झाणांतग्रेहणं कुर्वेन् सन् विनेदिनं प्रतिदिनं बजोर्छा ' मेहनेन हानैः' इति श्लोकेनोक्तां सम्यगभ्यसेत्साऽमरोलीति कथ्यते । कापालिकैसिति होषः । अमरी पांतामरी । नस्य पूर्वेकावज्ञोल्यमरोलीहारुदेनोस्यत इत्यर्थः ॥ ९७ ॥

मापार्य-को पुरुष शिवांबुष्ट्य अमरीको नासिकासे नित्य पीता है अर्थात नासिकाके छिद्र-ह्यारा अमरीको अंतर्गत करताहै और मेथुनसे प्रतिदिन क्योर्थोका मर्कामकार कम्यास करता है उस सुद्राको कापारिक अमरीकी कहते हैं अर्थात नासिकाके छिद्रसे पानकी अमरी बज्रोर्काक अनंतर अमरीकी कहाती है ॥ ९७ ॥

अभ्यासात्रिःसृतां चांद्रीं विभृत्या सह मिश्रयेत् ॥ धारयेदुत्तमांगेषु दिव्वहाष्टिः प्रजायते ॥ ९८ ॥

अभ्यासादिति ॥ अभ्यासादमरोज्यभ्यासावाज्ञात्वतं निर्मतां चांद्रीं चंद्रस्थेयं चांद्री तां चांद्रीं सुधां विष्कृत्या मस्मना सह सार्क मिश्रयेरारेयोज्येत् । उत्तमांगेषु हिराःक्षपा-स्नेनस्कंधकण्डह्दयसुजारिषु धारयेत् । भस्मिमिश्रतां चांद्रीमिति होषः । दिल्या जती तानागतवतमानव्यविद्वतियम्ब्रप्टरदार्थद्कीनयोग्या दृष्टिरेस्य स दिल्यदर्षिदिन्यदक् प्रजायते प्रकर्षण जायते । अमगस्वनप्रकारविद्योषाः हिर्माचुक्तस्याद्वगतन्याः ॥९८॥

माषार्थ-अमरोलिस्ट्राके अभ्याससे निकसी जो चंद्रमाकी सुघा (अमृत) है उसको विभू-ति (मस्म) के संग भिलाकर शिर, कपाल, नेम, स्वंध, वंड, हृद्य, भुजा आदि उत्तम अ-गोंमें पारण करें तो मनुष्य दिव्यहांट होजाता है अर्थात सुत्त, भविष्यद्र, वर्तमान, व्यवहित और विफ्कृष्ट (ट्रर) के जो पदार्थ उनके देखनेयोग्य हाट होजाती है और अमरीसेवनके भेद तो शिजांवुक्तमप्रयसे जानने ॥ ९८ ॥

ष्ठंतो विंदुं समार्कुच्य सम्पगभ्यासपाटवात ॥ यदि नारी रजो रहोद्वजोल्या सापि योगिनी ॥ ९९ ॥

दुंसो बज्रोडीसाधनसुक्तानार्यांस्तदाह—पुंसो विद्वमिति ॥ सम्यजभ्यातस्य सम्य-ग्रभ्यसनस्य पाटवं पद्धस्वं तस्मात्तुंसः' पुरुषस्य विद्वं वीयेः समार्कुच्य सम्यणाकृष्य नारी द्वी यदि रजो बज्रोल्या बज्रोतीसुद्धस्य रहेत् । सापि नारी योगिनी प्रशस्तयो-ग्रवती ज्ञेया 'पुंसो विद्वसमायुक्तम्' इति पाठे तु एतद्रजसो विशेषणम् ॥ ९९ ॥

भापार्थ-पुरुषको बज्रोळीके साधनको कहकर नारीको बज्रोळीके साधनको वर्णने करते हैं कि मळीनकारसे कियेहुये अन्यासकी चतुरतासे पुरुषके बिद्धका मळीनकार आकर्षण करके यदि नारी बज्जोळीछुद्रासे अपने रचकी रक्षा करे तो वह भी योगिनी जाननी (पुंसो बिद्धमाछक्तं) यह पाठ होय तो यह अर्थ समझना कि, पुरुषके बिद्धसे एक्त अपने रजकी रक्षा करें तो वह नारी योगिनी होती है ॥ ९९॥

तस्याः क्षिविद्रजो नाशं न गच्छति न संशयः ॥ तस्याः शरीरे नाद्य विंदुतानेव गच्छति ॥ १०० ॥

नारीकृताया वन्नोल्याः फलमाह—तस्या इति ॥ तस्या वन्नोल्यभ्यसनज्ञीलायाः सत्यो रजः किंचित् किमिप स्वल्यपि नाज्ञां न यच्छित नष्टं न भवति पतनं न माभि-चीत्ययैः । अत्र संज्ञायो न संदेहो न । तस्या नार्याः चारीरे नादश्च चिहुतामेव गच्छ-ति । मृत्याधागहित्यतो नादो इदयोपरिजिचुमावं गच्छित । विंदुना संहैकीभवतात्ययः । अञ्चलिक्की—'वीजं च पौरुवं प्रोक्तं रजश्च खीससुद्धवयः । अनयोकोह्ययोगेन स्रष्टिः सं-जायते नृणाम् ॥ यदाभ्यंतरयोगः स्यानदा योगीति गीयते । विंदुश्चद्भवयः प्रोक्तो रजः खर्षेत्रयं तथा ॥ अनयोः संगमादेव जायते परमं पदम् । स्वर्गदो मोक्षदो विंदु-धर्मवीड्यमेदस्तया ॥ तन्मस्ये देवताः सर्वात्तिवर्धते सहस्वस्वतः' इति ॥ १०० ॥

मापार्थ-व्यव नारिकी कीहुई वज्रोलीके फलको कहते हैं कि, वज्रोलीक अभ्यास करनेमें शिल्वती उस नारिका किंचित भी रज नष्ट नहीं होता है अंयोत् अपने स्थानसे पतित नहीं होता इसमें संशय नहीं है और उस नारिके शरिसें नादभी बिद्दुरूपको प्राप्त होजाता है अर्थात अक्षान स्थान केंद्रिर होता इसमें संशय नहीं है और उस नारिके शरिसें नादभी बिद्दुरूपको प्राप्त होजाता है अप्रतिक्षित्र में लिखा है इसके विषेकी बीज और नारिके विषेका रज कहते हैं इन दोनोंका देहसे बाहर योग होनेसे मनुष्योंके संतान होती है यदि दोनोंका मीतरही योग होजाय तो वह योगी कहा जाता है उन दोनोंके संगमसे परम पद होता है और यह बिद्दु क्यान होती है यदि दोनोंका भीतरही योग होजाय तो वह सम्मि एरम पद होता है और वह विदेक्ष मध्यमें सुरूभ-रूपसे संतुष्णे देतता दिक्ते हैं ॥ १००॥

र विदुस्तद्वनञ्चेन एकीभ्रय रवदेहगौ ॥ रत्रोल्यभ्यासयोगेन सर्वेसिद्धि प्रयच्छतः ॥ ५०५ ॥

स विंदुरिति ॥ स पुँती विंदुस्तद्रजो नार्या रजयीत वजीळीयुद्राया अध्यासी वजील्यभ्यासः स पव योगस्तेनैकीभूय मिलित्वा स्वेदेशी स्वेदेहे गती सर्वेतिर्द्धि प्रयन् च्छतः दृष्तः ॥ १०१॥

भापार्थ-पुरुषका वह विंहु और नारीका वह रज दोनों एक होकर वज्रोळीष्ठहाके व्यप्यास-योगसे यदि व्यपने देहहीमें स्थित रहर्नीय तो सम्पूर्ण सिडियोंको देते हैं ॥ ९०९ ॥

रक्षेदाकुंचनादूर्वं या रजः सा हि योगिनी ॥ अर्तातानागतं वेत्ति खेचरी च अवेद्ध्यवम् ॥ १०२ ॥

रक्षेद्ति ॥ या नार्याकुंचनायोनिसंकोचनादूर्ध्वपुरिस्याने नीत्वा रजो रक्षेत् । हीति प्रसिद्धं योगज्ञाखे । सा योगिन्यतीतानागर्त भूतं मविष्यं च वस्तु वेचि जानाति ॥ धुवमिति निश्चितम् । केऽन्तरिक्षे चरतीति सेचर्यवर्तिसचरी मवेत् ॥ १०२ ॥

भापार्थ-जो नारी अपना योनिके संकोचसे रचके उद्धांस्थानमें हेजाकर रजकी रक्षा है.रे वह योगिना होता है और भूत, भविष्यत, वर्तमान बस्तुको जान सकती है और यह निश्चत है कि वह खेचरी होती है अर्याद उसकी आकारामें गमन करनेका सामर्थ्य होजाताहै १०२

देहसिद्धिं च लभते वल्रोल्यभ्यासयोगतः ॥ लयं पुण्यकरो योगो भोगे भुक्तेऽपि मुक्तिदः ॥ १०३ ॥

देहिति हिमिति ॥ वज्रोल्या वभ्यासस्य योगो युक्तिस्तरमाहेहस्य सिद्धिं रूपलाव-ण्यचल्यज्ञसंहननत्वरूपां लमते । व्ययं योगो वज्रोल्यम्यासयोगः पुण्यक्तोऽहृष्टीवेशे प्रजनकः । कीहितो योगः भुष्यत इति योगो विषयस्तिसम् भुक्तेऽपि मुक्तिदोः मोक्षदः ॥ १०३ ॥

मापार्य-ओर बज्रोलीके अभ्यासयोगसे रूप, कावण्य, बज्रोलीकी तुरवतारूप देहकी सिक् द्विको प्राप्त होती है और यह बज्रोलीके अभ्यासका योग पुण्यका बरपाइक हे और मोगॉके

भोगनेपामी मुक्तिको देता है ॥ १०३ ॥

अय शक्तिचालनम् **।**

कुटिरांगी कुंडिटिनी सुनंगी शक्तिरीयरी ॥ कुंडिट्यहंपती चैते क्षव्दाः पर्यायवाचकाः ॥ १०४ ॥

क्षित्वालं विवस्ततद्वपोद्धाततया इंडब्शेपयीयान् तथा मोक्षद्वापिमेदनाविस्ट चाह सप्ताम:-कुटिकांगीति ॥ कुटिकांगी १, इंडिकिन २, सुनंगी ३, शकिः ४, र्देश्यो ५, कुण्डली ६, अरुंघती ७, चैते सप्त शब्दाः पर्योचवाचका एकार्थः गचकाः ॥ १०४ ॥

आपार्थ-राक्तिचाळनप्रद्वा कहनेके अभिळापी आचार्य छंडाळेनीके पर्याय और इंडाळेनीके मर्याय और इंडाळेनीके मोक्षडार्यभेदन (क्लेळना) आदिका वर्णन करते हैं कि, छुळ्ळिगी १, ट्रंडाळेनी २, धुनंगी ३, श्ताके ४, ईवरी ९, सुंडळी ६, अहंबती ७, ये सात शब्द पर्यायवाचक हैं अर्थाद-सातोंका एकही अर्थ है ॥ १०४॥

उद्घाटयेत्कपाटं तु यथा कुंचिकया इठात् ॥ कुंडिल्यां तथा योगी मोश्रद्धारं विभेदयेत् ॥ ३०५ ॥

उद्घाटर्योदिति ॥ यथा येन प्रकारेण पुमान् क्रीचक्यां कपाटार्गळीत्सारणसाधनी-यूतया हठाद्र्वात्कपाटमरस्यद्धाटयेदुत्सारयेत् । हठादिति देहलीदीपकन्यायेनोभयत्र संचच्यते । तथा तेन प्रकारेण योगी हठाद्धटाभ्यासात्कुंडिलन्या शक्त्या मोक्षद्धार् मोक्षस्य द्वारं प्रापकं सुबुद्धामार्थे विभेदयेदिशेषेण भेदयेत् । 'तयोर्घ्वमायसम्वत्त्वमेति' इति श्रुतेः ॥ १०५ ॥

भाषार्थ -जैसे पुरुष कपार्थे (किबॉड) के अर्गल (ताला) आदिको हठ (बल) से खुँचिका (ताली) से चट्पाटन करता है, तिसीप्रकार योगीभी इटयोगके अभ्याससे खुंडिल्मी-ग्रहाकेद्वारा अर्थात मोक्षके वाता धुपुत्राके मार्गको भेदन .करता है क्योंकि श्रीतेमें टिखा है अर्क, सुपुत्रा मार्गसे ऊपर (ब्रह्मलोक) को नाताहुआ मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १०५॥

येन मार्गेण गंतव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम् ॥ मुखेनाच्छाद्य तर्द्वारं प्रमुप्ता परमेश्वरी ॥ १०६ ॥

ेनिति ॥ आमयो रोगजन्यं दुग्लं दुग्लमात्रोपलक्षणं तस्मालिर्गतं निरामयं दुग्लमात्रगरितं त्रकस्थानं त्रक्षाधिमोषजनकं स्थानं त्रक्षस्थानं त्रक्षांप्रम् । 'तस्याः जिल्लाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः' इति श्रुतेः । येन मार्गेण सुषुम्नामार्गेण ग्रंतव्यं गमताहमस्ति तद्वारं तस्य मार्गस्य द्वारं प्रवेशमार्गे सुखेनास्येनाच्छाय रुद्धा परमेश्वरी कुंडलिनी प्रमुता निद्धितास्ति ॥ १०६ ॥

भापार्थ-रोगसे उत्पन्न हुआ इःखरूप आमय जिसमें नहीं है ऐसा इह्मस्थान जिस मार्गसे जाने योग्य होता है अर्थात् जिस मार्गसे ब्रह्मस्थानको जीते हैं क्योंकि श्रुतिमें रिखा है कि ज्य सुप्रम्नाकी शिखाके मध्यमें परमात्मा स्थित है जस सुप्रम्ना मार्गके द्वारको छुखसे आच्छादन करके अर्थात् रोककर परमेश्वरी (इंडरिमी) सोती है ॥ १०६॥

कंदोर्ष्यं कुंडली ज्ञाक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम् ॥ वंधनाय च मुखनां यस्तां वेत्ति स योगवित् ॥ १०७ ॥ कंदोध्वीमिति ॥ कुंढळी इक्तिः कंदोध्वै कंदस्योपरिमागे योगिनां मोक्षाय सुरा स्हानां वंधमाय सुरा । योगिनस्तां चाळियत्वी सुक्ता मवंति । सुस्रास्तद्द्वानाङ्ग्रा-रितष्ठंतीति मावः । तां कुंडळिनीं यो वेत्ति स योगिनत् । सर्वेषां योगवंत्राणां छंड-स्याश्रयत्वादित्यर्थः ॥ १०७ ।॥

भापार्थ-कंदुके उपरभागमें सोतीहुई इंडिंग्लिनी योगीलनोंके मोक्षार्थ होती है और वह पूर्-चींका इंडिंग्लिनी मूडोंके वंधनार्थ होती है अर्थात योगीलन इंडिंग्लिकी चळाकर हुक्त होना-ते हैं और उसके अज्ञानी मुढ वंधनमें पढ़े रहते हैं उस बंडिंग्लिकी जो जो जानता है विहीं

योगका ज्ञाता है क्योंकि संपूर्ण योगके तंत्र छंडाँछेनीके अधीन हैं ॥ १०७ ॥

कुंडली कुटिलाकारा सर्पेवत्परिकीर्तिता ॥ सा जित्तिश्रालिता येन छ धुक्तो नात्र छंज्ञयः ॥ ३०८ ॥

कुंडलीति ॥: कुंडली इक्तिः सर्पवद्भुजवरकुटिल आकारः स्वरूपं यस्याः सा कुटिलाकारा परिकीतितां कथिता चोगिभिः। सा कुंडली हाक्तियेन पुंसा चालिता मूला धारादृश्ये नीता स मुक्तोऽङ्गानवंधाकिवृत्तः । अत्रास्मिन्नर्थे संशयो न संदेही नास्ती-त्यर्थः। 'तयोश्वमायनमृतस्यमेति' इति श्लोः॥ १०८॥

भाषार्थ-योगोजनोने जो मर्रके समान खुटिल है आकार जिसका ऐसी कहींहै वह छंडली शक्ति जिसने चलादी है अर्थात् मुखाधारसे उपर पहुँचादी है वह मुक्त है अर्थात् चंवनसे निवृत्त है इसमें संशय नहीं ह क्योंकि पूर्वोक्त स्तृति है कि, उस सुमुद्रासे उपरको जाताहुआ

योगी मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १०८॥

गंगायमुनयोर्मध्ये बाछरंडां तपस्विनीम् ॥ वडात्कारेण गृहीयात्तद्विष्णाः परमं पद्म् ॥ १०९ ॥

गंगायमुनयोरिति ॥ वंगायमुनयोराधाराधयसावेन तयोभावनाहंगायमुनयोरियदेन भावनाहा गंगायमुन इडापिंगळे तथोर्मध्ये सुप्रमामागे तपस्थिनी निरश्निस्थिते । वाळ-रंडा वाळरंडाश्च्याच्यां कुंडळी वळारकारेण हटेन ग्रह्मीयात् । तत्तस्या गंगायमुनयोन मध्ये ग्रहणे विष्णोहेरेच्योपकस्यारमनो वा पर्सा पदं परमपदप्रापकम् ॥ १०९ ॥

भाषार्थ-गंगा यमुना हैं आधार जिनके वा गंगा यमुनारूप जो इडा पिगळा नाडी हैं उनके मध्यमें अर्थोत प्रपुत्राके मार्गमें तपस्विनी अर्थात भोजनसहित बाळखा है उसको बळात्कार (हुउयोग) से प्रहण करें वह उस कुंडर्जिका जो बळात्कारसे ग्रहण है वहीं व्यापकरूप विश्वके परमपदका प्रापक है। १०९॥

इडा अगरती गंगा पिंगठा यद्यना नदी ॥ इडापिंगरुयोर्भन्ये वार्ल्सडा च कुंडरी ॥ ३१० ॥ जंगायसुनादिपद्धिमाह-इडेति ॥ इडा वामनिःशासा नाद्धी भगवत्येश्वयीदिसंपन्ना गंजा गंगापदवाच्या, पिंगला दक्षिणनिःश्वासा यसुना यसुनाश्चवदाच्या नदी । इडा॰ पिंगलयोमेंच्ये मध्यगता या कुण्डलो सा वालंग्डा वालंग्डाशब्दवाच्या ॥ १९० ॥

मामार्थ-अब गंगा यसुना आदि पदार्थोंका वर्णन करते हैं कि, इंडा अर्थात् वामानिःश्रास्-की नाडी भगवती गंगा कहाती हैं और पिंगळाके अर्थात दक्षिणनिःश्रासकी नाडी यसुना नदी कहाती हैं और इंडा और पिंगळा मध्यमें वर्तमान जो छंडळी है वह वाळरंडा कहातीहै ॥ ११०॥

ष्ट्रच्छे प्रशृक्ष क्षुनधीं स्नुतास्त्रद्वीघयेच ताय् ॥ निद्रा विहाय सा भाकिकव्यस्त्रितस्ति हटात् ॥ १११ ॥

श्रीकचालनमाइ-पुच्छे इति ॥ प्रुप्तां निर्द्वतां सुजैगीं वां कुंडिलनीं पुच्छे मग्रहीं त्वाद्धोधयेत्मबोधयेत्सा, शक्तिः कुंडली निद्रां विहाय हठादृध्वे तिष्ठत इत्यन्वयः । यतद्वहरूपं द्व ग्रुरुसुखादवर्गतन्वयम् ॥ १११ ॥

माषार्थ-अब शक्तिपारुनसुद्राका वर्णन करते हैं कि सीतींहुँई भुजगी (कुंडरी) के पुच्छ-को अहुण करके उस भुजगीका अवोधन करे (जगावे) तो वह उंडरी निदाको त्यागकर हरू-से असको स्थित होजाती है इसका रहस्य (ग्राप्तक्रिया) तो ग्रहमुखसे जानने योग्य है ॥१९१॥

अवस्थिता चैव फणावती सा प्रातम्ब हाथं प्रहरार्धमात्रम् ॥ प्रपूर्वं सूर्योत्परिधानयुक्तया प्रगृह्यं नित्यं परिचाळनीया ३ २ ॥

जवित्यता इति । जवित्यताबोक्क स्थिता प्रद्याधारस्थिता प्रणावती मुजंगी,सा छुंड-किनी स्त्योदाष्ट्रये स्वयोद्मुखं छुद्धा परिधाने मुक्तिस्वया परिधानमुक्त्या मञ्ज गृहीत्वा । सार्च स्त्योदसमये प्रातः स्त्योदयवेषायां नित्यमहरहः, महरस्य यामस्याधं महराधं महराद्वेमेव महराधेमात्रं मुहुर्वद्वयसात्रं परिचालनीया परित्रवालियतुं योग्यां । परिधानमुक्तिवेशिकाद्वोध्या ॥ ११२ ॥

भाषार्थे—नीचे मूळाधारमें स्थित वह फणावती छुंडांळनी सूर्येते पूरण करनेके अनंतर परि-धानमें जो द्वित्ति है उससे महण करके सायंकाळ और प्रातःकाळके समय प्रतिदिन आधे प्रहर पर्यंत चारों तर्फे चाळन करने योग्य है परिधानकी द्वित्त ग्रहमुखसे जाननी चाहिये ॥१९२॥

ऊर्चे वितस्तिमानं तु विस्तारं चतुरंग्रटम् ॥ चिदुरुं घवटं गोतं वेष्टितांबरटक्षणम् ॥ ११३ ॥

कंदरंपीडनेन शक्तिवाटनं विवशुरादी कंदस्य स्थानं स्वरूपं चाह-उद्योगिति ॥ मृहस्थानाद्वितस्तिमात्रं वितस्तिप्रमाणपृद्धेषुपरिचामिमेह्योभेट्ये । एतेन कंदस्य स्थान-युक्तम् । तथा चोक्तं गोरक्षशतके—" ऊर्व्व मेह्राद्धो नाभेः कंद्योनिः लगांडवत् । तत्र नाडचः सयुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसातिः" हति । याह्नवल्वयः—"गुदानु द्वर्ग्यगुद्धां मेट्राच्यंग्रहादधः । देहमध्यं तनोर्भव्यं मुनुजानामितारितम्॥ कंद्रस्थानं मुनुष्याणां देह
मध्यानवांग्रह्म । चतुरंगुरूविस्तारमायामं च तथाविधम् ॥ यंडाकृतिवदाकारभूषितं च
स्वमादिमिः । चतुर्प्यदां तिर्ध्यां च द्विज्ञाना द्वंद्रध्यमम् । द्विज्ञान ग्रह्मद्वर्ग्यक्ष्यं च
स्वमादिमिः । चतुर्प्यदां तिर्ध्यां च द्विज्ञाना द्वंद्रध्यमम् । द्वित । ग्रुद्रादृद्वयोग्रह्मपर्ये वस्तान्त्रवाह्यं कंद्रस्थानं मिलित्वा द्वाद्वर्गाग्रह्ममाणे वित्तारमा । विस्तारम् । चतुर्प्यद्वर्भाः
मङ्ग्रह्मिनां समादार्ग्यदुरङ्गुङ्गे चतुरंगुरुष्यमाणे विस्तारम् । 'विस्तारो 'दैष्ट्यस्याप्युप्तस्यः
गम् । चतुरंगुलं दीचे च मृदुलं द्वामणे ध्वस्तं व्यस्य ताह्यं प्रोक्त कथितम् । कंद्रस्वरूपं
वार्मा स्वत्राणे स्वस्वपित कक्षणे स्वस्यं वस्य ताह्यं प्रोक्त कथितम् । कंद्रस्वरूपं
योगिभिरति होदः ॥ ११३ ॥

मापार्थ-इंद्रके पोडनेसे शक्तिचालनदे कथनाभिलापी आचार्य प्रथम कंद्रके स्थान और स्वरूपका वर्षन करते हैं कि, मृत्यस्थानसे वितिस्तमर कार अर्थात् माभिस्थल और लिंगके मध्यमें इस वर्षनसे कंद्रक स्थान कहा सोई गोस्त्रनायने कहा है कि लिंगसे कार और नामिसे नीचे पित्रमें इस वर्षनसे कंद्रक स्थान कहा सोई गोस्त्रनायने कहा है कि लिंगसे कर और नामिसे नीचे पित्रमें के बंदेके समान कंद्रकी योनि है उसमें बहुतर सहस्र नाडी उत्पन्न हुई हैं, याइ-वर्षन्य कहा है कि गुरा हो हो के उत्पन्न कहा है कि गुरा हो है के प्राप्त के कि नाम कर कहा है कि गुरा हो हो के स्थान हुई के मध्यमें नो अंगुल कर नाम क्षित है और निवास कोरियों के और प्रार्थ के लिंग हो के अर्थान गुरा हो है और निवास कोर कोर पित्रमें के और हो से मध्यमें होता है अर्थान गुरा मिलकर वास्त के अ्गुलका मध्य कोर कर के अर्थ है के स्थान हुई। ये सब मिलकर वास्त के प्राप्त का मध्य कीर के सिंद के अर्थ है कि नाम के स्थान है कि नाम है कर वितिसाम हुआ और का के सिंद किये (क्षेट) बहारे समान है कर किसका ऐसा योगीजनीने कहा है। मानार्थ यह है कि गुरारानाने कर है कि ११३३॥

र्वात दल्लासने पादी कराभ्यां घारयेदृहस् ॥ ग्रुटफदेशसमीरे च कन्दं तत्र प्रपीडयेत् ॥ ११८ ॥

सतीति ॥ बज्ञासने कुत्ते सति क्याभ्यां हस्ताभ्यां गुरुक्ते पादमन्यी वचोहेंची महेकी तयोः सभीपे गुरुकाभ्यां किंवितुपि । 'वहमन्यो बुटिके गुरुक्ते' हस्यासः । पादी चरणी हर्व गार्ड धारचेत् गुहीयात् । चक्ताग्रह्नताभ्यां पादाभ्यां तत्र केंद्रस्थाने केंद्रं प्रपादचेत्सक्वण पीडचेत् । गुरुकाहूर्के स्त्रभ्यां पादी गृहीत्वा नामेरघोमागे केंद्रं पीडचेत्स्यर्थः ॥ ११४ ॥

भापार्थ-बज़ासन करनेके अनंतर हार्यासे ग्रन्फींके समीपके स्थानमें दोनों चरणींके। इट-तासे बारण करें अर्थात ग्रन्फोंके हुटेक ऊपके भागमें चरणींको हार्योसे ख्व पकटे और हार्योसे पकडे हुऐ पादांसे कंदके स्थानमें कंदको पीडित करें अर्थात ग्रन्फों ऊपर पादींको। हार्योसे पकडकर नाभिके अधोमागर्म कंदको पीडित करें (दांवे) ॥ ११४॥ (220)

वजासने स्थितो योगी चारुपित्वा च कुंडछीम् ॥

कुर्यादनंतरं यस्त्रां कुंडलीमाञ्ज बोधयेत् ॥ ११६ ॥

बजापन इति ॥ बजापने स्थितो योगी कुंडली चालायता शक्तिचालनम्हां क्रते-त्यर्थ: । अनंतरं शाक्तवालनानंतरं मखां मखाल्यं क्रंमकं क्रयात् । एवंरीत्या क्रंबली शक्तिमाश शींग्रं बोधयेत्पवद्धां कुर्योत् । बज्रासने शक्तिबालनस्य पूर्वं विधानेऽपि प्रनर्वज्ञासने।पपादनं शक्तिचालनानंतरं मखायां वज्ञासनमेव कर्तव्यामीते नियमाः र्थम ॥ ११५ ॥

भाषार्थ-बज्रासनमें रियत (बेटाहुआ) योगी छंडळीको चळाकर अर्थात शक्तिचालन मदाको करके उसके अनंतर अर्थात् शक्तिचालनके पीछे भस्तानामके इंभक प्राणायामको करें, इस रीतिसे कंडिंगिका शीघ्र प्रवेशिक करे यद्यपि वज्रासनमें शक्तिका चारून पहिले कह ाये हैं फिर नी पत्रासनका कथन है वह इस नियमके छिये है 'किं, शक्तिचाछनके अनंतर नम्रामें वज्रासनहीं करना, अन्य नहीं ॥ ११५ ॥

भानोराक्कंचनं कुर्योत्कुंडठीं चालपेत्ततः ॥ मृत्युवक्रगतस्यापि तस्य मृत्युभयं कुतः ॥ ३१६ ॥

मानारिति ॥ मानोनीमिदेशस्यस्य सूर्यस्याकुंचनं कुर्यात् । नामेराकुंचनेनुव तस्या-कुंचनं भगति । ततो भानोराकुंचनारकुंडलीं शाक्ति चाळचेत् । एवं यः करोति सृत्यो-र्वत्रं मुखं गतस्यापि प्राप्तस्यापि तस्य पुंसी मृत्युभयं कालभयं कुतः । न कुतोऽ-चीत्वर्धः ॥ ११६ ॥

भाषार्थ-नाभिवेशमें स्थित सूर्यका आकुंचन करे और वह सूर्यका आकुंचन नाभिके आकुं-चनसेही होता है, फिर सुर्वके आकुंचनसे कुंडली शांकिका चालन करे, जो योगी इस प्रका-रकी कियाको करता है मृत्युके मुखमें गये हुयेभी उस योगीको कालका भय किस प्रकार हो सकता है ? अयोत मृत्युका भय नहीं रहता ॥ १९६ ॥ सुहूर्तेद्रथपर्यंतं निर्भयं चाळनादसो ॥

उर्व्शाह्मच्यते किंचित्सुषुम्नायां समुद्रता ॥ ३१७ ॥

महतेद्वयमिति ॥ महतेयोर्द्वयं युग्नं घटिकाचत्रष्टयात्मकं तत्पर्यतं तदवधि निर्भयं निःशंकं चाळनादसौ शाक्तिः प्रयुक्तायां समुद्रता सवी किंचिद्ध्रीमाकृष्यते आकृष्टा मबति ॥ ११७॥

भापार्थ-दो मुहूर्त भर्यात चार घडीपर्यंत निर्मय (अवश्य) चळायमान करनेसे सुपुन्नामें प्राप्त हुई यह राक्ति (कुंडली) किंचित् (कुंछ) द्धप्तको खिंच जातीहै ॥ ११७ ॥

तेन कुंडिंटनी तस्याः सुषुम्नायां मुखं ध्रुवम् ॥ जहाति तस्यास्त्राणोऽयं सुषुम्नां त्रजाते स्वतः ॥ ११८ ॥

तेनेति ॥ तेनोधीमाकर्षणेन इंडली तस्याः प्रातिद्वायाः सुदुम्राया सुतं प्रवेशमार्ग

हुँवं निष्टितं जहाति त्यजति । तस्मान्मार्यत्यायादयं प्राणवाद्यः स्वरः स्वयमेव सुष्टुम्नां त्रजति गच्छति । सुष्टुम्नासुखारमायेव कुण्डादिन्या निर्मतत्वादिति भावः ॥ १९८ ॥

मापार्य-तिस उपको आकर्षण बरनेसे उस प्रसिद्ध सुप्रताके सुख अर्यात् प्रवेशके मार्ग^{कै} को निश्चयसे त्याग देती हैं तिस मार्गके त्यागसे प्राणवास स्तरः (स्तर्य) ही सुप्रतामें प्रविष्ट होजाताहै वर्याकिं, सुंडरिनी तो सुप्रताके सुखपस्से पहिलेही वर्श गई, अवरोपके अभाव होनेसे प्राणकी स्वयंही प्रवेश होजाता है ॥ ११८॥

तस्मारसंचालयेत्रित्यं सुखसुतामरुंघतीम् ॥ तस्याः संचालनेनेव योगी रोगैः प्रमुच्यते ॥ ११९ ॥

तस्मादिति ॥ यस्माच्छक्तिचालनेन माणः धुपुम्नां त्रज्ञति तस्मात्सुलेन धुप्ता धुल-धुप्ता तो धुलधुप्तामर्रुधतीं शक्ति नित्यं प्रतिदिनं संचालयेतसम्बक् चालयेत् । तस्याः शक्तिः संचालनेनेव संचालनमात्रेण योगी रेगैः कातश्वासनतादिगिः प्रसुच्यते प्रकर्षण मुक्ती भवति ॥ ११९ ॥

भापार्थ-निस्से शक्तिके चारुनसे प्राण छुप्रश्नामें प्राप्त होता है तिस्से छुरूसे सोई हुई सर्ह-चती (हुंडिटेनी) को नित्य भरूपिकार, च्छायमान कर वर्षीक तिस्त शक्तिके च्छायमान करनेसेही रोगी कास खास जग्र आदि रोगोंसी निष्टत होजाताहै ॥ १९९ ॥

येन संचाछित्। ज्ञाक्तिः स योगी शिद्धभाजनम् ॥

किम्त्र ब्हुनोक्तेन कालं जयति लीलया ॥ १२० ॥

वेनेति ॥ वेन योगिना ज्ञातिः छुण्डली संबालिता स योगी सिस्तीनामाणिमा^न दीनां माजनं पात्रं भवति । अत्रासित्रवर्षं वहत्तेन वहुनशंसनेन किं, न विमपीत्पर्यः L कालं सृत्युं लीलया क्रीडियानायासेनैव जयत्याभिमवतीत्यर्थः ॥ १२० ॥

मापार्य-जिस योगीने शक्ति रूलयमान वरली है वह योगी भणिमा आदि सिक्कियाँका पास होनाता है शीर इसमें शिषक वहनेसे क्या है कालकोमी छीलासे अर्थाद अनायांससे नीत केताते ॥ १२०॥

त्रहाचर्यरतस्यैन नित्पं हितमिताज्ञिनः ॥ मंडछाह्इयते शिद्धिः कुंडस्यभ्यावयोगिनः ॥ १२१ ॥

ब्रह्मचर्चेति ॥ ब्रह्मचर्चे श्रोत्रादिमिः सहोपस्थर्तयमस्तिमन् रतस्य तरपरस्य नित्यं सर्वदा दितं पथ्यं मितं चतुर्याद्यवार्णितमश्रातीति तस्य क्रण्डच्यभ्यासः द्यात्तर-चालनाभ्यासः स एव योगः सोऽस्यास्तीति स तया तस्य मंडलाचलारिहादिनात्मका-दनंतरं सिद्धः प्राणायामसिद्धिहेश्यते॥ "नावार्गक्षणमार्गवाहिपननात्माणोऽतिर्वीर्योः इतस्त्रम्मपरिपृरितासृततनुः याग्वंदिकायास्ततः । छिन्ना कालविशालबह्नियस्य भूरं-श्रनाडीगतं तक्कायं कुरुते पुनर्नवतं छित्रं धृतं स्क्रेयवत्"॥ १२१॥ भाषार्थ-श्रोज आदि इंद्रिगेंसिहित छिंगके संयममें तत्पर जो योगी है और नित्य हितकारी प्रमित अर्थात चतुर्याशसे त्यून भोजन करता है शक्तिचालनके अन्यासी उस योगीको मंडल "१ ४० दिन) के अनत्तर प्राणायामकी सिद्धिको देखते हैं सोई कहा है कि, नासिकाके दक्षिणमार्गमें बहुनेवाले पवनसे अत्यंत विद्याया और चंदिका (कंट) से पूर्व चंद्रमाने समान अपत है शरीर जिसका ऐसा प्राण जिसके अनंतर विशालकाल और आंध्रे ये वश्में हुई उस खंदिकों अन्यासशील योगीकी कायाको धुक्पीके छिद्रमें वर्तमान नाहीमें पहुँचकर और कायाका छेदन करके इस प्रकार पुनः अत्यंत नवीन करता है जैसे छेदन करनेसे ग्रक्षका स्क्रेष (बाली) नवीन होजाता है ॥ १२१ ॥

कुंडलीं चालियता तु सम्रां क्षर्योद्विशेषतः ॥ एवमस्यक्तो नित्यं यमिनो यमभीः कुतः ॥ १२२ ॥

कुंडलीमिति ॥ कुंडलीं चालियावा शक्तिचालनं कृत्वा । व्यथानंतरमेद मद्यां मस्रास्यं कुंगकं कुर्योत् । नित्यं प्रतिदिनस् । एवसुक्तप्रकारेणाभ्यसतो यमिनो चोमिनो यममीर्यमाद्रयं कुतः न कुर्वोऽपीत्यर्थः । योगिनो देहत्यागस्य स्वाधीनं त्वादिति तात्पर्यस्म ॥ १२२ ॥

भाषार्थं—मुंडळीको चल्रायमान करके उसके अनंतरही विशेषकर मखानामके हं भक्पाणा-यामको करें. इस प्रकार प्रतिदिन अभ्यास करताहुआ जो यमी (योगी) है असको यमका मय कहाँ रहताहै, क्योंकि योगीके देहका त्याग अपने अधीन होता है ॥ १२२॥

द्रारमितसङ्क्षाणां नाडीनां मरुज्ञोधने ॥ छतः प्रशारनोपायः कुंडल्यभ्यसनाहते ॥ १२३ ॥

द्वासप्ततीति ॥ द्वाभ्यामधिका सप्तातः द्वासप्ततिसंख्याकानि सहस्ताणि द्वासप्ततिः सहस्ताणि तेषां तत्संख्याकानां नाडीनां मळशोषने कर्तव्ये स्रति डुण्डस्य भ्यसनाः च्छक्तिवाळनाभ्यासाहते विना छुदः प्रश्लाळनोपायः । न छुतोऽपि । शक्तिचाळना-भ्यासेनैन सर्वासां नाडीनां मळशोषनं मक्तीस्यमिमायः ॥ १२३ ॥

माषार्थ-बहत्तर सहस्र नाडियोंकी मल्झुद्धिके करनेमें शक्तिचालनके विना प्रक्षालन (घोना) का अन्य कौन जपाय है अर्थात् कोई नहीं है, शक्तिचालनभुद्राके करनेसेही संपूर्ण नाडियोंके मलकी झुद्धि होती है ॥ १२३॥

इयं तु मध्यमा नाडी दढाभ्यासेन योगिनास् ॥ आसनप्राणसंयामग्रहाभिः सरला अनेत् ॥ १२८ ॥

इयं त्विति ॥ इयं मध्यमा नाडी सुषुम्ना योगिनां दृढाभ्यासेनासनं स्वस्तिकादि । प्राणसंयामः प्राणायामः सुद्रा महासुद्रादिका तैः सरला ऋज्वी मनेत् ॥ १२४ ॥ भाषार्थ-यह सुप्रमाहरूप मध्यमनाडी योगियोंके दृढक्ष्याससे.स्वरितक आदि आसन प्राणा-याम और महासुद्रा इनके करनेसे सरळ होंबाती है ॥ १२७॥

अभ्यासे तु विनिद्राणां मनो घृत्वा समाधिना ॥

रुद्राणी वा यदा मुद्रा भद्रां सिद्धिं प्रयच्छति ॥ १२५ ॥

अभ्यास इति ॥ समाधिनेतरवृत्तिनिरोधरूपेणैकाउपेण मनो धृत्वांतःकरणं धारणां-निष्ठं कृत्वाभ्यासे मनास्थितो यत्ने विगता निद्रा येपां ते तथा तेपास् ।, निद्रापदमाल-स्योपलक्षणम् । अनलतानामित्यर्थः । रुद्राणी शांमवी सुद्रा वा' अथवा परान्या उन्मन्यादिका मद्रां शुभां तिर्छि योगासिर्छि भयच्छति दवाति । एतेन हरयोगोपका-रको राजयोगः शक्तः ॥ १२५ ॥

भाषार्थ-अन्यदिषयोंते इतिके रोकनेते चित्तको एकाश्रताकर समाधिसे मनको धारणार्मे चित्रत करके अन्यास करनेमें जो निद्रा और सारस्पसे रहित हैं उनको ज्ञांमधी मुद्रा है। अन्य उन्मानी सादि मुद्रा ज्ञांभन योगसिद्धिको देती हैं इससे यह कहा कि, ह्रव्योग राजयोगका उपकारक है। ॥११९५॥

राजयोगं विना पृथ्वी राजयोगं विना निज्ञा ॥ राजयोगं विना सुद्रा विचित्रापि न शोभते ॥ १२६ ॥

मापार्थ-राव राजयोगके विना शासन शाहिकी निष्फळताको उपचारसे वर्णन करते हैं कि अन्यवृत्तियोंको रोककर आत्मविषयक जो धारावाहिक निविकल्प मनकी वृत्ति उसे राजयोग कहतें हैं और वह राजयोग-'हठके विना राजयोग वृया है' इस वचनमें सूचित कर आये हैं उस राजयोगके वा उसके सावनोंके विना पृज्वी (स्थिरता) शोमित नहीं होती है यहां पृज्वीर ्राब्द्रेस स्थिरता और राजयोगपद्से आसन छैना अर्थात् एजयोगके विना परमपुरुपार्थ (मोक्ष) रूप मोक्ष नहीं होसकता, यह हेतुं आगे.भी सम्पूर्ण वाक्योंमें समझना और - राजयोगके विना िन हां होती अर्थात् निज्ञाके समान कुंमकप्राण्ययाम शोभित नहीं होती होत है, क्योंक जैसे निज्ञामें राजपुरुपोंका संचार नहीं होता है इसी मकार कुंमकमें प्राण्येंका संचार नहीं होता है इसी निज्ञामें राजपुरुपोंका संचार नहीं होता है इसी निज्ञापदेस छुंमक छैते हैं और राजयोगके विना विचित्र भी प्रद्रा अर्थात् अनेक प्रकारकों वा विख्याप महाग्रद्रा आदि ग्रुद्रा शोभित नहीं होती एप्यांतरमें इस ख्रीकता यह अर्थात् है कि, राजाके संवन्ध विना तरा अप्रद्रा शोभित नहीं होती राजा (चन्द्रमा) के सम्बन्ध स्थांति राजावी शिक्षाके विना नाना उपद्रव शोभित होते हैं होर राजा (चन्द्रमा) के सम्बन्ध विना प्रहनखाँसे विचित्रभी निज्ञाकी शोभा नहीं होती है इस श्रीतसे यहाँ राजपन्दि चन्द्रमा केते हैं कि, 'सीम हम बाह्यणांका राजा है' और राजाके योगावेना ग्रुद्राकी शोभा नहीं क्ष्यांत् रेखा आदिसे विचित्रभी सुग्र राजाको हाथसे किये हुये चित्रविशेषहर राजसम्बन्ध विना प्रहण करने योग्य नहीं होती है ॥ १२६॥

मारुतस्य विधि सर्वे मनोष्ठकं समभ्यसेत्॥ इतस्त्र न कर्तव्या मनोवृत्तिर्मनीविणा॥ १२७॥

माइतस्येति ॥ माइतस्य वायोः सर्वे विधि कुंभक्षमुद्राविधानं मनोयुक्तं मनसा युक्तं समभ्यतेरसम्यगभ्यतेत् । मनीषिणा बुद्धिमता पुंसा इतरत्र मास्ठस्य विधेरन्य-स्मिन्विषये मनोबुक्तिमेनसी बुक्तिः प्रवृक्तिने कर्तव्या न कार्यो ॥ १२७ ॥

भाषार्थ-प्राणवायुकी जो इंभक्स्प्रज्ञा आदि संपूर्ण विधि है उसका मनसे युक्त होकर ' (मन ' लगाकर) भली प्रकार अभ्यास करे और प्राणवायुकी विधिसे अन्य_ जो विषय उनमें मनकी मुन्नुत्तिको न करे ॥ १२७॥

इति सुद्रा दश प्रोक्ता आदिनाथेन शंसुना ॥ एकेका तासु यमिनां महातिद्वित्रदायिनी ॥ ३२८ ॥

सुद्रा उपसंहरति-इतीति ॥ आदिनायेन सर्वेश्वरेण शंसुना शं सुखं अवत्यस्मा-दिति शंसुरतेन । इत्युक्तरीत्या दश दशसंख्याका सुद्राः प्रोक्ताः कथिताः । तासु सुद्रासु मध्ये एकैकापि प्रत्येकमपि या काचन सुद्रा यमिनां यमवतां योगिनां महा-सिद्धिप्रदायिन्याणिमादिगदात्री वा ॥ १२८ ॥

भापार्थ-अन मुद्राओंकी समाप्तिका वर्णन करते हैं कि, आदिनाय (महादेव) ने ये दश सुद्रा कहीं हैं उन मुद्राओंमें एक २ भी मुद्रा (अत्येक) अर्थाद जो कोई मुद्रा योगीननोंको अणिमा आदि महासिद्धियोंकी प्रदायिनी (देनेवाळी) है ॥ १२८ ॥

> उपदेशं हि सदाणां यो दत्ते सांप्रदायिकम् ॥ स एर श्रीपुरः स्वामी साक्षादीश्वर एव सः ॥ १२९ ॥

सुद्रोपदेष्टारं ग्रुहं प्रश्नंसति—स्पदेशमिति ॥ यः पुमान्सुद्राणां महासुद्रादीनां संग्र-दायाधोगिनां ग्रुह्परंपरारूपादायतं सांप्रदायिकसुपदेशं दृचे दहाति । स एव स पुमानं नेव श्रीगुद्धाः श्रीमान् ग्रुहः सर्वग्रुहम्याः श्रेष्ट इत्यर्थः । स्वामी त्रमुः स एव साक्षात्रन्त्यक्षः ईत्यर एव सः । ईत्यराभिन्न एव स इत्यर्थः ॥ १२९ ॥

भाषार्थ—सांप्रतायिक (योगियोंकी गुरुसरण्यासे चले काये) महासूद्रा व्यादिके उपवेजकी जो पुरुष देता है वही श्रीमान गुरु क्योद सब गुरुकोंमें श्रेष्ट हे जीर वही स्वामी क्योत क्रम

है और वहीं साक्षात् परमेश्वरस्त्ररूप है ॥ १२९ ॥

तस्य वाक्यपुरो भूत्वा छुद्राभ्याचे समाहितः ॥ अणिमाविग्रुणेः सार्थं रुभते कार्रुवंचनम् ॥ ३३०॥ इति श्रीत्वात्मारामयोगींद्रविराचितायां ह्ठप्रद्वीपिकायां सद्राविधानं नाम तृतीयोपदेशः ॥ ३॥

तस्यति ॥ तस्य मुद्राणाष्ट्रपदेष्ट्रिष्टेरोर्बोक्यपरा वाक्यमासनक्रंभकाधनुष्टानविष्यक्षं मुक्ताहारविहारचेष्टादिविष्यकं च तास्मन् परस्तत्परः तत्परब्धाद्यान् । धादस्य विहिच्त्वत्पन्तरणं भूता संभूय मुद्राणां महामुद्राहीनामभ्यासः पौनःपुन्नेनावर्तनं तास्मन् मुद्राभ्यासे समाहितः सावधानः पुरुवोऽणिमारिग्रणौरणिगादिविद्यामः साधं साकं कालस्य मृत्योविषनं प्रतारणं लमते प्राप्नोति ॥ १६०॥

इति श्रीहटपदीपिकाव्याख्यायां ब्रह्मानंदङ्जायां ज्योत्साभि-धायां सुद्राकथनं नाम तृशयोपदेशः ॥ ३ ॥

भाषार्थ-तिन मुद्राओंके उपरेशकर्ता गुरुके वाक्यों अर्थात् आसन शंभक आदिके अनुश्चन विषयकी और गुकाहार विहारकी चेश आदि विषयोंकी आशार्य तरप (आर्दान्) और शक्तिक तप करनेरूप उस आद्देक अनंतर वारंबार महामुद्रा आदिके अन्यासमें साववान होकर महाप्य आणामा आहि सिद्धियों सिहत कालके विचनको प्राप्त होता है अर्थात् असको मिद्धि और काल्से निर्भयता थे श्रेनों प्राप्त होते हैं ॥ १३० ॥

ङ्ति श्रीखात्मारामयोगींद्रविरचितायां हठयोगप्रदीपिकायां पं॰ मिहरचंद्रकृतभाषाविद्वति-

सहितायाँ मुद्राविवानं नाम तृतीयोपदेशः समाप्तः ॥ ३ ॥

व्यय चतुर्थोपदेशः ४.

नमः ज्ञिवाय ग्रावे नाइविद्युक्तलात्मने ॥ निरंजनपदं याति निरयं यत्र परायणः ॥ ३ ॥

प्रयमहितीयवृतियोषदेशोक्तानामास्त्रक्षेमक्ष्ट्राणां फ्रब्सूतेराजयोगं विवद्धाः स्वात्मा-रामः श्रेयांसि बहुविद्यानीति तत्र विद्यमहुस्यस्य संगवाचित्रवृत्तये शिवाभिन्नगुरु नमस्कारामकं मंगरमाचरति ॥ नम हेति ॥ विद्याय सुस्करपाये सराभिन्नाय सा वहुक्तम् । 'नमस्ते नाथ मगवन् शिवाय ग्रुरुक्षिणे' इति । ग्रुरवे देशिकाय यद्म ग्रुरवे सर्वतियांभितया निर्मिक्षणेष्देष्ट्रे शिवायेश्वराय । तथा च पातंजलस्त्रम्—'स पूर्वे-षामापि ग्रुरः कालेनानवच्छेत्। नमः महीमावीऽस्त । कीदशाय शिवाय ग्रुरवे नाद-विंद्धकलास्ते कांस्यवंदानिष्ठांद्वदतुरागनं नादः । विंद्धरात्त्वसारीत्वरमावी व्वनिः । कला-नादैक्देशस्ता आस्मा स्वरूपं यस्य स तथा वस्मे । नाद्विंद्धकलास्मा वर्षमानाये-त्यर्थः । तत्र नाद्विंद्धकलास्मिन शिवे ग्रुरी निर्म्य प्रतिदिनं परायणोऽविद्दितः प्रमात् । एतेन नादानुसंवानपरायण इत्युक्तं पूर्वपदिन ग्रुरुक्तियोरमेदथ स्वितः । कंजनं मायोपाधिस्तद्वाहेतं निर्देशनं ग्रुद्धं पद्यते गम्यते योगिभिरिति पद्दं त्रह्म याति प्रामोति । तथा च वक्ष्यति—'नादानुसंधानसमाधिमाजम्' इत्यादिना ॥ १ ॥

मापार्थ-प्रयम, हितीय, तृतीय उपदेशोंमें व्यहे जो आसन ग्रंभक ग्रुट्टा हैं उनका फरूकर जो राजयोग है उसके कथनका अभिकापी स्वात्माराम ग्रंथकार 'श्रेयकर्मोमें बहुत विद्य हुआ करते हैं' इस न्यायसे अनेक निविद्य होगा करते हैं कि शिक्षण ग्रंथके नमस्कारात्मक मंगरको करते हैं कि शिक्षण वर्षात ग्रंथके उपदेशके अंतर्यात्मिकरार शिक्षण श्रंथक जात्म श्रंथक अध्या सबके छ्यदेशक अंतर्यात्मकर श्रंथ श्रंथक अध्यात सके छ्यदेशक अंतर्यात्मकर श्रंथ श्रंथक अध्यात्मकर श्रंथ श्रंथक अध्यात्मकर अध्यात्मकर अध्यात्मकर अध्यात्मकर वर्षात है, कारले अवन्य सवके छुदेशक नावृत्यकर श्रंथ पहिले सब आवार्योक्षण ग्रंथ है जर ग्रंथ वा देशको नमस्कार है, जो ग्रंथ नावृत्यकर अध्यात जो नावृत्यकर अध्यात करते हैं और नावृत्यकर वर्षा के व्यव्यक्त स्वात ने वर्षात का मार्योक्षण अध्यात के अध्यात का ग्रंथक स्वात विद्य करते हैं जीर नावृत्य करा वर्षात का मार्योक्षण भारत वर्षात क्या करते मार्योक्षण श्रंपत का ग्रंपत क्या करते हैं के स्वात विद्य करते का ग्रंपत का मार्याप्रका भेव प्राचित का ग्रंपत का मार्याप्रका भेव प्रकार का मार्याप्रका भेव स्वात के स्वात वर्षात का मार्याप्रका भेव स्वात के स्वात होते हैं असको पद कहते हैं से श्रंपत का मार्याक्षण स्वत के अध्यक्त मार्या का मार्याप्रका भेव स्वात होते हैं असको पद कहते हैं से श्रंपत का नाव विद्य करता निविद्य सार्याप्रका भीव का मार्याप्रका भीव होते हैं असको पद कहते हैं से श्रंपत का नाव विद्य करता निविद्य सार्याप्रका भीव होते हैं असको पद करते हैं से श्रंपत सार्याप्रका भीव सार्याप्रका मार्याप्रका भीव है स्वात है स्वत मार्याप्रका मार्याप्रका भीव स्वत सार्याप्रका मार्याप्रका भीव है स्वत मार्याप्रका मार्याप्रका भीव सार्याप्रका महारादकी भाव होता है से अपत सार्याप्रका भीव है स्वत सार्याप्रका मार्याप्रका सार्याप्रका मार्याप्रका सार्याप्रका सार्याप्रका सार्याप्रका मार्याप्रका सार्याप्रका सार्याप्रका

अभेदानीं प्रवक्ष्यामि समाधिक्रमष्ठत्तमम् ॥ वृत्युत्रं च सुत्तोपार्थं ब्रह्मानंदृक्तरं परम् ॥ २ ॥

समाधिकमं प्रतिजानीते—अयेति ॥ अयात्ततकुं मक्ष्मद्राक्तयनानंतरमिदानीमस्मिन् भवतरे समाधिकमं प्रत्याहारादिक्षं प्रवस्यामि प्रकर्षण विविच्य वस्यामीत्यन्वयः ॥ कीट्यं तमाधिकमम् । उत्तमं श्रीआदिनाथोक्तकंपादनकोटिसमाधिप्रकारेष्ट्रस्कृष्टम् ॥ युनः कीट्यं पृत्यं कार्डं होति निवारयतीति मृत्युद्रं स्वेच्छ्या देहत्यागजनकं तत्त्वज्ञा-नोद्यमनोनाश्वासनाक्षयः सुखस्य जीवन्युक्तिस्रुक्तस्योपायम् । प्राप्तिसाधनं युनः सीहर्श परं श्रह्मानंद्करं भारव्यकर्मक्षये साति जीवग्रह्मणोरभेदे नात्यंतिकश्रह्मानंद्माप्तिरूपविदेहमुक्तिकरम् । तत्रं निरोधः समाधिना चित्तस्य ससंस्काराशेषश्रचित्रनेरिये शांतन्धोरमुद्राहस्यानिश्ची 'जीवकेवेइ विद्वान् हर्पद्योकाभ्यां विष्ठु-रते' इत्यादिश्रद्यक्तिनिवकारस्वरूपाविद्याते रूपा जीवन्युक्तिभ्वति । परममुक्तिस्तु भाष्तभोगांतिऽतःकरणग्रुणानां
प्रतिभववेनीपाधिकरूपात्यंतिकनिवृत्तावारयंतिकं स्वरूपावस्थानं प्रतिभक्तविक्तस्य ।
ब्रुत्याननिरोधसमाधिसंस्कारा मनाति कीर्यते । मनोऽद्रमतायामास्मता महति भहान्
प्रधान इति चित्तगुणानां प्रतिभक्तवः प्रतिवर्धाः स्वकारणे रूपः । नष्ठ जीवन्युक्तस्य
ब्रुत्यानिरोधसमाधिसंस्कारा मनाति कीर्यते । मनोऽद्रमतायामास्मता महति भहान्
प्रधान इति चित्तगुणानां प्रतिभक्तवः प्रतिवर्धाः स्वकारणे रूपः । नष्ठ जीवन्युक्तस्य
ब्रुत्याने त्राह्मणार्थहे महण्योऽद्वमित्यादिव्यवहारदर्शनाविक्तादिमिरीपाधिकमावजननाद्
स्वन्य द्राधस्यव स्वरूप्त्यात् । अतात्विक्तन्ययामावस्याविकारित्याप्रयोजकत्वात् । अम्रकत्त
दुम्यस्य द्रिभावस्तु तात्विक इति । द्रप्रतिवेषम्याच प्रस्पर्य स्ववंक्तरणोपाधिकोऽद्य
शक्षमाद्रस्यादिव्यवहारः स्कटिकस्य जपाक्तमुमसन्निधानोपाधिकपक्त एव न तात्विकः
जपाञ्चसार्यये सुरुद्रस्य स्वस्वस्यास्यिववद्यकारस्य सक्तवृत्तिनरोधे स्वरूपायर्ह्यितिरच्युतैव प्रसुद्रस्य ।। २ ॥

मापार्य-जन साचार्य समाधिका जो कम उसके वर्णनको प्रतिज्ञा करते हैं कि, इसके अनंतर अर्थात् आसन कुंभक्सुटा वर्णन करनेके अनंतर इटानीं (इस अवसरमें) प्रत्याहार आदिका उस समाधिके कमको प्रकर्पतासे (पृथक्) कहता हूँ जो समाधिका कम आदि-मायकी कहीहुई संपादन कोटिकाप समाधियोंके प्रकारों (भेदों) में उत्तम है और जी मृत्युका निवारणकर्ता है अर्थात् शपनी इच्छासे देहके त्यागका जनक है और जी उत्पत्ति, मनका नाठा, वासनाका क्षय इन तीनोंके होनेपर जीवन्मुतिहरूप सुखका उपाय (साधन) है और जो परमहत्तानंदका कर्ता है अर्थात् प्रारच्य कमेका क्षय होनेपर जीव ब्रह्मको अमे-दका ज्ञान होनेसे आत्यंतिक ब्रह्मानंदकी प्राप्तिरूप जो मुक्ति उसको करताहै । वहां भयम समाधिसे चित्तकों निरोध होताहै और संस्कारसहित संपूर्णहातयोंका निरोध होनेपर शांत घोर मृद अवस्थाओंकी निशत्ते होत संते इत्यादि श्रुतियोंने कहीहुई कि, 'जीवताहुआही ज्ञानी हपेशोकसे रूटजाता है, निर्विकार स्वरूपमें स्थितिरूप जीवन्सुक्ति होनातीहै और परमुमुक्ति तो यह है कि, प्राप्त हुये भोगके अन्तमें अन्तःकरणके गुणाँका प्रतिप्रसव होनेसे सीपाधिकरूपकी अत्यन्त निवृत्ति होनेपर आत्यंतिक स्वरूपमें अवस्थान प्रतिप्रसक्ते ।सिद्ध है और न्युरयान निरोध समाधि संस्कार ये सब मनमें छीन होजाते हैं और मन अस्मितामें अस्मिता महान्में महान् प्रधानमें ठीन होजातोहे इस प्रकार चित्तके गुणोंका प्रतिप्रसन सर्यात् अपने २ कारणमें छयरूप प्रतिसर्ग होता है, कदाचित कोई जांका करें कि, समाधिसे खुत्यान (उठना) के समय में ब्राह्मण: हूँ में मनुष्य हूँ इत्यादि व्यवहारके देखनेसे: चित्तः साहिसे औपाधिक मानके पेदा होनेसे अच्छसे ट्रूबके समान अपने ब्रह्मसन्द्रपसे न्युति (पतन) होनायगा-सो ठीक नहीं है क्योंकि संप्रज्ञात समाधिमें अनुभूत (ज्ञात) जो आत्मसंस्काद उसके तात्त्विकल (र्यियंथता) का निश्चय होजातोह -जीर अतात्त्विक जो अन्ययाभाव हे वह अधिकारित्वका प्रयोजक नहीं होताहै-अम्बसे जो व्यक्त दिषमाव है वह तात्त्विक है इससे द्रशतमी विषम है-मनुष्यको तो अन्तत्करणक्ष्म उपाधिसे में ब्राह्मण हूँ हत्यादि व्यवहार होताहै-जीर वह स्फटिकको जपास्क्षमकी संनिधानक्ष्म उपाधिके समानहीं हे तात्त्विक नहीं है-जपास्क्षमके हटानेपर स्कटिकको अपने स्वरूपमें स्थितिके समान अन्तरक्षणकी समूर्ण शृत्तियोके निरोध होनेपर कार्यको सम्प्रण शृत्तियोके निरोध होनेपर कार्यको समूर्ण शृत्तियोके निरोध होनेपर कार्यको सम्प्रण श्रत्तिको अन्तरा ज्वानमुक्तिको अवस्थामें मनुष्य ब्रह्मकर्पमें स्थित रहताहै-भावार्थ यह है कि, इसके अनन्तर जनम मुखके नाराक-सुखका उपाय और परम ब्रह्मानंदका जनक जो समाधिका क्रम-उसको में अब वर्णन बरताहुँ ॥ २ ॥

राजयोगः सप्राधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी ॥ अमरत्वं रुयस्तर्त्वं ऋत्याक्त्यं परं पद्म् ॥ ३ ॥ अमनस्कं तथद्वितं निराठंवं निर्राजनम् ॥ जीवन्म्रितिश्च सङ्जा तुर्यो चेरयेकवाचकाः ॥ ४ ॥

समाधिपयोगात् विशेषेणाह्-राजयोग इत्यादिना झोकह्येन ॥ स्पष्टम् ॥३ ॥ ४॥ भाषार्थ-अव समाधिक पर्यायोका वर्णन करते हिं कि, राजयोग-समाधि-उन्मनी-मनी-कमनी-क्मनी-क्ष्मती-क्ष्मत्तिक स्थार्थिक पर्यायोग्यस्परंपद्-अमनस्य अहेत-निरालंब-निरंजन-जीवन्यु-कि-सहजा तुर्या-ये सब एक समाधिकही वाचक है-इन सब भेदोंका आगे वर्णन करेंगे॥३॥४॥

सिंदे सेन्ध्वं यद्वस्ताम्यं भजित योगतः ॥ तथासमनसोरेव्यं समाधिरमिधीयते॥ ६ ॥ यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रकीयते ॥ तदा समरसत्वं च समाधिरमिधीयते ॥ ६ ॥ तत्समं च द्वयोरेव्यं जीवात्मपरमात्मनोः ॥ प्रचष्टसर्वसंकरूपः समाधिः सोऽमिधीयते ॥ ७ ॥

त्रिक्षिः समाधिमाह्-सिढळ हृति ॥ यद्दित् ॥ तत्सममिति ॥ यद्द्वया सैंध्वै विश्वदेशोद्दर्वे उवणं सिढळे जले योगतः संयोगात्साम्यं सिढळेत्सम्यं सिढळेत्सम्यं अजित यामोति तथा तद्ददारमा च मनश्यात्ममनक्षी तयोगात्ममनसेतिकयोकाकारता । आत्मित धारितं मन आत्माकारं सद्दात्मसाम्यं भजिते ताहशमात्मसनसारिकयं समाधिक्योभीको समाधिकवेते समाधि भापार्थ-जिस प्रकार सिंगुलेक्टांसं उत्पन्न हुआ ख्वाण जळके विथे संयोगसे साम्यको भनता है अर्थात जळका संयोग होनेसे जळके संग एकताको प्राप्त होजाताहै तिसी प्रकारसे जो आत्मा और मनत्री एकता है अर्थात आत्मामें धारण किया हुआ मन आत्माकार होनेसे आत्माकर स्वेग होजाताहे उसी आत्माकर साम्यक्ति प्रकार होजाताहे उसी आत्माकर होजाताहे उसी समाधि कहते हैं जब प्राण मिक्साकर सीण होजाता हैं और मनकाभीट्ट ख्य होजाताहे उस समयमें हुई जो समस्ता अर्थाभी समाधि कहते हैं और जीवारमा और प्रमाश्माक्त होजों एकताहरू प्रकार के सिमा कहते हैं और जीवारमा और प्रमाश्माक्त जिसमें उसको समाधि कहते हैं सिप्त जिसमें अर्था प्रमाधि कहते सामि का सामि कहते सामि का सामि कहते सामि कहते सामि कहता सामि कहते सामि कहते सामि कहते सामि कहते सामि कहती है कि सामि कहते सामि कहती सामि कहती है कि सामि कहती सामि कहती है कि सामि कहती सामि कहती है कि सामि कहती है कि सामि कहती सामि कहती है कि सामि कामि कि सामि कि सामि कहती है कि सामि कहती है कि सामि कि सामि कि सामि कि सामि कि सामि कि सा

राजयोगस्य माहात्स्यं को वा जानाति तत्त्वतः ॥ ज्ञानं मुक्तिः स्थितिः सिद्धिर्गुरुवाक्येन छभ्यते ॥ ८ ॥

भापार्थ—अन राजयोगकी प्रशंसाका वर्णन करतेहें कि इसके अनंतर कहे हुये राजयोगके माहारूयको यथार्थकरमें कीन जानता है अर्थात कोई भी नहीं जानता है तत्त्वसे कहनेके अयोग्य भी एकदेशरूपसे राजयोगके प्रभावको वर्णन करतेहें कि, ज्ञान अर्थात अपने आन्मस्करभा अपरोक्ष अनुभन्न बोर विदेहहाति और निर्मिक्त में अनिधारिक्द जीवप्रमान और अणिमाआदि सिद्धिये सब ग्रुक्के वाक्यसे श्राप्त हुये राजयोगके द्वारा प्राप्त होतेहें ॥ ८॥

दुर्छभो विपयत्यागो दुर्छभं तत्त्वद्श्वेनम् ॥ दुर्छभा सङ्गानस्था सङ्गरोः दारुणां विना ॥ ९ ॥

हुर्लम इति ॥ विशेषेण सिन्वंत्यववर्भित प्रमातारं रवसंगंनीति विषया ऐहिकाः दारादय आसुष्मिकाः सुपादयस्तपां त्यागो भोगेच्छाभावो हुर्लमः तत्वदर्शनमात्मा-प्रोक्षासुमवः दुर्लमं सहजावस्या त्यागो भोगेच्छाभावो हुर्लमः तत्वदर्शनमात्मा-प्रोक्षासुमवः दुर्लमं सहजावस्या त्यागो स्वितंत सर्वत्र स्वया विशेष दरम्भ् इति वश्यमाणालक्षणस्य करणां द्यां विशेति सर्वत्र संवध्यते । हुर्लमा लल्धुमज्ञक्या दुः स्वादकप्रानिययोः इति कोद्याः । गुरुक्रपया तुः सर्व सुल्यमानित भावः ॥ ९ ॥ भाषाये-अपने प्रमाता (भोक्ता) को जो अपने संगते विशेष करके वांधे उन्हें विभय वहते हें शोर वे विषय इत लोक्तं लावि खीर परलोक्तं लगत आहि होते हें जन विषयोका स्थाग हुर्लम हैं और आत्माके अपरोक्षानुभवस्यः तत्वका दर्शन हुर्लम है और सहनावस्या (तृर्तया अवस्या) हुर्लम है क्यांत ये पूर्वोक्त तीनीं सहग्रक्षी दयाक

विना दुर्छम है और ग़ुक्की दयासे तो संदुर्ण छुटम है और सङ्गुक्केस्परूप यह कहेंगे कि, 'देखने योग्य पदार्थके विनाही जिसकी दृष्टि स्थिर हो' वह सङ्गुरु होता है ॥ ९ ॥

विविषेरासनैः कुंनैर्विचित्रैः करणैरपि ॥ प्रबुद्धायां महाज्ञको शाणः ज्ञून्ये प्रछीवते ॥ २० ॥

विविधितिति ॥ विविधितन्तविधितन्तित्विद्वादिपीठिर्तिविश्रेन्निनाविधः क्रुव्यकः । विचित्रेतितं काकाक्षिगोळकन्यायेनोभयत्र तंवध्यते । विचित्रेतिकप्रकारकः स्तरीहरू-विद्धा प्रकृषेपकारकर्मकं स्तर्धा प्रकृषेपकारकते कुंडिलन्यां प्रवृद्धायां वितिद्रायां स्तर्या प्राणीवायुः सुन्ये ब्रह्मसंत्रे प्रक्षयते रूपं प्रामीति । स्यापाराभावः प्राणस्य प्रस्यः ॥१०॥

माषार्थ-अनेक प्रकारके मस्पेंद्र आदि आसन और शिष्टित्र २ शुंभक प्राणायाम और विषित्र अर्थाद अनेक प्रकारके हठसिष्टिमें कहे हुये महासुद्रा आदि इनसे जब महाज्ञाक्त (सुंडलिनी) प्रबुद्ध होजाती है अर्थाद निदाको त्याग देती है तब प्राणवायु ठूल्य (ब्रह्मसंत्र) में स्प्य होजाती है-और व्यापारके समावकोही प्राणका स्प्य कहते हैं ॥ १०॥

उत्पन्नशक्तिबोधस्य त्यत्तिनिःशेषकर्मणः ॥ योगिनः सहजादस्या स्वयमेव प्रजायते ॥ ११ ॥

उरपनिति ॥ उरपन्ने जातः इक्तिनोधः कुण्डहीनोधो यस्य तस्य त्यक्तानि परि । ह्वानि निःशेषाणि समग्राणि कर्माणि चेन तस्य चोमिनः आसनेन काचिकव्यापरि स्वक्ते माणोहियेषु व्यापारस्तिष्ठति । प्रत्याहारधारणाध्यानक्षेमज्ञातसमाधि।भेमोनिति-कव्यापारे त्यक्ते दुद्धौ व्यापारस्तिष्ठति 'असंगो हार्य ९६पः' इति श्रुतिरपरिणामी द्युद्धः पुरुषः सस्वतुणारिमका परिणामिनी दुद्धिरिति परवैराग्येण दीर्घकारुसंप्रज्ञाताः स्यासेनैव वा दुद्धिव्यापारे परित्यक्ते निर्विकारस्वरूपावस्थितम्बति सेव सहजावस्था तुर्यावस्था जीवन्द्यक्तिः स्वयमेव प्रयत्नांतरं विनैव प्रजायते प्राहुर्मवति । 'येन त्यजित्त तरयजेति निःसंगः प्रज्ञया प्रदेत्' इति च श्रुतेः ॥ ११ ॥

माधार्थ-उत्पन्न हुमा है इंडांक्नीक्टप द्राक्तिका बोध जिसको स्रोर त्याग दिये है संपूर्ण कर्म जिसने ऐसे योशीको स्वयंहां सहजारहरा होजाती है-क्योंकि व्यासन वाधनेसे देहके व्यापारका त्याग होनेपर प्राण और इंद्रियोंमें व्यापार वना रहता है और प्रत्याहार धारणा ध्यान संमज्ञातसामार्थ इनसे मानसिक व्यापारके त्याग होनेपर चुडिमें व्यापार दिकता है, क्योंक इस श्रुतिमें असंग यह पुरुष है यह बहा है इससे प्ररुप अपरिणामी और शुद्ध है और सत्त्यपुष्टित कुद्ध परिणामवाळी है और उत्तमवराग्यसे वा दीर्धकालक संम्रज्ञात समापिक अन्याससे चुडिके व्यापार कभी त्याग होनेपर निर्विकारसक्टपमें स्थिति होजाती है वही सहजानस्या, तृपांवस्या, जीवन्युक्ति अन्यप्रयक्षके विनाही होजाती है क्योंकि इस श्रुतिमें किस हो कि , निससे त्यागत है उसकोभी त्यागकर बढिसे संगराहत होजाय ॥ ११॥

सुष्टुम्नावाहिनि प्रापे झूर्य विञ्ञति मानले ॥ तद्दा सर्वाणि कर्माणि निर्मुळपति योगवित ॥ १२ ॥

सुसुम्नेति । प्राणे दायो सुदुम्नावाहिनि सध्यनाडीम्बाहिनि सति मानसेप्रन्तःहरणे द्वान्ये देशकालबरत्त्रपरिच्छेर्ग्हीने महाणि हिग्नति सति तदा तिरुमत् काले योगवित् चित्रमृत्तिगिरोधन्नः सत्तीणि समीणि समारव्यानि निर्धेटानि करोति निर्धेट्याति निर्देट-श्वान्यत् 'तरकरोति' इति णिख् ॥ १२ ॥

भाषार्थ-प्राणवायु जब हुएडामें बहुने लगता है और मन, देश, काल, बसुन्ने परिच्छेद्रसे शन्यक्र्समें प्राप्तर होजाता है उस समय प्रित्तशक्ति निरोधका ज्ञाता योगी प्रारम्बाहित संप्र-

र्णेकमाँको निर्मूछ (नष्ट) परदेता है ॥ १२ ॥

अध्याय नमस्तुभ्यं तोऽपि काष्ट्रस्वया जितः ॥ पतितं वदने यस्य जगदेतचराचरम् ॥ १३ ॥

हमाध्यस्यासेन प्रारच्यात्रेणोऽप्यांभमशानितकार्तः योगिनं नमस्करोति-नमस्तः येति ॥ न म्रियत इत्यमाः । तस्मा समाय विरंजीविने तुभ्यं योगिने नमः । लोऽ-वि दुर्शरोऽपि कालो सृत्युस्त्या योगिना जितोऽभिभूतः । इदं वाल्यं ममस्त्रतेषुः हेद्वः । स क्षः यस्य कालस्य वदने सुखे एतंत्र दश्यमानं यराष्ट्रं स्थावर्जगर्मं नगरसं-सारः पतितः सोऽपि नगद्वसनोऽपीत्यथः ॥ १३ ॥

भापार्थ-समाधिक अभ्याससे प्रारम्बक्तर्मकामी तिरस्कार हो जाता है इससे जिसनेः काल-कोभी जीत लिया है उस योगीको सब नमस्कार करते हैं कि, तिस अमरः (चिरजीवी) आपको नमस्कार है जिसने इ.खसे निवारण करने योग्यभी वह काल (प्रस्य) जीत लिय जिस कालके मुखमें यह स्थावर जंगमकर पराचर जगत पतित है ॥ १३ ॥

चित्ते सगत्वमापद्गे नायौ वर्जात सम्यमे ॥ तदामरोठी बजोठी सहजोठी प्रजायते ॥ १४ ॥

पूर्वोक्तवमरील्यादिकं समाधिलिख्वेव सिद्ध्यतीति समाधिनिक्यणानंतरं स्वाचित्रपाणानंतरं समाधिनिक्यणानंतरं समाधिनिक्यणानंतरं

भाषार्थ-पूर्वोक्त अमरोछी आदि ष्रद्रा समाधिक सिद्ध होनेपरही सिद्ध हो नाता है इससे समाधिनेद्धपण्डे अनंतर समाधिक सिद्ध होनेपर उनकीभी सिद्धिका वर्णन करते हैं, कि, नच. अंतःकरणद्धप चित्त ध्यान करने योग्य वस्तुके बाकाखति प्रवाहको आह होनाता है अर्थाव जक्काकार होजाता है और प्राणनाश्च सुकुमानें प्रविध होजाता है अर्थाद इस प्रकार वित्तकी सुमता होनेप्त जस कालमें अमरोली, बजोली, सहबोली ये पूर्वीक्त ग्रुदा भलिपकार होजाती हैं और जिसने प्राण और वित्तकी नहीं जीता उसकी सिद्ध नहीं होती है ॥ १४ ॥

> ज्ञानं कुत्तो मनसि संमयतीह तावद प्राणोऽपि जीवति मनो ज्ञियते न यावत् ॥ प्राणो मनो द्वयत्विदं विख्यं नयेछो मोक्षं स गच्छति नशे न कथंविदन्यः ॥ ३५,॥

हटाभ्यासं विना ज्ञानं मोक्षश्च न सिद्धचतीत्याह-ज्ञानविति ॥ यावत्याणो जीवति । खापेश्वन्दादिन्द्रियाणि जीवंति न तु श्रियंते । यावन्मनो न श्रियते किंत जीवत्येव । इदा-विवालाभ्यां वहनं प्राणस्य जीवनं स्वस्यविषयग्रहणमिद्रियाणां जीवनं नानाविषयाकारः वस्यत्पादनं मनसो जीवनं तत्त्रद्भावतत्त्वनमरणमत्र विवक्षित्यू । नजु स्वरूपतस्तेषां नाज्ञ-म्तावन्यनस्यंतःकरणे ज्ञानमात्मापरोक्षात्मवः क्रतः संमर्वति न । कर्तापि प्राणिद्वियाः नीवृत्तीनां ज्ञानप्रतिवंधकत्वादिति भावः । प्राणो मनः इदं इयं यो योगी विखयं नाज्ञं नयेत्स मोक्षमात्यंतिकत्वरूपावस्थानलक्षणं यच्छवि प्राप्नोति । ब्रह्मरंघ्ने निव्यापारः स्थितिः प्राणस्य रुयः । ध्येयाकारावेशात् । विषयांतरेणापारेण मनसो रुयोऽन्यः । अळीनप्राणोऽखीनमनाश्च कथांचिदुपायश्चतेनापि न सोक्षं प्राप्नोतीत्यर्थः । तद्वकं योगः बीजे-'नानाविधैविंचारेस्त न साध्यं जायते मनः । तस्मात्तस्य जयः मायः प्राणस्य जय एवं हिं इति । नानामार्गैः सुखदुःखमायं कैवल्यं परमं पदं 'सिद्धमार्गेण छम्येत नान्यया शिवमापितम्' इति चं । सिद्धमार्गी योगमार्गः । एतेन योगं विना ज्ञानं मोक्षश्च न सिद्धचवीति सिद्धम् । श्वतिस्मृतीतिहासपुराणादिषु चेदं प्रसिद्धम् । तथाहि अय 'तहर्गनाम्युपायो योग' इति तहर्शनमात्मदर्शनम् । 'अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्ना धीरो हर्षशीको जहाति हित । 'श्रद्धामक्तिच्यानयोगादवेद' इति 'यदा पंचा वांबेश्वेते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेश्वेत चामादुः परमां गतिम् ॥ तां योगः मिति मन्यंते स्थिरामिद्रियधारणाम् । अप्रमत्तस्तदा मवति' इति । 'यदात्मतत्त्वेन द्व ब्रह्मनचं दयोपमेनेह युक्तः प्रपत्न्यत् । अञं ध्रुवं सर्वतत्त्वेर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं सुच्यते सर्वेपाशैः ॥ त्रहाणे त्वा महस ओमित्यातमानै युंजीतिति विरुस्ताः स्थाप्य समझरीर हर्दीद्रियाणि मनसा सन्निवेश्य ब्रह्माह्रयेन' प्रवरेत विद्वान् स्रोताशीस सर्वाणि भयाव हानि' इति । 'ओफित्येवं घ्यायय आत्मानम्' इत्याद्याः श्रुवयः ॥ यतिधर्मप्रकृत्णे मनु:- 'सूत्रभाव्यानवेक्षेत योगेन परमातमनः । देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति वंध नात ॥' याज्ञवल्क्यस्मृतौ-'इच्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् । शर्यं त परमो

धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥ महर्षिपातंमः- अधिष्ठोमादिकान् सर्वान् विद्वाय द्विज-सत्तमः॥ योगाञ्चासरतः जांदः परं ब्रह्माधिमच्छति ॥ ब्राह्मणक्षत्त्रियावेजां स्त्रीब्रह्मणां च पावनम् । शांतये कर्पणायन्ययोगीत्रास्ति विश्वक्तये ॥' दक्षसमृतौ व्यतिरेकम्रेखनी-क्तम्-'स्वतंवेचं हि तहहा क्रमारी खीसलं यथा । अयोगी नैद जानाति जात्यंधो हि यया वटम्' इत्याचाः समृतयः ॥ यहाभारते चोजमार्गे व्यातः-'श्रापे वर्गावकृष्टस्त नारी वा धर्मकांक्षिणी । तावप्येतेन मार्गेण वच्छेतां परमां गतिसू॥ यदि वा सर्वधर्मज्ञी यदि वाष्यकृती प्रमान् । यदि वा धार्मिकः श्रेष्टो यदि वा पापकृत्तमः ॥ यदि वा प्रचयनात्रो यदि वा क्रियधारकः । नरः सेव्यं महाहार्वं जरामरणसागरम् ॥ अपि जिज्ञातमानोऽपि शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ' १ति ॥ ममवद्गीतायाम्-'युंजकेवं सदातमानं योघी नियतमानसः । झांदि निर्वाणपरमां मत्तरस्यामधिवच्छिति ॥ यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानम् ' इत्यादि च ॥ अधिस्यप्रसमे-'योगात्संजायते ज्ञानं योगो मध्येकचित्तता॥' स्केदपुराणे-'वारमजानेन गुक्तिः स्ंशत्तव योगाहते नहि । स च योगार्थिरं कालमभ्या-सादेव सिद्ध्यति ॥ कर्षपुराणे शिववाक्यम्- अतः परं प्रवस्वामि योगं परमद्धेमम् । येनात्मानं प्रपद्यंति मानुवंतनिवेश्वरम् । योगाप्तिवृहिदि क्षिप्रमशेषं पापपंजरम् ॥ प्रसन्ते जायते ज्ञानं ज्ञानानिर्वाणमञ्ज्ञति ॥' गरुडप्रराणे-'तथा यतेत मतिमान्यया स्पानिन र्षेतिः परा । योगेन रूपते ना तु न चान्येन तु केनचित् ॥ भवतापेन तप्तानां योगो हि परमीपधम् । परावरम र का धीर्यस्य निर्देदसँभवा ॥ स च चीगान्निना दग्धसमः स्तक्षेद्रासंचयः । निर्वाणं पार्यं नित्यं प्राप्नोत्येवः न संज्ञयः ॥ संप्राप्तयोगसिद्धिस्त पूर्णो यस्त्रात्मद्रशैनात् । न विधिदृत्रयते कार्ये तेनैव सक्छं कृतम् ॥ जात्मारामः सदा पूर्णः सुखमात्यंतिकं गतः । वतस्तस्यापि निवेदः परानंदमयस्य च ॥ तपता भावि-तात्मानी योगिनः संयतंद्रियाः । प्रतरंति महात्मानी योगेनेव महार्णवम् ॥' विष्णु-धर्मेषु-'यच्ह्रेयः सर्वभृतानां लीणामप्युपकारकम् । अपि कीटपर्वगानां तन्नः श्रेयः परं बद k इत्युक्तः क्षपिलः पूर्व देवैदैविपिमिस्तया । योग एव परं श्रेयस्तेपामित्युक्त बात् पुरा ॥ वासिष्टे-'दुःपहा राम संसारविषवर्गाविष्ट्यिका । योगगारुडमंत्रेण पाव-नेनोपज्ञाम्याति ॥ 'नचु तत्त्वमस्यादिवाक्यैर्प्यपरोक्षप्रमाणं सवतीति किमर्थमतिश्र-मसाध्ये योगे प्रयासः कार्यः न च वाक्यजन्यज्ञानस्यापरोक्षत्वे प्रमाणासंमव इति षाच्यम् । तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्यं ज्ञानमपरोक्षम् । व्यपरोक्षतिपयकत्वात् । चाक्षुषय-टादिफ़्त्यक्षविदित्यतुमानस्य प्रमाणत्वात् । न च विषयगतापरोक्षत्वस्य नीरूपत्वाद्वेतुत्वर्षः मिदितिते वाच्यम् । अज्ञानविषयवित्ततत्तादातम्यापन्नत्वान्यतररूपस्य तस्य सुनिरूष् लात् । यथा हि घटादी चक्षःसन्निकर्पेणांदःकरणकृत्तिदशायां तदाधिष्ठानचैतन्याज्ञाननिके सुची तचैतन्यस्यातानविषयता तद्धटस्यातानविषयचैतन्यतादारम्यापन्नत्वं चापरोक्षत्वम् है

तया तत्त्वमस्यादिवाक्येन सुद्धवेतन्याकारान्त्वकारणवृत्त्युत्त्यापने साति तदहानस्य निवृत्रे चत्वेनैव वन्त्रस्याज्ञानिश्चयस्वाचैवन्यस्यापरोक्षत्वामीवे न हेत्वसिद्धिः । न च प्रयोजकर्त ज्ञानग्रम्यत्व।परोक्षत्वं प्रत्यक्षपरोक्षाविषयकत्वेन प्रयोजकत्वात् । नीत्वन्द्रियजन्यत्वं मनस इंद्रियत्वामावेन सुखादिपरते व्यभिचारात्। अथशमिव्यक्तचैतन्यामिन्नतया भारामानतं विषयस्यापरीक्षत्वम् । व्यमिव्यक्तत्वं च निवृत्त्यावरणकत्वं परीक्षवृत्तिस्थले वावरणः निवृत्त्यभावान्नातिवयाप्तिः । सर्पोदिस्त्रमजनकदोपवचस्तु नायं सर्पः किंतु रज्जारीति बाक्येन जायमाना वृत्तिरतु नावरणं .निवर्वयवीति तत्र परोक्ष एव विषय: । वेदांतवाक्यजन्यं च ज्ञानमावरणनिवर्तवत्यादपरेशक्षमेव तनमननादेः पूर्वमृत्यनम् । ज्ञानिवर्वक्षप्रमाणासंभावनादिदोजसामान्याभावविशिष्टस्यैव वस्याज्ञानानेवर्तकत्वात । र्श्स्च ^{*} तं त्योपनिषदं पुरुषं : पुच्छामि⁷ । इति श्राविमतिपन्नप्रपनिषन्मानागरूप त्वेयोगगम्यत्वेनोपपन्नं स्यात् । वस्मात्तत्त्वमस्यादिशक्यादेशपरोक्षामिति चेन्न ू। अनुः मानस्याप्रयोजनस्वात् । न च प्रत्यक्षं प्रति निरुक्ताक्षशामान्यं प्रतीद्वियत्वेन कारणः वया तज्जन्यत्रस्येव वयोजकत्वाजित्यानित्यसाधारणप्रत्यक्षत्वे तु न किंचिरमयोजकः त्विमाति । ठन्मते तु प्रत्यक्षोवशेषे इंद्रियं कारणं तद्विशेषे च शन्दविशेष इत्येदं कार्यः कारणमाबद्धयं स्यात् । न च अनसोऽनिद्धियत्वं मनसः इंद्रियत्वे वाधकामावादिद्वियाणां मनो नाथ इति मनुष्यभिवोहिस्य मनुष्याणामयं राजेत्यादिश्विदेयेष्वेव विजिद्धत्वर्षे अवेशित । न तु तस्याप्यनिद्रियस्वं तस्त्रं च षदस्यखंडोपाधिविशेष एव । अत एव 'क्मेंद्रियं तु पाय्सादि मनोनेत्रादि धींद्रियम्' इति 'प्रत्यक्षं स्यादेंद्रियकमप्रत्यक्षमतींद्रिः यम्' इति च शक्तिप्रमाणमूतकोशेऽपीदियापमाणकज्ञानस्याप्रत्यक्षत्वं वदन् मनस ईदि यत्वज्ञापकत्वं संगच्छते । 'इंद्रियाणि दशैकं च' इति गीतावचनं मनस इंद्रियत्वे प्रमाः णम् । किंच तत्त्वमस्यादिवावयजन्यं ज्ञानं शान्दम् । शब्दजन्यत्वात् 'यजेत' इत्यान दिवाक्यजन्यज्ञानगदित्यनेनापरोक्षावेरोधिशान्दत्वसाधकेन सत्प्रातेपक्षः । न चेद्मप्रयोग जनस्। शान्दं मत्येव शन्दश्य जनकत्वेन छाघवमूळकानुकूळतकीत्। त्वन्मते तु श व्यादपि प्रत्यक्षस्वीकारेण कार्यकारणमाबद्वयक्तलपने गौरवम् । आपि चः मनननिदिध्याः सनाम्यां पूर्वमप्युत्पन्नम् । तव मते परोक्षमपि नाज्ञाननिवर्तकाभित्यज्ञाननिवृत्तिं प्रति वाधज्ञानत्वेनैव हेतृत्वामीते गौरवम् । यम त समाध्यम्यासपरिपाकेनासंमावनादिसकछ-मल्सिहतेनांतः करणेनात्माने हुए सात दर्शनमात्रादेवाज्ञाने निवृत्ते न कश्चिद्गीरवावकाञ्चाः श्रिष सर्वेषु भूतेषु गृढोत्मा न मकाशेव । दश्यते त्वस्यया बुद्धचा सहसया सहसदः र्शिभिः । यच्छेद्राङ्मनसी माज्ञ' इत्यारम्याज्ञाननिवृत्त्यर्थकेन " मृत्युमुलारममुच्यते 🏅 इत्येतेन कठाछीस्थमृत्युपदेशेन संमतोऽयमधे इति न कश्चिद्त्र विवादः इति । यदि तु मननादेः पूर्वेष्ठत्पन्नं ज्ञानं परोक्षयेवेवि नः प्रविबद्धारुकृतगोरवामिति मतमाद्रियते तद्पि

श्रदणादिभिर्मनःसंस्कोरं सिद्धेऽव्यवदितोत्तरमात्मदर्शनसंभवात्तदत्तरं वाक्यस्मरणादिकः रूपनं महद्वीरबापादकमेव । नतु न दये फेक्टेन तर्केण कृत्दनन्यज्ञानस्यापरीक्षत्वे वदामः किंतु श्रुत्यापि । तचाहि—'तं त्वीपनिपदं पुरुषं पृच्छामि' इति श्रुत्या चौपनिपद्त्वं पुरु पस्य नोपनियज्ञन्य इद्विवययत्वमात्रं प्रत्यक्षादिगम्येष्यीप नेपदत्वे व्यवदारापत्तेः । यथा हि द्वान्यक्षालेऽद्वानां क्षालानां सन्त्रीप द्वाद्यक्षणळतंस्कृतनाष्ट्राक्षणलादिव्यवहरः । यथा द्विष्ठशाहोनेकपुत्रादिव्यवदागस्तयात्रापि । नान्यत्र तथा व्यवहार इति । उप-निपन्भात्रगस्यत्वमेव प्रत्ययार्थः । तच मनोगम्यत्वेऽनुपपन्नामीते चेन्न । नहि प्रत्ययेनीप निपद्भिन्नं सर्वे कारणत्वेन ध्यावर्यवेते । ज्ञब्जापरोक्षशानिना त्वयाप्यात्मपरोक्षे मनर्जादीनां करणत्वश्यांगीकारात् । किंतु पुराणादिश्वदांतरमेव 'श्रोतव्यः श्रातवाक्येभ्यः' इति स्भरणात्सचार्थी समापि संगत डांत न किंचिदेतत । प्रशाणांतरव्याङ्गी तात्पर्यकरपर्न चात्मपरोक्षे शब्दस्य प्रमाणाये तिद्ध एव वक्तमञ्जातम् । शब्दांतरव्यावृत्तितातपर्ये ह्य श्वन्यदिसंमतत्वाक्करायितुपु चनमेव । एवं गरियते 'मनविव नुदृष्टव्यं मनसेवेदमासव्यम्' इत्यादिश्वतचे। इत्यां जस्येन प्रतिपादिता मनेयुः । यतु कैश्चिदुक्तम् । दर्भनवृत्तिं प्रति मनीभात्रस्योपादानत्ववरायत्ताः श्रुतयो न विरुध्यंत इति ६६धीव विच रत्तहम् । यतः प्रमाणाकांक्षायां प्रकृतास्ताः कथमुपादानपरा भवेष्टः । 'कामः संवत्वे विचित्रितसा' हरवादिश्रःया सारधारणयो सर्वासां बन्धीनां मनोमात्राषीडानकत्वे वोधिते आकांक्षामा देनोपादानतात्पर्यन्तत्वेन वर्णियतुं कथं शक्येरन् । पूर्वे द्वितीयवल्यां प्रणवस्य ब्रह्म-बोधकरवेनोक्तेस्तस्याप्यपरोक्षहेत्रत्ववित ज्ञांकां निवारयितं 'मनसवान्द्रष्टस्यम्' इत्या-दिलावधारणवाक्यानीत्येव वर्णायतुं शक्यानि स्युरित्यलमातवारजालेन । वस्तुतस्तु योगिनां समावी दूरविशक्तरपदार्थज्ञानं सर्वज्ञास्त्रपतिस्हं न परोक्षम् । तदानीं परोक्षसाः मध्यभावात् । नापि स्मरणम् । तेषां पूर्वविशिष्याननुभवात् । नापि सुखादिज्ञानवरसाः क्षिद्धपम् । अपितद्वांतात् नाष्यप्रमाणकं प्रभासामान्ये करणीनयमात् । नापि चक्षुः रादिजन्यम् । तेपामसिन्नर्पात् । तस्मान्मानसिनी प्रमेव सा वाच्योति मनस इन्द्रिन यतं प्रमाणत्वं च दूरमपह्नमेवेति । येऽपि योमश्रत्योः' समुचयं करुपयाति हेपामपि पूर्वेक्तिरुपणगणस्तद्वस्य एव । तस्माद्योगजन्यसंस्कारसाचिवमनापाद्रगस्य आत्मोति सिद्धम् । न च कामिनी मावयतो व्यवहितकामिनीसाक्षात्कारस्येव भावनाजन्यत्वेनाः त्मसाक्षात्कारस्याप्रमात्रप्रसंगः । अवाधिताविषयत्वात् दोषजन्यत्वाभागाच । कामिनीः साक्षात्कारस्य तु वाधिविशिषयत्वाहोपजन्यत्वाद्याप्रामाण्यं न । मावनाजन्यत्वात् । न च मादनासमाधेज्ञीपकत्वे प्रपाणांतरापातः तस्याः मनःसहकारित्वात्प्रमाणनिरूपणानिपुणै-नैयाविकादि।भरपि योगजप्रत्यक्षस्यालीकिकप्रत्यक्षेऽन्तमीवः, कृतः । योगजालीकिक-सात्रक्रेंपण योगिनो व्यवहित्तविषकुष्टस्क्मार्थमात्मानमपि यचार्थे पश्याति । तथा च

पातंजाळे सूत्रे-"ऋतंमरा तत्र प्रज्ञा शुताञ्चमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषयाविशेषार्थरवात्" तत्र समाधौ या प्रज्ञास्याः श्रुतं श्रवणं शाब्दवीधः। अनुमननमनुमानं यौक्तिकज्ञानं तद्रूपप्र-ज्ञाभ्यामन्यविषया । कुतः । विशेषार्थत्वात् । विशेषो निर्विकल्पोऽर्थो विषयो यस्याः सा तथा तस्या भावस्तयात्वं तस्माच्छव्दस्यापदार्थेतावच्छेदकपुरस्कारेणैवानुमानस्य व्यापकत्वावच्छेदकपुरकारेणैव धीजनकत्वनियमेन वद्गहणे योग्यविशेष्यमाञ्चपरताः दित्यर्थः । अत्र बाद्रायणकृतं माष्यम्-श्रवद्मागमविज्ञानं तत्तामान्यविषयं नह्मा गमेन जनयो विज्ञेषोऽभिधातुं करमान्नाः, विज्ञेषेण कृतसंकेतः शब्द इत्यारम्य समान धिमज्ञानिश्रोह्य एव सविशेषो मृतसङ्गगतो वा पुरुषगतो वेति ॥ योगवीजे-'ज्ञानानेष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञोऽपि जितेंद्रियः । विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं छमते प्रिये॥' किंच-'तदेव सक्तः सह कर्मणेति हिंगं मनो यत्र निविक्तमस्य' इति श्रुतेः। 'कारणं गुणसं॰ गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसुं इनिस्मृतेश्च देहावसानसमये यत्र रागाछुद्वुद्धो मवति वामेव योनिं जीवः प्राप्नोतीति योगहीनस्य जन्मांतरं स्यादेव मरणसमय समुद्रतवैक्ठव्यस्यायोः मिना वार्रायतुम्शनयत्वात् । तहुक्तं योगबीजे-'देहावसानसमये चित्ते यदाद्विमावयेत् । तत्त्वदेव भवेजीव इत्येवं जन्मकारणम् ॥ देहांते कि भवेजन्म तन्नः जानीत मानवाः । तस्माज्ज्ञानं च वैराग्यं जपश्च केवळं श्रमः॥ पिपीलिका चदा लग्ना देहे ज्ञानाहिमुच्यते । असी कि वृधिकेर्दशो देहांते वा कथं सुखी ॥ ' इति । योगिनां तु योगवलेनांतकाले प्यात्मभावनया मोक्ष एवेति न स्याज्जन्मांत(म् । तहुर्त्तः भंगवता-'प्रयाणकाळे मनसाः Sचडेन भत्तया युक्तो योगवडेन बैदा' इत्यादिना । 'शर्त बैका चं हदयस्य नाडचः' इत्यादिश्वतेश्च । न च तत्त्वमस्यादिवाक्यस्यापरोक्षज्ञानजनकते ताद्विचारस्य वैयथ्येमेवेति शंक्यम् । वाक्यविचारजन्यज्ञानस्य योगद्वाराऽपरोक्षज्ञानसाधनत्वात् । अत्र च योग वीजे गौरीश्वरसंत्रादो महानस्ति ततः किंग्चिह्निस्यते । देग्युवाच ॥ ज्ञानिनस्तु नृत ये वै तेषां भवति कीहज्ञी । गतिः कयय देवेश कारुण्यासृतवारिये ॥ ईश्वर उवाच । देहांते ज्ञानिना पुण्यात्पापात्फलमवाप्यते । यादशं द्व मवेत्तत्तद्मुक्तवा ज्ञानी पुन भेवेत ॥ पश्चारपुण्येन लभते सिखेन सह संगतिम् । ततः सिद्धस्य दृशया योगं मवति नान्यथा ॥ ततो नश्यति संवारा नान्यया शिवमाषितम् ॥ देव्युवाच ॥ ज्ञाना देव हि मोशं च बदंति ज्ञानिनः सदा । न कथं सिद्धयोगेन योगः कि मोक्षदो मवेत् ॥ ईंधर उदाच ॥ ज्ञानेनैव हि मोक्षो हि तेषां वाक्यं तु नान्यथा । सर्वे बदाँति खङ्केन जयो भवति तर्हि किम्।। विना युद्धेन वीर्येण कथं जयमवाप्तुयात्। तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय नो मवेत् ॥ ' इत्यादि । नतु जनकादीनां योगमंतरेणाप्यप्रतिवद्ध-हानमोक्षयोः श्रवणात्कथं योगादेवाप्राविबद्धह्यानं मोक्षय्वीते चेत् । उच्यते । तेषां पूर्वजन्मानुष्टितयोगनसंस्काराज्ज्ञानप्राप्तिरिति पुराणादी श्रूयते । तथाहि-'नैगीषन्यो यथा विमो यथा चैवासिताद्यः । हात्मिया जनकावास्तु तुलाधातद्ये। विकः ॥ संमाप्ताः परमां सिद्धि पूर्वभ्यस्तस्वयोगतः । धर्मन्याधाद्यः सप्त मृद्धाः गरिल्वकादयः ॥ मेत्रेयी सुलमा माङ्की शांकिली च तपित्वती । एवे चान्ये च तप्तवी नीचवोनिगवा अपि ॥ ज्ञानिनम्रां परां माप्ताः पूर्वभ्यस्तस्वयोगतः ॥ ' इति । किंच । पूर्वजन्मान्न छित्योगाम्यासपुण्यतारतम्येन केविष्ट्रहार्ष्व केविष्ट्रहार्ष्वत् केविष्ट्रहार्ष्वतं वयादि केविष्ट्रहार्ष्वतं प्राचिष्ठार्वे व्याप्ति वयादि अपते । यत्वाद्यात् पराच्याविष्ठ अपते । यत्र ब्राह्यण्यात् । तत्रव्यक्षां स्वतं वर्ष्वाः पर्वाः वर्षेत्वयो वितः कृपाद्यात् । तत्रव्यं क्राह्यत्वम्ययेवि तत्रो विश्वतं कर्षेत्वयो । तत्रव्यं क्राह्यते वर्षाः पर्वाः वर्षेत्वयो वितः कृपादित्वये । वर्षाः स्वतं वर्षाः स्वतं वर्षाः स्वतं वर्षाः पर्वाः वर्षेत्वयो वर्षाः । इत्यं च योगे सर्वाधिकारः अवणायोगोत्यन्तत्त्वक्रमाधिकारं । वर्षाः स्वतं स्वतं स्वतः । योगं स्वतं स्वतं स्वतं स्वतं वर्षाः । वर्षाः वर्षाः वर्षाः पर्वाः कर्षेत्वयो । वर्षाः स्वतं स्वतं स्वतं स्वतं स्वतं स्वतं स्वतं । योगं स्वतं योगं स्वतं स्वतं स्वतं स्वतं स्वतं स्वतं स्वतं स्वतं । योगं स्वतं योगं स्वतं स्

भापार्थ-अब हठाभ्यासके विना ज्ञान और मोक्ष सिद्ध नहीं होते इसका वर्णन करते हैं कि, जबतक प्राण और झंद्रेय जीवते हें और मनभी नहीं मरता है अयोव जीवता है इडा और पिगलामें माणके बहुनेको प्राणका जीवन और अपने २ विषयोंका ग्रहण करना इंग्रि-योंका जीवन ओर माना प्रकारके विषयोंको उत्पन्न करना मनका जीवन कहाताहै और तिस २ भावको प्राप्त हो जानाही यहां तिस २ का मरण विविक्षित है कुछ स्वरूपसे इनका नार् विवाहीत नहीं है-तबतक मनरूप अंतःकरणमें अपरोक्षानुभवरूप ज्ञान कैसे हो सकता है अर्थात् कदाचित्मी नहीं हो सकताहे. क्योंकि प्राण, इंदिय, मन इनकी जो ग्रांते है वे ज्ञान-की प्रतिवंधक होती हैं-और जो योगी प्राण और मन इन दोनोंका विशेषकर रूप करदेता है वह योगी आत्यंतिक स्वरूपने स्थितिरूप मोक्षको प्राप्त होताहै-और ब्रह्मस्वमें जो विना व्यापार प्राणकी स्थिति वही प्राणका छय कहाता है और ब्रह्मसे भित्र विपर्योमें व्यापाररहित होनाही मनका रूप कहाता है बौर जो अन्य है अर्थात् जिसके प्राण और मनका रूप नहीं हुसाह वह योगी सेकडों उपायोंसेमी किसी प्रकार मोक्षको प्राप्त नहीं होताहै सोई योगवीजमें कहाहै कि, नानाप्रकारके विचारोंसे तो मन साध्य नहीं होताहै तिससे तिस मनका जयहीं प्राणका जय है अनेक प्रकारके मागासे बहुवा जिसमें सुख दुःख हैं वह जन्म होताहै और योगमार्गसे कैवल्य (मोक्ष) रूप परमपद मिळताँहै अन्यया नहीं मिळताँहै यह शिवजीका क्यन है इससे यह सिद्ध भया कि: योगके विना ज्ञान और मोक्ष सिद्ध नहीं होते हैं और श्रुति, स्मृति, इतिहास, प्रराण आदिकाँमें भी यही प्रसिद्ध है कि इसके अनंतर आत्मदर्श-नका उपाय योग है भीर अध्यातमयोगकी प्राप्तिसे देवको मानकर धीरमनुष्य हर्ष और शोकको त्यागताहै ओर श्रद्धा भक्ति च्यान योगसे व्यात्माको जानता भया और जब मनसहित पांची ज्ञान इंदिय विषयोंसे रहित टिकती हैं और बुद्धि भी चेष्टा न करती हो उसको परमगति योगीजन कहते हैं और उस स्थिर इंद्रियोंकी चोरणाकोही योग मानते हैं और उस समय योगी स्प्रमत्त होजाताहे और जीव दयावाच् आत्मतत्त्व (आत्मज्ञान) से योगी ब्रह्मतत्त्वको देखता है तन अन और नित्य जो संपूर्ण तत्त्वोंसे विशुद्ध देव हैं उसको जानकर संपूर्णबंधनोंसे हृटता है ब्रह्मरूप तेज तुझ आस्माकी ओंकाररूपसे उपासना करे-और तिन उन्नत (सीधे) और सम शरीरको स्थापन वरके और मनसिहत इंद्रियोंको इद्यम प्राविष्ट करके ब्रह्मनामसे भयके दाता संपूर्ण क्रोतोंको विद्वाद योगी तरे-ओंकारकपसे आत्माका ध्यान करो-ओर यतिषर्म प्रकरणमें मतुने ढिखाँहै कि, परमात्माके योगसे मूत और भागी पदार्थीको देखे तो स्थूल सूरमहत्प दोनों देहोंको शीघ त्यागकर बंधनसे छुट जाताहै-याज्ञवस्यरमृतिमें लिखाहै कि, यज्ञ, आचार, इंद्रियोंका दनन, अहिंसा, दान, स्त्राध्याय, कर्म-इनका यही परमधर्भ है कि, योगसे आत्माको देखना-मातंगमहाँपका वाक्य है ब्राह्मण अग्निप्टोम आदि संपूर्ण यज्ञाको छोडकर योगाभ्यासमें तत्पर हुआ ज्ञांत होकर परब्रह्मको प्राप्त होताहै। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, धी भीर रूद इनके लिये पवित्रकर्मीकी सौति और मुक्तिके अर्थ योगसे अन्य कोई विद्य नहीं है-दक्षरगृतिमें निपेषम्रखसे कहाहै कि, स्वसंबेध (स्वयं जानाजाय) जो वह मूझ वसको योगीसे भिन्न इस प्रकार नहीं जानते हैं जैसे कुमार्थ (बत्या) श्रीके छूखको आर नन्मांघ वर्टको नहीं जानताहै-इत्यादि स्मृतियोंमें और महाभारतमें भी योगमार्गमें व्यासने कहाहै कि, वर्गावकृष्ट (पतित) वा धर्मकाक्षिणी नारी हो वे दोनों भी इस मार्गसे परमग-तिको पात होते हैं संपूर्णधर्मीका ज्ञाता हो वा अकृती (पुण्यहीन) हो धार्मिक हो वा अत्यंत पापी हो पुरुष हो वा नपुंसक हो ऐसा मनुष्यभी जरामरणसमुद्रके महाहु खके सेवनके जान नेका अभिकाषी शब्दब्रह्मका अवकंवन करताहै भगवद्गीतामें भी ्छिला है कि, वशिक्षत है मन जिसके ऐसा मनुष्य सदा इस प्रकार आत्मयोगको करता हुआ मेरेमें स्थितिरूप और मोक्ष है परम जिसमें ऐसे शान्तिरूप स्थानको प्राप्त होताहै जो स्थान सांख्योंको प्राप्त होताहै • ख्सीमें योगीमी जाते हैं-आदित्यपुरणमें छिखाहै, कि योगसे ज्ञानहोताहे और मेरेमें एक रस चित्त रखनेको योग कहते हैं । स्कंदपुरणमें छिखा है कि, आस्मज्ञानसे प्रक्ति होती है वह आत्मज्ञान योगके निना नहीं हो सकता और यह योग चिरकालके अभ्याससेही सिद्ध होताहै, कूर्मपुराणमें दिवजीका वाक्य है कि, इससे आगे परमर्ड्छेम योगको कहताहूँ जिससे सूर्यके समान ईश्वर आत्माको योगी देखते हैं योगरूप अग्नि रिग्नही संपूर्ण पापके पंजरको दग्ध करती है जीर प्रसन्न ज्ञान होताहै और ज्ञानसे मोक्ष होजाताहै—गरुहपुराणमें कहा है कि, बुद्धिमान मनुष्य तिसप्रकार यहकरे जैसे परमहाकहो और वह सुख योगसे मिलताहे अन्य किसीसे नहीं-संसारक तार्पांसे तपायमान मनुष्योंके हिये योग परम औपध है निसकी निवेद (वैराग्य) से उत्पन्न हुई बुद्धि परअवरमें प्रसक्त है योगरूप अग्रिसे दृग्धहुये हैं समस्त छैन्न-संचय निर्मके ऐसा वह परमनिर्वाणपदको सदैव प्राप्त होताहै इसमें संचय नहीं है न्याप्त इंहरी है योगसिक्षि निसको उसको और आरमकि दुर्गनसे पूर्ण जो है उसको रुख्मी कर्तव्य नहीं देखते उसने सब कर लिया-आरमाराम और सदा पूर्णरूप और आरमारिक झुक्मी प्राप्त है इससे परमानंदरूप उसको निर्देद (सुख) हो जाताहे-तापसे जानाहै आरमा जिन्होंने और

वशमें हैं हिन्द्रयें निनके ऐसे महात्मा योगीजन योगसेही महासमुद्र (जगत्) की तर जातेहें - और विष्णुधर्मों में लिखाँहे कि, जो सब मूर्तोंका श्रेय हैं और हियोंका और कीट पतंगोंका भी उपकार है उस परमश्रेयको हमारे प्रति कहो इस प्रकार देव और देवपियाने क्हाँहै जिनको ऐसे कांपेछमुनि पहिछे समयमें योगकोही श्रेय कहते भये-वासिष्टमें हिखा है कि, हे राम ! संसारके विषका जो वेग उसकी निपुद्धिका दुःसह है वह योगरूप ओर पवित्र गारुडमंत्रसेही शांत होती है कदाचित कोई शंका करे कि तत्त्वमास आदि महादवयोंसे भी भपरोक्ष प्रमाण (ज्ञान) होताह तो किसाटिये अत्यंतश्रमसे साध्ययोगमें प्रयास करते हो कदाचित् कहो कि वाक्यसे जन्य ज्ञानके अपरोक्ष होनेमें प्रमाणका असंभव है सो नहीं क्योंकि, तत्त्वमासि आदि वाक्योंसे उत्पन्न हुआ ज्ञान अपरोक्ष है-अपरोक्ष विषयक होनेसे चहारी हुये घट आदिके प्रत्यक्षकी तुल्य यह अतुमान प्रमाण है । कदाचित कही कि, विप-यकी अपरोक्षताके नोद्धप (रूपहोन) होनेसे हेनुकी शासिद्धि है सो ठीक नहीं. क्योंकि लज्ञानका विषय चित्त, और चित्तके संग तादात्म्यरूपको प्राप्तव, ये दोनाहिं रूप जिसके ऐसी जो विषयकी अपरोक्षता वह मरीपकार निरूपण करने योग्य है जैसे घट आदिमें जब चक्षकी संनिक्यं दशामं उसके अधिष्ठानद्धप देतन्यकी अज्ञानानशतिके होनेपर उसका चैतन्य बद्धानका विषय होना, और उस घटका अज्ञान विषय चेतन्यके संग तादारम्यकी प्राप्ति होना ये दोनों अपरोक्ष हैं-तिसीप्रकार तत्त्वमसि आदि वाक्योंसे शुद्ध चेतन्याकार शतिके होनेपर ष्टसके अज्ञानकी निश्चति होनेसेही तस्य अज्ञानका विषय नहीं रहा इससे चेतन्य अपरोक्ष है इससे हेनुकी असिद्धि नहीं है-कदाचित कही कि, हेतु अमयोजक है अर्यात् अपने साध्यको सिद्ध नहीं करसकता, अपरोक्षता ज्ञानसे होती है इससे 'प्रत्यक्ष जो परोक्ष उसका विपयक होनेसे हेतु प्रयोजक है छुछ इंद्रियजन्यही अपरोक्ष नहीं होता, वयाँकि यन इंद्रिय नहीं है **उ**सकोभी हुल आदिकी विपयकता होनेसे व्यभिचार होनायगा अथवा अभिन्यक्त (प्रकट) चैतन्यके अभित्रहरूपते जो भासमान होना वही विषयकी अपरोक्षताहे और आवरणकी निद्व-ति होनेकोभी अभिव्यक्त कहतेहें -और परीक्ष दृत्तिक स्थलमें आवरण निदृत्तिका अमाव है इससे वहां अतित्याप्तिरूप दोप नहीं है-जो मनुष्य रज्जु शादिमें सर्प आदि अमके उत्पादक दोपवाला है उसको जो यह सर्प नहीं किंतु रन्जु है इस वाक्यसे उत्पन हुई जो हाते वह भावरणको निष्टत नहीं करती है इससे वहां परोक्षही विषय है और वेदांतके वाक्योंसे जो ज्ञान उत्पन्न होताहै :आवरणका निवर्तक होनेसे वह अपरेक्षिही हे क्योंकि वह मनन भादिसे पूर्व उत्पन्न हुआ है और ज्ञाननिवर्तक प्रमाणकी क्षसंभावना आदि संपूर्ण दोपॉके अभाव विशिष्टही उस वेद्रांतवाक्योंसे जन्यज्ञानको सञ्चानकी निवर्तकता है और उस उप-निपदाँसे प्रतिपादन किये पुरुषको पूछताहूँ इस श्रुतिसे प्रतिपन्न (सिद्ध) उपनिपद मात्रसे जो जाना जाताहै वह योगसेही जानाजायगा तिससे तत्त्वमीस. आदि वाक्यसेही अपरोक्षज्ञान होताहै सो ठीक नहीं है, क्योंकि अनुमान अपयोजक है, क्योंकि प्रत्यक्षके प्रति और पूर्वोक्त अक्ष (इन्द्रिय) सामान्यके पति । इंद्रियरूपसे कारणता है इससे इंद्रियसे जन्य-नहीं प्रयोजक है और नित्य आनित्य साधारण प्रत्यक्षमें तो छुछ प्रयोजक नहीं होताहै और जनके मतमें तो किसी प्रत्यक्षमें इंद्रिय कारण है और किसी प्रत्यक्षमें शुब्दविशेष कारण है.

इस प्रकार दो कार्य कारणभाव होजायँगे अर्थात एक कार्यके दो कारण मानने पहेंगे-कदाचित् कहो कि मन इंद्रिय नहीं है सो भी नहीं क्योंकि, मन इंद्रियोंका नाय है यह वचन मनुष्यके समान उदेश करके मनुष्योंका यह राजा है इसके समान मनुष्योंमें हैं। कुछ उत्कर्षको कहताहै क्छ मनको इंद्रियमित्र नहीं कहताहै और तत्त्व तो यह है कि, मन इंद्रियोंमें एक अलंडो-पाधिक पही है इसीसे पायु (गुदा) आदि कर्मेद्रिय और मन नेत्र आदि ज्ञानिद्रिय है और नो प्रत्यक्ष हो वह ऐंद्रियक और जो अप्रत्यक्ष हो वह अतींद्रिय कहाताहै इन शक्तिके निर्णा-यक कोशोंमें इंद्रियाप्रमाणक ज्ञानको अअत्यक्ष कहते हुये मनको इंद्रिय होना प्रतीत कराते हैं और दश और एक इंद्रिय है यह गीता वचनभी मनके इंद्रिय होनेमें प्रमाण है और तस्व-मासे आदि वाक्योंसे पेदा हुआ ज्ञान-शब्दसे उत्पन्न हैं, शब्दसे उत्पन्न होनेसे, यज्ञ करे इत्यादि वाक्योंसे उत्पन्न ज्ञानके समान-इस अप्रत्यक्ष विरोधि शब्दजन्यके साधक अनुमानसे सत्प्रतिपक्षमी है विरोधि पदार्थके साधक हेतुको सत्प्रतिपक्ष कहते हैं-कदाचित कहो कि, यह अनुमान अपयोजक है सोभी नहीं क्योंकि शब्दजन्य ज्ञानकाही शब्द जनक होताहै यह छापवमूलक अनुबूल तर्क इस अनुमानमें है तेरे मतमें तो शब्दसेभी अत्यक्षके स्वीकार कर-नेसे दो कार्य कारण भाव होजायँगे इससे गौस्व है-स्रीर मनन, निदिध्यासनसे पहिले भी **उत्पन्न है और तेरे मतोंम परोक्षामी उक्तज्ञान अज्ञानका निवर्तक नहीं होगा इससे अज्ञाननिव्य** जिन हु जार जर पासन परवाना परवान पहेगा यह भी गौरव है, मेरे मतमें तो समापिका जो अन्यास हसके परिपाकसे असंभावना आदि संपूर्ण मळोंसे रहित अर्थात् अंतःअरणसे आत्माके देखनेपर और दर्शनमात्रसेही अज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है इससे कोईभी गौरवका अवकारा नहीं है-और संपूर्ण भूतोंमें यह ग्रुप्त आत्मा प्रकाशित नहीं होता है, परन्तु सूक्ष्मदर्शी मनुष्य इस आत्माको सूक्ष्म और मुख्य जो शुद्धि उससे देखते हैं-धीर मनुष्य वाणी और मनको रोकै इन वचनोंसे लेकर अज्ञानकी निश्चति है अर्थ जिसका ऐसे इस कठवळीके मृत्युके मुखसे हुयताहै मृत्युके उपदेशकोभी यह बात संमत है इससे इसमें कोई विवाद नहीं है-और यादि मनन आदिसे पूर्व उत्पन्न हुआ ज्ञान परोक्षही है इससे प्रतिबंधका किया गीरव नहीं है इस मतको मानोगे तो तव भी श्रवण आदिसे मनका संस्कार सिद्ध होनेपर उसके अनंतर कारुहीमें आत्माका दर्शन संभव है इससे उसके अनन्तर वाक्योंके रमरण आदिको कल्पना करनेमें भी महाल गीरव है-कदाचित शंका करो कि हम केवछ तर्कसे शब्दजन्य ज्ञानको अपरोक्ष नहीं करते हैं कित श्रुति भी कहती है सोई दिखातेहैं कि, उस उपनिषदोंसे कहे हुये प्रस्का में पूछता हूँ इस श्रुतिसे जो प्ररूपको औपनिषद्रूप कहाहै वह कुछ उपनिषद्ति **उ**त्पन्न जो बुद्धि उसकी विपयमात्र नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष आदिसे जानने योग्यमें औपनिपद यह व्यवहार होनायगा नैसे वारह कपालीमें आठ कपालीके होनेपरभी हाद्दा कपालीमें संस्कार किये पदार्थमें आठ कपालीमें संस्कृत यह व्यवहार नहीं होताहै और नैसे हिपुन मतुष्यमें एक पुत्र व्यवहार नहीं होताहै तैसेही यहां भी समझना और अन्यत्र तैसा व्यवहार नहीं होताहै इससे उपनिषद्मात्रसे जानने योग्यही यहां प्रत्ययका अर्थ है और मनसे जानने बोग्य आत्माको मानोगे तो वह सिद्ध नहीं होगा यह शंका मी ठींक नहीं है, क्यों कि त्रत्ययसे, उपनिपदसे भिन्न जो सब कारण हैं उनकी निद्यत्ति (निषेध) नहीं होती है, क्योंकि

शब्दके अपरोक्षवादी अपने भी सात्माके परोक्षज्ञनमें मन आदि करण माने हें किन्त प्रत्ययसे पुराण भादि जो अन्य शुन्द हैं उनकीही न्याशृति होती है, क्योंकि श्रुतिके शक्योंसे आत्मा सनने योग्य हे यह कहा है और वह अर्प मुझे भी संमत है इससे आपका कथन तुन्छ है और प्रमाणांतरकी व्याद्यतिमं श्रुतिकं नात्पर्यकी वत्यना तभी कहनी योग्य हे नव ज्ञन्दरूप प्रमाण सिद्ध होजाय और पुराण आदि शब्दांतरकी व्याश्चिम तात्पर्य तो श्रुति आदिका संमत होनेसे करपना करनेको टबितही है ऐसा सिद्ध होनेपर यह आत्मा मनसेही देखने योग्य है इत्यादि श्रुतिभी अनायाससे लगसकती है जो किसीने यह कहा है कि, दर्शनप्रतिके प्रति जो मनमात्रकोही उपादान कहती हैं उन श्रुतियाँके संग कुछ निरोध नहीं है । यह उनका कहना तो अत्येतही विचारमें नहीं आसकता क्योंकि, प्राणकी आकाक्षामें प्रवृत्त हुई थे श्राति उपादानमं तत्पर केसे होसकती हैं क्योंकि काम, संकल्प, विचिकित्सा (संदेह) ये सद मनहीसे हें इत्यादि श्रुतिसे निश्चयपूर्वक सब द्यतियोंका मनकोही उपादान कारण बोधन करादिया तब आकांक्षाके नाभावसे उपादानमं तात्पर्यकी श्रीत केसे वर्णन करसकती है। पहिले दूसरी चट्टीमें बींकारको ब्रह्मबोधक कहा है इससे ओंकारभी अपरोक्षज्ञानका हेर्रे होजायगा, इस ज्ञाकि निवारण करनेके लिये मनसे ही आत्मा देखने योग्य है, इत्यादि निश्चायक बचन हुँ इस रीतिसे संपूर्ण श्चात वर्णन करने (रूपने) को शुक्य हैं इस प्रकार बाङ्जालसे अलं है अर्थात् वाणीके जालको समाप्त करते हैं सिद्धांत तो यह है कि, योगियोंको समाधिकेलिये दूर और विषक्षक्रपदार्थीका जो ज्ञानहि संपूर्ण शास्त्रीमं प्रसिद्ध यह ज्ञान परोक्ष महीं है, क्योंकि उसे समय कोई परोक्षकी सामग्री नहीं है और स्मरण भी नहीं है क्योंकि उनका पहिले पृथळ २ अनुभव नहीं है और सुखशादिके ज्ञान समान वह साक्षित्रकपमी नहीं है क्योंकि इसमें सिद्धांतका विचात है और प्रमाणरहितमी नहीं है क्योंकि संपूर्ण प्रमाणोंमें कारणका नियम है और चन्नुआदिस उत्पन्न भी वह ज्ञान नहीं है क्यों कि चन्नुआदिका उस समय सनिकप नहीं है तिससे वह मानासिक प्रमाही कहनी चाहिये इससे मन प्रमाणकप और इंद्रिय है यह निवेंगेह-जीर भी जो योग और श्रुतिके सम्बयकी करणना करते हैं उनके भी मतम पूर्वोक्त टूपणांका गण तद्वस्थही हे तिससे यह सिद्धमया कि, योगजन्य संस्कारि सहा-यक जिसका ऐसे मनसेही शाल्मा जानने योन्यह कदाचित कोई कहै कि, कामिनीकी भावना करनेवाले पुरुपको जैसे व्यवहित (ट्रास्थित) कामिनीका साक्षात्कार अप्रमा होताहै इसीन प्रकार भावनासे उत्क्र लात्मसाञ्चात्कारभी सप्रमा होजायगा सोमी ठीक नहीं क्योंकि आत्म-साक्षात्कारका दिपय (आत्मा) बाधित नहीं है और न दोपसे जन्य है कामिनीका साक्षा-त्कार तो बाधित विषयक है जीर दीपजन्यभी है इससे अप्रमाणहै तिससे भावनासे जन्य आत्मसाक्षात्कार अप्रमाण नहीं है कड़ाचित कहो कि, भावनाको समाधिका ज्ञापक मानोगे तो यह भी एक प्रमाण होजायमा सो ठीक नहीं क्योंकि, मावना मनकी सहकारिणी है इससे प्रमाणके निरूपणमें अनिपुण नेयायिकं आदिकोंने भी योगजप्रत्यक्षका अलैलिक प्रत्यक्षमें अन्तर्भाव किया है सीर योगसे उत्पन्न हुये अलैकिक संनिक्षेसे योगीजन व्यवहित विम्रह्मष्ट जीर सूरूप पदार्थरूप भी आत्माको ययार्थरोतिसे देखते हैं सोई इस पातंजबसूत्रमें कहाहै कि, इक्त समाधिमें जो सत्यप्रज्ञा (झुटी) है इसके शाब्दबोध और अनुमानसे अर्थाद सुक्ति (१४१)

सिद्धजान है उनसे वह प्रज्ञा अन्यविषयक हो जाती है अर्थात् भिन्न अर्थकोभी विषय करहेती है क्योंकि उसका विषय निर्विकल्प अर्थ है नितससे इान्द्र पदार्थ छत्तिधर्म (घटल आदि) पुरस्कारके विनाही और अनुमानव्यापकमें वर्तमान धर्मके पुरस्कार (ज्ञान) सेही वोधके जनक नियमसे है इससे अर्थके ग्रहणमें योग्य विशेष्यमेंही तत्पर है अर्थात योगविषयकोही ग्रहण करतेहैं-यहां व्यासनीका रचा यह भाष्यहै कि. श्रतनाम आगमाविज्ञान है-यह आगमविज्ञान सामान्य विषय है क्योंकि आगम विशेषको नहीं कहसकताः क्योंकि विशेषकापे शब्दका संकेत नहीं होताहै-इससे आरम्भ करके समाधि प्रज्ञासे भर्छाप्रकार ग्रहण करने योग्य वह विशेष है और वह पुरुपगत है वा भूतसूक्ष्मगत है-योगवीजमें कहाहै. कि, ज्ञाननिष्ठहो वा विरक्तहो धर्मज्ञहो वा जितंद्रियहो योगके विना देव भी हे प्रिये ! मोक्षको प्राप्त नहीं होता है भीर यह श्रुति भी है कि, कर्मके संग उसीवातके करनेमें यह मतुष्य असक्त है जिसमें इसका मनद्भप लिंग प्रविष्ट है और स्मृति भी है कि सत् असत योनियोंके जन्मोमें इसको गुणांका संगही कारण है-देहके मरणसमयमें जिसविषयमें राग आदिसे उड्वद होताहै उसी योनिको जीव प्राप्त होताहै इससे योगहीनका अन्य जन्म होताही है, क्योंकि मरणके समयमें हुई जी विक्षवता उसको अयोगी नहीं हटा सकता है सोई योगबीजमें कहाहै कि, देहके अन्तसमयमें जिस २ को विचारता है वहीं वह जीव होजाता है यही जन्मका कारण है देहके अन्तमें कीन जन्म होगा यह मनुष्य नहीं जानते हैं-तिससे ज्ञान, वैराग्य, जप ये केवल श्रम है जब पिपी-िक्ता (चंटी) देहमें छग जाती है और ज्ञानसे छूटजाती है तो दृश्विकोंसे इसा हुआ यह जीव देहके अन्तम केसे सुकी हो सकताहै-योगियोंको तो योगके बढ़से अन्तकाढ़मेंभी आप्म-विचारसे मोहाही होताहै जन्मांतर नहीं होताहै, सोई मगवायने कहाहै कि मरण समयमें अचळ मनसे मिक्तसे युक्त वा योगके वरुसे मोहा होताहै और यह श्रुतिभी है कि एकसी एक इदयकी नाडी हैं कदाचित कहो कि, तत्त्वमासे आदि वाक्यको अपरोक्षज्ञानका जनक मानोगे तो उसका विचार करना व्यर्थ है,-सो ठीक नहीं क्योंकि वाक्यके विचारसे उत्पन्न जो ज्ञान है वह योगके द्वारा अपरोक्ष साधन है इसविषयमें योगनीनमें गोरी और महादेवका बहुत संवाद है उसमेंसे इंछ यहां किसते हैं कि पानती नोली जो ज्ञानी मरते हैं उनकी कैसी गीत होती हैं-हें देनेश ! हे द्यारूप अमृतके समुद्र ! इसको कहो, ईश्वर बोले कि, देहके अंतमें ज्ञानीको पुण्य पापसे जो फळ प्राप्त होता है उसको मोगकर फिर ज्ञानी होजाताहै फिर पुण्यस सिद्धोंके संग संगतिको प्राप्त होता है फिर सिद्धोंकी क्रपासे योगी होताहै अन्यया नहीं होता, फिर संसार नष्ट होजाता है अन्यया नहीं । यह शिवका कथनहें, पावती बोली ज्ञानी सदा ज्ञानसेही मोक्षको कहते हैं तो सिड्योगसे योग मोक्षका दाता कसे होजाता है? ईश्वर बोले ज्ञानसे मोक्ष होताहै यह उनका वचन अन्यया नहीं है-जैसे सब कहते हैं कि, खद्गसे जय होता हैं तो युद्ध और वीर्यके विना जयकी प्राप्ति कैसे होगी-तेसेही योगरहित ज्ञानसे मोक्ष नहीं होताह इत्यादि-कदानित कोई शंका करें कि, जनक आदिकां योगके विनाही प्रतिवंत्र रहित ज्ञान और मोक्ष सुने जाते हैं तो केसे योगसिही प्रतिबंधरहित ज्ञान और मोक्ष होंगे-इस शंकाका उत्तर देते हैं कि, उनको पूर्वजनममें किस्र योगसि उत्पन्न जो संस्कार उससे ज्ञानकी प्राप्ति प्रराण आदिमें सुनी नाती हैं सोई दिखातेहैं कि जैसे जिगीपन्य

ब्राह्मण और असित आदि ब्राह्मणं धीर जनक व्यदि क्षत्रिय और तुलाघार आदि वेश्य ये पूर्व-जन्ममें किये अभ्यासके योगसे परमासिदिको प्राप्त हुये और धर्मव्याघ आदि सात हाह पैछ-वक्सादि-ओर मेनेयी मुख्या शाहीं शाहिकी ये तैंपरिवनी-ये और सन्य बहुतसे नीच्ये-निमें गतभी पूर्वजन्ममें किये अभ्यासके योगसे परमज्ञान निष्टाको प्राप्त हये-और पूर्वजनमूर्य किये योगके प्रण्यके अनुसार कोई ब्रह्मा कोई ब्रह्माके पुत्र कोई देवाँपे कोई ब्रह्मांप कोई मिन कोई भक्तकपको प्राप्त हुये हैं-और उपदेशके विनाही आत्मसाक्षात्कारवाले हो जायँगे सोर्ट दिखातेहें कि हिरण्यगर्भ, वासेष्ठ, नारव, सनव्युमार, वामदेव, शुक आदि ये प्रराण आहिये जन्मसेही सिद्ध सुनेहें और जी पुराण आदिमें यह सुनाह कि, ब्राह्मणही मीक्षका अधिकारी है-वह योगीसे भिन्नके विषयम सनझना सोई गरुउपुराणमें कहाहि कि, जन्मातरमें किया योगाभ्यात जिन मतुष्योंको नहीं है उनको योगप्राप्तिके छिपे हाद बेश्य आदिका कम है है झींसे राद्र होते हैं और राद्रसे देश्य होतेहें और द्यासे रहित क्षत्रिय होनाते हैं फिर अन्यान (विद्यायाच)-यज्ञका कर्ता-फिर कर्मसंन्यासी होते हैं फिर ज्ञानी योगी होकर क्रमसे छातिको प्राप्त होजाते हैं अर्थात् शृद देश्य आदि कमसे योगी होकर मुक्तिको प्राप्त होजातेहैं इस प्रकार सब जातियाँका अधिकार हुननेसे योगसे उत्पन्न तत्त्वज्ञानके द्वारा सब मक्त होते हैं यह सिद्ध भया-शोर भ्रष्टभी योगीको तो रूद सादिका कम नहीं है क्योंकि भगवानका यह बचन है कि, योगसे अप्रमनुष्य, शुद्ध जो धनी उनके बुद्धमें पेदा होताहै अयवा शृद्धिमान योगियांके कुळमं पेदा होताहै-इति अलम्-भावार्य-यहहै कि, जबतक प्राण भीवें और मन न मेरे तनतक इस छोकमें ज्ञान कहांसे होसकता है और जो मनुष्य प्राण और मनका रूप करेंद्र वह मोक्षको प्राप्त होता है अन्यमनुष्य किसीप्रकार भी प्राप्त नहीं होताहै ॥ १५ ॥

ज्ञात्स सुपुम्नासङ्गेदं कृत्या वायुं च मध्यमम् ॥ स्थितवा सदैव सुरुवाने ब्रह्मसंत्रे निरोपदेत् ॥ १६ ॥

प्राणमन्तार्र्ण्यं विना मोलो न सिध्यतीत्युक्तम् । तत्र प्राणक्येन मन्तोऽि छ्यः सिध्यतीति तह्यप्रीतिमाह्-हात्वीत् ॥ सदैव सर्वदेव सुस्थाने शोमने स्थाने ' प्रुराज्ये धार्मिके देशे' इत्यान्नक्षरण स्थिता स्थिति कृता वसति कृतीत्यर्थः । सुष्टुन्ना मध्यनादी तस्याः सद्रेदं शोमने भेदनप्रकारं ज्ञात्व ग्रुक्तुलाङ्गिद्दाः वातुं प्राण् अध्यतं मध्यनदीर्श्वार्तणं कृत्वा ब्रह्मात्रे मूर्धोवकाशे निरोधयेत्रितरां रुखं कुर्यं तृ । प्राणस्य ब्रह्मात्रे निरोधो रुषः श्राणख्ये जाते मनोधिष स्रोपते । तदुक्तं वातिष्टे-'क्षम्यातेन परिस्थे श्राणानां स्यसायते । मनः प्रक्रममायाति निर्मणस्यक्षित्रस्यातः इति । प्राणमन्तरीर्ज्यं सति मादगारिश्चेपरूपताधिकहक्तनेनोदः इत्योनावाधितासता-स्वत्कारे स्वति तदा जीवनित्र मुक्तः पुरुषो स्वति ॥ १६ ॥

मापार्थ-आण और मनके ख्यविना मोदा सिद्ध नहीं होता यह कहा उनमें प्राणके ख्यक्षे मनकामी ख्य सिद्ध होताहै इससे प्राणके ख्यकी रीतिका वर्णन करतेहैं कि, संवैव उत्तमस्था-नमें अर्थात् उत्तमराज्य और चार्मिकदेशमें स्थित होकर हुपुन्ना नाडीके भेटनको भक्षी प्रकार ग्रुरुमुखसे जानकर और प्राणवासुको मध्यनाडीमें गत (संचारी) करके ब्रह्मस्त्र (सूद्धीके अवकाश्) में निरुद्ध करे (रोके) प्राणका ब्रह्मस्त्रमें जो निरोध वहीं रूप है और प्राणके रूप होनेपर मनका भी रूप होजाताहै सोई वासिष्ठमें कहा है कि अभ्याससे जब प्राणोंकी क्रियाका क्षय होजाताहै तब मन शांत होजाता है और निवाणहीं शेष रहजाताहै और प्राण और मनका रूप होनेपर भावना विशेपकर समाधि है सहकारी जिसकी ऐसे अंतःकरणसे अवाधित आत्मसाक्षात्कार जब होजाताहै तब प्ररुष जीवन्युक्त होजाताहै ॥ १६॥

सूर्याचंद्रमसौ घत्तः काछं रात्रिदिवात्मकम् ॥ भोकी सुष्टम्मा काछस्य ग्रह्ममेतद्ददाहृतम् ॥ १७ ॥

प्राणलये कालक्यो जनतीःपाह-सूर्योचंद्रमसाधिति ॥ सूर्येश्च चंद्रमाश्च सूर्याचंद्रमसी ॥ "देनताद्वेदे च" इत्यानङ्कः । राश्चिश्च दिवा च राश्चितिव्या 'अचतुरः' इत्यादिवा
निपानितः । राश्चिदिवं आत्मा स्वरूपं यस्य स राश्चिदिवात्मकरतं राश्चिदिवात्मकं काले
समयं धच्चो विधचः क्रुरुतः । सुष्ठम्या सरस्वती कालस्य स्पर्याचंद्रमोभ्यां कृतस्य
राश्चिद्वात्मकस्य समयस्य मोकी मिक्षका विनाशिका । एतद्युत्धं रहस्यग्रदाहतं कार्यतम् । अयं आदः । सार्ध घटिकाद्वयं सूर्यो चहति सार्थ घटिकाद्वयं चंद्रो वहति । यदा
सूर्यो वहति तदा दिनश्चत्यते । यदा चंद्रो यहति तदा राश्चिरक्यते । पंचधिकात्मव्ये
राश्चिद्वात्मकः कालो मवति॥ लोकिकाहरियात्मच्ये योगिनां द्वादशाहरेरातात्मकः कालव्यवद्वातां मवित । तादशकालमानेन चीवानामात्रुमोनमस्ति । यदा सुप्रमामभेण
वायुक्तरांत्रे लोनो भवति । तदा राश्चिद्वात्मकस्य कालस्याभावाद्वक्तम् भोकी सुपुमा
कालस्य हति । यावद्यक्तसर्य वायुकीयते तावचोगित आयुक्थेते । द्वीधेकालास्यस्तमाधियोंनी पुरिनेव मरणकालं ज्ञात्वा ब्रह्मसंये वायुं नीत्वा कार्लं निवारयति
स्वस्था दिस्त्यां च करोतीति ॥ १७ ॥

मापार्य-अव प्राणका लय होनेपर कालका जय होताहै इसको वर्णन करते हैं कि सूर्य स्वीर चंद्रमा, राजिदिन है स्वरूप जिसके ऐसे कालको करते हैं और सुपुम्मा जो नाडी है वह सरस्वतीरूप नाडी सूर्य जीर चंद्रमाने किये राजिदिनरूप कालको मक्षण करनेवाली है अर्थात नाडीका है यह ग्रप्त वस्तु कही है तारपर्य यह है कि, अटाई घडीतक सूर्य वहताहै लेंगे अटाई घडीतक सूर्य वहताहै जोर स्वरूप वहता है तह राजिदिन स्वरूप वहता है तह सुक्षार पांच घडीके मध्यमंही राजिदिन स्वरूप काल होजाताहै लेंगिक अहोराजिक मध्यमं योगियोंके वारह अहोराज होते हैं जोर स्वर्ध लेंगिक कालके मानसे जीविनक मध्यमं योगियोंके वारह अहोराज होते हैं जोर स्वर्ध लेंगिक कालके मानसे जीविनक अटावही अटावही कालक योगियोंकी लाख बढ़ित कालक कियाह सामिका अध्यास विसने ऐसा योगी पहिलेही अपने मरणसम्बन्ध जानकर और बहारेक्ष माणवाह अध्यास विसने ऐसा योगी पहिलेही अपने मरणसम्बन्ध जानकर और बहारेक्ष माणवाह अध्यास विसने ऐसा योगी पहिलेही अपने मरणसम्बन्ध जानकर और बहारेक्ष माणवाह अध्यास विसने ऐसा योगी पहिलेही अपने मरणने इन्छासे देहका त्याग करता है ॥ १०॥

द्राप्तप्तिसहस्राणि नाडीद्वाराणि पंजरे ॥ सुषुम्ना ज्ञांभवी ज्ञाकिः ज्ञोषास्त्वेव निरर्थकाः ॥ १८ ॥

द्वारास्ति ॥ पंतरे पंतरविच्छरास्थिभिनेव्हे द्वारोरे द्वाभ्यामधिका तसतिः द्वासातिः द्वासाति। द्वासाति स्वासाति द्वासाति द्वासाति स्वासाति द्वासाति द्वासाति द्वासाति द्वासाति द्वासाति द्वासाति स्वासाति द्वासाति द्वासाति द्वासाति द्वासाति द्वासाति। द्वासाति द्वासाति

भाषार्थ-इस मनुष्यके पंतरमं अर्थात पंजरके समान शिरा अध्ययों से वंबहुये द्वारीसमं महत्तर सहस्र नावियोंके द्वार हैं अर्थात वायुप्रवेश होनेके मार्ग है उनमं सुमुन्ता जो मध्य-नावी है बहु शांभवी शांक है अर्थात तिससे मकाँको सुख हो ऐसे शंध (शिवजी) की शांकि है क्योंकि वह नावी ध्यानसे शंधको प्राप्त करती हैं वा शंसकी प्रकटवाओ पैदा वस्ति। है इसीसे शांभवी कहाती हैं अर्था शं (सुख) रुद्ध ने किये तथा सालाको शंध कहते हैं उसकी जो शांकि वह शांभवी कहाती है क्योंकि वह चैतत्यकी अभिव्यक्ति (रोप को इवा का स्थान है खोर ध्यानसे आत्माके सालाके सालाकारका हेत्र भी सुमुन्ता है और शेप जो इवा पिंगरा साहि नावी है वे सब निष्प्रयोजन हैं अर्थात उनसे पूर्वोक्त प्रयोजन सिद्ध नहीं होताहै॥ १८॥

वायुः परिचितो यत्मादिश्रना सह क्रंडलीम् ॥ बोधयित्वा सुषुम्नायां प्रविज्ञेदनिरोधतः ॥ ३९ ॥

बाजुरिति ॥ वस्मारपोरिचतोऽभ्यस्तो बायुस्तस्मादित्रना जठराक्षिना सह कुण्डलैरं झार्ति बोद्ययित्वा अनिरोधकोऽभवित्तंचारद्वप्रसायां सरस्वत्यां भविशत बायेः खुडुझा-प्रवेजार्थकभ्यासः कर्तव्य इत्यर्थः ॥ १९ ॥

माधार्थ-जिससे परिचित अर्थात् अभ्यास किया वायु जठराप्रिके संग कुंडछोशक्तिके बोचन (जगा) करके निरोध (रोक) के अमावसे सरखतीरूप सुपुन्नामें प्रविद्य होजाताहै। इससे वायुका सुपुन्नामें प्रवेशके छिये अभ्यास करना उचित् है ॥ १९॥

सुषुम्नावाहिनि प्राणे सिद्धचरयेव सनोन्मनी ॥

अन्यथा रिवतराभ्यासाः प्रयासायेव योगिनास् ॥ २० ॥ सर्वप्रोति ॥ प्राणे प्रदुष्टावादिनि सति वनोन्मनी उन्मन्यवस्या सिद्धवत्येव ।

सुबुद्रात ॥ आण सुद्धनावाहान तात नवान्या उन्यं वराव्या । आण्याहान वोधान् अन्यया माणे सुबुद्रावाहान्यसति हु इत्राच्यासाः सुबुद्रोत्तरभ्यासाः योगिनां योधान् भ्यासिनां प्रयासिनां प्रयासिकां प्रयसिकां प्रयासिकां प्रयसिकां प्रयासिकां प्रयासिकां प्रयासिकां प्रयासिकां प्रयासिकां प्

भापार्थ-जब प्राण द्रुष्टुस्तार्मिं बहुने खगताँहै तब मनोन्पनी खनश्य सिद्ध होजातींहैं और प्राणके द्रुपुनावाही न होनेपर तो द्रुपुनाके अभ्याससे मित्र जितने अभ्यास योगियोंके हैं वे सब हुया हैं अर्थात परिअपके ही जनक होनेसे उनसे कोई अर्थ सिद्ध नहीं होताहै ॥ २० ॥

पदनो बच्यते येन मनस्तेनैव बच्यते ॥ सन्द्र्य बच्यते येन पदनस्तेन बच्यते ॥ २१ ॥

प्रम इति ॥ येन योगिना प्रवनः प्राणवायुर्वेच्यते वृद्धः क्रियते तेनैव योगिना मनो वृद्यते । येन मनो वृद्यते तेन प्रवनो वृद्यते । मनःप्रवनयोरोकतरे वृद्धे उमर्य

बद्धं भवतीत्यर्थः ॥ २१॥

साबार्थ-योगी जिससे पवनका बंधन करखेता है उसीसे मनको भी बंधन करखेता है और जिस कारणसे मनका बंधन करसकता है उसी रीतिस प्राणकोभी बांध सकता है अर्थात् मन और पबन इन दोनॉमेंसे एकके बंधनसे दोनोंका बंधन हो सकता है ॥ २१ ॥

हेत्रद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः ॥ तयोविनष्ट एकस्थिरतो द्वाविष विनक्यतः ॥ २२ ॥

हेत्रह्यं तु चित्तस्येति ॥ चित्तस्य प्रवृत्तौ हेत्रह्यं कारणह्वमस्ति । किं तदिस्याह—वासना भावनाल्वः संस्कारः समीरणः प्राणवायुश्च तयोवांसनासमीरणयोदेकस्मिन् विनष्टे सति क्षीणे सिति तौ हावापे विनश्चयतः । अयमाश्चयः । वासनाक्षये समीरणं चित्तचे क्षीणे सवतः । सित्ते क्षीणे समीरणं चासने क्षीणे भवतः । तद्वतं वासिष्ठ—दे वीजे राम चित्तस्य प्राणस्यंदनवासने । एकाँस्थ्य वयोनचे क्षिप्रं हे आपि नश्चवः ॥ 'तत्रैव व्यतिरेक्षणोक्तम—'याबद्धिलीनं न मनो न ताबहासनाक्षयः । न क्षीणा वासना याविचत्तं तावत्र शाम्यति ॥ न यावचाचि विज्ञानं न तावचत्त्ववेदनम् ॥ यावच्याचि विज्ञानं न तावचत्त्ववेदनम् ॥ यावच्य वासनानाश्चस्तावत्तवाममः क्ष्यः । यावच्य चत्त्वसंप्राप्तिनं तावद्रासनाक्षयः ॥ त्रच्यानं मनोनाञ्चो वासनाक्षयः एव च । मिषः कारणवां गत्वा द्वासाच्यानि स्थिताः स्यतः ॥ श्वय पते समं यावन्न स्वभ्यता सुद्धर्वहः । तावन्न चत्त्वसंप्राप्तिमेवत्यपि समाश्चितः ॥' इति ॥ २२ ॥

मापार्थ-चित्तको प्रश्नतेमं चो हेत्र हैं एक तो वासना अर्थात मावना नामका संस्कार और प्राणवाय, वासना और प्राणवाय इन दोनोंमंनि एकके नष्ट होनेपर वे दोनोंमी नष्ट हो जाते हैं यहां यह आकाय है कि, वासनाके क्षय होनेपर पवन और चित्त नष्ट होजाते हैं और पवनके क्षीण होनेपर पवन और वासना क्षीण होनेपर पवन और वासना क्षीण होनेपर पवन और वासना क्षीण होनोंपि ने वासना ये दोनों चिन्तके बीज हैं जा दोनोंके मध्यमें एकके नष्ट होनेपर वे दोनोंभी नष्ट होजातेहें और, वासिष्टमं ही व्यतिरेक्त (निषेष) के द्वारा कहा है कि जवतक मनका रूप नहीं होता तवतक वास-

नाका क्ष्म नहीं होता है और इतने वासनाका क्षम नहीं होता तब तक चित्त कांत नहीं होता है और जबतक विज्ञान नहीं होता तबतक चित्तवा संज्ञय नहीं होता है और जबतक चित्त कांत नहीं होता तबतक तत्त्वज्ञान नहीं होता है और जबतक वासनाका नाका न हो तबतक तत्त्वका आगमन कहां और जबतक तत्त्वका आगम (प्राप्ति) न हो तबतक वास-नाका क्षम नहीं होता इससे तत्त्वज्ञान मनका नाका और वासनाका क्षम ये तीनों परस्पर का-रण होकर इंग्बर्स साव्यद्धप होकर खित हैं इससे जबतक इन तीनोंका; समरीतिसे वाखार विभ्यास न क्षिमा आम तबतक अन्य कारणोंसे तत्त्व (बहाज़ान) की संप्राप्ति नहींहोती हैं ?२२

मनो यत्र विद्यायत प्रवनस्तत्र ठीयते ॥ प्रवनो द्यायते यत्र मनस्तत्र विद्यायते ॥ २३ ॥

मन इति ॥ यत्र यस्मिन्नाधारे मनो लीयंत तत्र वस्मिन्नाधारे पवनो विलीयत्त इत्यन्वयः ॥ २३ ॥

भाषार्व-जिसमें मनका रूप होता है वहांही पक्तका रूप हो जाता है और जहां पक्तका

छय होता है दहां ही मनमी छीन हो जाता है ॥ २३ ॥

ढुग्पांबुनरसंमिद्धिताबुभौ तो तुरुपञ्चियौ मानसभारतो हि ॥ यतो मरुत्तत्र यनःप्रवृत्तियंतो मनस्तत्र मरुत्मवृत्तिः ॥ २८ ॥

द्वाधांत्रविति ॥ दुग्धांत्रवृद्धितित्वित्वांमिलिती सम्यक् मिलिती ताद्धभी द्वावित्य मानसमारुती मानसं च मारुतव्य मानसमारुती विच्याणी द्वल्याक्रियो तुल्याक्रियो तुल्याक्रियो तुल्याक्रियो तुल्याक्रिया मानसमारुती भागता मार्गुतिर्ययो स्वाधां मार्गुतिर्ययो मार्गुतिर्ययो । यत्ता विक्र मुद्धानुः प्रवर्तते तत्र तिमन् चक्रे मनःभवृत्तिः मानसः प्रवृत्तिर्यति । यत्ता यत्तिमन् चक्रे मनः प्रवर्तते तत्र तिमन् चक्रे मरुधानुतिः मानसः प्रवृत्तिर्यति । यत्ता यत्तिमन् चक्रे मनः प्रवर्तते तत्र तार्तम्यक्षे मरुत्यवृत्तिः वायाः प्रवृत्तिर्यति । तद्वत्ते । तद्वत्ते । तद्वत्ते । तद्वते विक्षति । कुद्धमामोद्वान्मभ्रे तिल्तिरे व्वास्यते ॥ कुद्धतथा विनान्नेन कार्यं मोक्षास्यमुत्तमम् उति ॥ २८॥ ।

भाषार्थ-हुप और जब्के समान मिडेहुंध मन और पबनकर जो चित्तः और पाण हैं वे दोनों तुल्यिक्य हैं जयांत दोनोंकी महत्ति तुल्य होती है अर्थात जिस नाडियोंके चक्कमें वायु मृत्त होता है उसी चक्कमें मनभी मृत्री मृत्रित होती है और जिस चक्कमें मन मृद्ध होता है उसी चक्कमें वायुकी मृत्रित होती है सोई बासिएमें कहा है कि माणियोंके पाण और चित्त दोनों अविनामाजी हैं अर्थात एकके विना एक नहीं होसकता है और पुण और प्रुगंधके समान मिडेहुए तिल और तेलके समान स्थित हैं और ये अपने विनाशसे मोक्षकप उत्तम- कार्यकों करते हैं ॥ २८ ॥

> तत्रैकनाज्ञाद्परस्य नाज्ञ एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः ॥ अच्चस्तयोव्येद्वियवर्गवृत्तिः प्रचस्तयोर्मोक्षपदस्यक्षिद्धिः॥२५॥

तत्रिति ॥ तत्र तयोर्मानसमाहतयोर्भेच्ये एकस्य मानसस्य माहतस्य वा नाशाख्यादपस्यान्यस्य माहतस्य पानसस्य वा नाशो ख्या मवति । एकप्रवृत्तिकस्य मानसस्य माहतस्य वा प्रवृत्तिकस्य मानसस्य माहतस्य वा प्रवृत्तिकर्यापारो भवति । एकप्रवृत्तिकर्यापारो भवति । कथ्यस्ययोर्ग्छानार्थेन्यस्य माहतस्य मानसस्य वा प्रवृत्तिकर्यापारो भवति । कथ्यस्ययोर्ग्छानार्थेन्यस्य स्वति । कथ्यस्ययोर्ग्छानार्थेन्यस्य स्वति । कथ्यस्ययोर्ग्छानार्थेन्यस्य स्वति । प्रवृत्तिकर्याः प्रश्नित्योर्थेन्यस्य स्वति । वयोर्कये प्रवृत्तिकर्यात्रस्य माहत्यस्य स्वति । वयोर्कये प्रवृत्तिकर्याः स्वति । वयोर्कये प्रवृत्तिकर्यात्रस्य स्वति । वयोर्कये प्रवृत्तिकर्यात्रस्य स्वति । वयोर्कये प्रवृत्तिकर्यात्रस्य स्वति । वयोर्कये प्रवृत्तिकर्यायस्य स्वति । वयोर्कये । २५ ॥

भाषार्थ-उन दोनों पबन और मनके मध्यमें एक मन वा पबनके नाशसे दूसरा. पबन वा मनका नाश होता है और एक मन पबनके व्यापारसे दूसरे मन वा पबनका व्यापार होता है और एक मन पबनके व्यापारसे दूसरे मन वा पबनका व्यापार होता है और जब नह नहीं होते तबतक संपूर्ण इन्हियोंका सम्रदाय अपने २ विष-वर्ष प्रदूत्त होता है और जब मन और प्राणका मकीप्रकार रूप हो जाता है तब मोक्षर पदकी सिद्धि होती है, क्योंकि इन दोनोंका रूप होनेपर पुरुषकी अपने स्वरूपमें स्थिति हो-जाती है और इस प्रूरूके क्षेत्रके उत्तरक्षेत्र योगवींकी यह दिखा है कि, पढंगयोग आदि के सेवनसे पबनका नाश साधक करने योग्य है और मनका विनाश तो ग्रहके प्रसादद्वार

ानिमेषमात्रसे सुसाध्य है ॥ २५ ॥

रसस्य मनसञ्जेव चंचछत्वं स्वशावतः ॥ रसो बद्धो मनो बद्धं किं न सिद्धचति भूतछे ॥ २६ ॥

रसस्येति ॥ रसस्य पारदस्य मनसो मानसस्य स्वभावतः स्वभावाचंचळलं चांच-च्यमस्ति । रसः पारदो षद्धश्रेन्मनश्चितं वद्धं भवति । नतो भूतळे पृथिवीतके किं न विद्यचति सर्वं सिद्धचतीत्यर्थः ॥ २६ ॥

मापार्थ-और रस (पार्यार्ध) और मन थे दोनों स्वमावसे चंचल हैं। याद रस और मन थे दोनों वंचनायें तो मुतलमें ऐसी वस्तु कीन है जो सिद्ध न हो सके अर्थाद सब पदार्थ सिद्ध इसिकते हैं॥ २६॥

मुर्न्छितो हरते व्याधीःमृतो जीवयति रूर्यम् ॥ बद्धः खेचरता घत्ते रसोद्वायुख पार्वति ॥ २७ ॥

तवेबाह-मुन्छित इति ॥ जौपधिविद्योगयोगेन गतचापछा रसो सुन्छितः कुम्मकांते रैवंकानिवृत्तो बायुर्भेन्छितं इत्युच्यते । हे पार्वतीति पार्वतीस्ववाषायेश्वरवाक्यम् । सुन्छितो रसः पारदे बायुः प्राणक्ष्यस्याधीन् रोगान् इरते नाशयति । मस्मीभृतो स्तो अक्तरेष्ठे छीनो बायुश्च स्ततः स्वयमात्मना स्वसामर्थ्येनेरयर्थः । जीवयति दीर्ध-कार्छं जीवनं करोति । क्रियाविद्योषण गुटिकीकारकृतो रसः बद्धो भ्रमध्यादो धारणा-

विशेषेण धृतो वाष्टुख वद्धः वेचरतामाकाशभिति धत्ते विधत्ते करोतीत्वर्धः । तदुक्तं मोरकातके-'यद्भिजांजनपुंजंसिक्षमिदं वृत्तं श्चोरेतरे तत्त्वं वायुमयं पकारसहितं तत्रे-न्यरो देवता । प्राणं तत्र विद्याप्य पंचयदिकं चित्ताम्बितं धारवेदेषाः वे गमनं करोति यमिनां स्याद्यायुना धारणां इति ॥ २७ ॥

भापार्थ-जीपधिविशेपके योगसे नष्टहुईहै वपछता विसकी ऐसा रस श्रृच्छित कहाता है और सुभ्यकके अंतमें रेचकसे निवृत्त वायुको सुन्ध्यित कहते हैं, हे पावेंती ! मुन्ध्यित कियाहुआ। पार लौर प्राणवायु सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करता है और माराहुआ अर्थात सस्मूर्ण रोगोंको नष्ट करता है और माराहुआ अर्थात सस्मूर्ण पारा लौर इस्तंत्रमें छीन प्राणवायु, यह अपने साम्य्यंसे अतुव्यको दिश्वेकालतक निवा सकता है और वह किये हुए वे दोनों अर्थात क्षिमाविशेषसे गुण्यका सिक्त हुआ पारा और इस्तेत्र वापाविशेषसे वारण किया हुआ प्राणवायु ये दोनों आकाशगतिको करते हैं अर्थात वह योगी पित्रयांके समान काश्वास उद्यक्त समुद्धको तत्व गोणकार वायुक्त और प्राप्त किता प्रवित्त तत्व (प्राणे) श्रृहुहेट्योंके मध्यमें है उस तत्त्वका ईथर देवता है उस ईथरमें श्रिणको वित्तसिहत क्य करते पीचवर्ष पर्यंत प्राप्त करें, यह वायुके संग चित्तकी धारणा योगीजन्मोंका आकाशोमें गमन करती है ॥ २७ ॥

सनःस्थैरें रिप्रो वायुस्ततो विंदुः त्थिरो भवेत् ॥ विंदुत्थैर्योत्सम् क्तं पिंदुस्थैर्यं प्रजायते ॥ २८ ॥

सनःहर्वेष इति । मन ३: स्वेषं सति वायुः भाणः स्थिरो मवेत् । तवो वायुस्य-योद्धिन्दुर्वीयं स्थिरो भवेत् । विद्योः स्थैयोतसदा सर्वदा सत्त्वं वर्ळ पिंडस्वेर्यं देदृहस्येयं प्रजायते ॥ २८ ॥

भाषार्थ-मनकी स्थिरता होनेपर प्राणभी स्थिर होताई और वाधुकी स्थिरतासे बीर्थकी स्थिर रूता होती है और विर्थकी स्थिरतासे संदेव बळ होता है और उससेही देहकी स्थिरता हातीहै ॥ २८ ॥

इंद्रियाणां मनो नायो मनोनायस्तु नारुतः ॥ मारुतस्य छयो नायः स छयो नादमाश्रितः ॥ २९ ॥

इंद्रियाणामिति ॥ इंद्रियाणां श्रीत्रादीनां मनोंडवःकरणं नायः मनतेकः । मनोनायो .मनतो नायो मारुवः प्राणः । मारुवस्य प्राणस्य ख्यो मनोविखयो नायः । स ख्यो मनोख्यः नादमाश्रितो नादे मनो खीयत इत्यर्थः ॥ २९ ॥

माचार्य-त्र्योत्र आहि इन्द्रियोंका नाय (प्रवर्तक) व्यंतःकरण यन है और मनका नाय प्राण है और प्राणका नाय मनका छय है और वह मनका छय नावके आश्रित है अर्थात् नावमें मनका छय होता है ॥ २९॥

सोऽयमेवास्तु मोक्षाख्यो मास्तु वापि मतांतरे ॥ मनःपाणस्ये कश्चिदानंदः संप्रवर्तते ॥ ३०॥

भाषार्थ-सो यही चित्तका छय मोक्षरूप है अर्थात् इसकोही मोक्ष कहते हैं अथवा मतां-तरमें इसको मोक्ष मत मानो, क्योंकि चित्तका छय धुपुर्मिमं भी होताहि तो भी मन और प्राणके छय होनेपर जो छुछ अक्टयनीय आनंद प्रकट होता है उस अनिर्वचनीय आनंदके प्रकट होनेपर जीवन्सुति रूप सुख अवश्य होता है ॥ ३० ॥

प्रनष्टशासन्थासः प्रघरतविषयग्रहः ॥ निश्चेष्टो निविद्यास्त्र उयो जयति योगिनाम् ॥ ३१ ॥

प्रनिष्ठति ॥ श्वासस्य निश्वासस्य श्वासिनश्वासी प्रनिष्ठी होनी श्वासिनश्वासी यस्मिन्
स तथा बाह्यवायोर्सनःप्रवेद्यानं श्वासः व्यंतःस्थितस्य वायोविहिनिःसरणं निश्वासः प्रयद्धः
स्तः प्रकर्षेण व्यस्तो नष्टो विषयाणां शब्दादीनां प्रहो प्रश्चणं यस्मिन् 'निर्भता चेष्टा
कायक्रिया यस्मिन् निर्मतो विकारोऽदःकरणिक्रया यस्मिन् प्रताहशोयोगिनां ह्योऽन्तः
करणञ्चेत्रव्यंयाकारा वृत्तिर्जेवाति सर्वोक्ष्में वर्तते ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—जिसमें बास और निश्वास मळोपकार नष्ट होजाय अर्थात बाहरकी पवनका जो भीतर प्रवेश वह धास जोर भीतरकी पवनका बाहर निकासना यह निश्वास, यह दोनों जिसमें न रहें और इन्द्रियोंसे विषयोंका ब्रह्म करनाभी जिससे भळेपकार नष्ट होजाय, और देखकी क्रियाकर वेणामी जिसमें न रहें, और अंतःकरणका क्रियाकर वेणामी जिसमें न हो, ऐसा जो योगियोंका ळय है अर्थाद ध्यान करने योग्य वस्तुके आकारकी जो अंतःकरण-वृतिहै वह सबसे उत्तम है ॥ ३१ ॥

उन्छिन्नसर्वेसंकरपो निःशेषाशेषचेष्टितः ॥ स्वावगम्यो उद्यः कोऽपि जायते वागगोचरः ॥ ३२ ॥

विष्ठनेति ॥ विष्ठन्ता नष्टाः सर्वे संस्रत्या मनःपरिणामा यस्मिन् स तथा निर्मतः देशो चेम्यस्तानि निःशेषाण्यक्षेषाणि चेष्टितानि यस्मिन् स तथा स्वेनैवावगंद्धं बोर्ह्ड दास्याःस्वावगम्यः वाचामगोचरो विषयः कोऽपि विल्रक्षणो लयः जायते योगिनां प्राद्धमैवति ॥ २२ ॥

म्प्रापर्थ-जिसमें मनके परिणाम रूप संपूर्ण संकल्प नष्ट होगये हो और जिसमें संपूर्ण , चोष्टित न रहे हों अर्थात कर चरण आदिका व्यापार निवृत्त हो और जो अपने आपीं जाने योग्य हो अर्थात् जिसकेा अन्य पुरुष न जानसके और जो वाणिकामी अगोचर हो अर्थात् वाणीमी जिसके। न कहसके ऐसा विदक्षण ख्य योगीजनोंको प्रगट (उत्पन्न) होताहै ॥२२॥

यत्र दृष्टिर्छयस्तत्र भृतेन्द्रियष्ठनातनी ॥ सा शक्तिनीवभृतानां द्वे अखद्ये खयं गते ॥ ३३ ॥

यत्र हांद्विरिति ॥ यत्र यस्मिन्विषये ब्रह्मणि हृद्धिताक्षरणवृत्तिस्तिवैव लयो भर्नति । भूतानि पृथिव्यादीनि इंद्रियाणि श्रेत्रादीनि सनातनानि द्याद्ववानि यस्यां सा सस्का-येवादेऽविद्यायां कार्यजातस्य सत्त्रात् । जीवभृतानां प्राणिनां द्यक्तिविद्या इमे दे अलक्ष्ये ब्रह्मणि लयं यते योगिनामिति द्योवः ॥ ३३ ॥

मापार्थ-जिस महारूप विषयमें अन्तःकरणकी द्वांत होतीहै उसीमें मन रूप होताहै भी पूर्व्या आदि एवं महारून और श्रीज आदि इन्द्रिय ये जिसमें न हो वह आवद्या, वर्षोंक सका-धेवाद मत्त्रेम अविद्यांस सम्पूर्ण कार्यका समूह रहता है, सकार्यवाद यह है कि वट आदिकार्य सतहर है—और प्राणियोंकी इतिकृष्य विद्या, ये अविद्या और विद्याहर दोनों अरुक्ष ब्रह्ममही योगियोंके रूप हो नाते हैं॥ ३३॥

ठयो ठय इति प्राहुः कीदृशं छवछक्षणम् ॥ अप्रुनर्वासनोत्थानास्थयो विषयविस्मृतिः ॥ ३४ ॥

ल्य इति ॥ ल्य इति प्राहुवैदेति वहवः । ल्यस्य लक्षणं लयस्यक्षं कीदश मिति प्रश्नपुर्वकं ल्यस्वरूपमाह्-अपुनिगिति । अपुनर्वासनोत्यानातपुनर्वासनात्था-नामावाद्वित्यविस्तृतिर्विषयाणां श्रव्दादीनां ध्येयाकारस्य विषयस्य वा विस्तृति-रूपो ल्यानवार्यं इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

मामार्थ-बहुतसे महाब्य रूप ऐसा कहते हैं परन्तु रूपका रूहण (स्वरूप) क्या है ऐसा कोई पूछे तो शब्द आदि सम्पूर्ण विपयोकी वा ध्यान करनेयोग्य विपयकी जो विस्मृति उसके। रूप कहते हैं क्योंकि उस मनमें फिर वासना नहीं उठती हैं वा वह मन फिर वासना-ऑका स्थान नहीं रहता है ॥ ३४ ॥

वेद्शासपुराणानि सामान्यगणिका इव ॥ एकेन शांभवी सुद्रा ग्रसा कुळवधूरिव ॥ ३५ ॥

वेदोति ॥ वेदाश्यतारः शास्त्राणि षद् पुराणान्यघदश सामान्या गणिका इव वेस्या इव । वहुपुरुषगम्यत्वात् । एका शांमवी सुदैव कुळवध्रिव कुळखीव गुप्ता । पुरुष विशेषगम्यत्वात् ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—चारों वेद और छहाँह्याख और अध्यक्कः १८ प्रग्रण ये सब सामान्य गणिका (वेस्या) के समान हैं क्योंकि ये अनेक पुरुषोंके जानने योग्य हैं और एक पूर्वोंक शांभवी-- मुज़ाही कुरुवपूर्क समान गुर्ते हें क्योंकि उसको कोई विरक्ष म्लूप्यही जानसकता है ॥ ३९ ॥

अंतर्रुक्षं वहिर्देष्टिनिमेषोन्मेपवर्निता ॥ एषा सा ज्ञांभवी सुद्रा वेदशास्त्रेषु गोपिता ॥ ३६ ॥

चित्तल्याय प्राणलयसाधनीमृतां सुद्रां विवसुस्तत्र ज्ञांमवीं सुद्रामाह—अंतर्लक्ष्य-मिति ॥ अंतः आधारादिब्रह्मर्ग्धातेषु चक्रेषु मध्ये स्वामिमते चक्रे ठक्ष्यमंतःकरण-वृत्तिः । वहिर्देहाद्वहिःप्रदेशे दृष्टिः चसुःसंवैधः कीदशी दृष्टिः निमेपोन्मेपवर्जिता निमेपः पक्ससंयोगः उन्मेषः पदमसंयोगविश्वेषः वाञ्यां वर्जिता रहिता वित्तस्य व्येयाकाराः वेशे निमेषोन्मेषवर्जिता दृष्टिर्भवति । सोक्तिया सुद्रा शांभवी शंभीरियं शांमवी शिव-प्रिया शिवाविमीवजनिका वा भवति । कीटशी वेदशास्त्रेषु गोपिता वेदेषु ऋगादिष्ठ

ः शास्त्रेषु सांख्यपातंजलादिषु गोपिता रक्षिता ॥ ३६ ॥

भाषार्थ-चित्तके छयार्थ प्राण्डयका साघन जो शांभवीमुद्रा उसके कथनके अभिरूपि आ-चार्य प्रथम शांभवीसुद्राका वर्णन करते हैं कि, शीतरके नी आधार आदि चक्र हैं उनके मध्यमें ं अपनेको अभीष्ट जो चक्र हो उसमें रहस (अंतःकरणकी वृत्ति) हो और वाहिस्के विपर्यामें जो दृष्टि हो वह निमेप और उन्मेपसे वाँजेत हो अर्थांत पश्म (परुक) के संयोग और वि-योगसे हीन हो, क्योंकि चित्रमें ध्यान करनेके योग्य जो वस्तु उसके आकारके आवेश होनेसे निमेष रहित प्रकाशितही नेत्र बने रहते हीं बेद और शाखोंमें ग्रात यह गुद्रा अर्थात अरविद आदि वेद और सांख्य पातंजरू आदिशासाम भी छिपीहुई यह मुद्दी शामवी; कहाती है कि इससे इप्रिका आविर्माव (प्रकटता) होता है वा यह ग्रदा शंभु भगवानने कही है ॥ ३६ ॥

अंतर्रुक्ष्यविद्यनिचित्तपवनो योगी यदा वर्तते हष्ट्या निश्चलतारया बहिरधः परयञ्जपरयञ्जीप ॥ मुद्रेयं खळु ज्ञांभवी भवति सा उन्धा प्रसादादगुरोः शुन्याश्चन्याविद्यक्षणं स्प्रासि तत्तत्त्वं परं शांभवम् ॥ ३७ ॥

कांभवीं सद्भागमिनीय दर्शयति-अंतर्र्षस्यमिति ॥ यदा यस्यामवस्थायामंतः अनाः हतपदादौ यह्नक्ष्यं सगुणेक्वरमूह्योदिकं तत्त्वमस्यादिवाक्यलक्ष्यं जीवेश्वराभिन्नमहं जहारमीति बाक्यार्थमूर्व ब्रह्म वा तरिमन्त्रिकोनी विशेषण कीनी चित्तपवनी मनोमारुती चस्य स तथा योगी वर्तते निश्चलतास्या निश्चला स्थिरा तारा कनीनिका चस्य ताहस्या दृष्ट्या बहिर्देहाद्वाहिःप्रदेशे पश्यक्तपि चक्षुःसंबंधं कुर्देक्तपि व्यवस्यन् वाह्यविषयग्रहण-मञ्जर्षेत्र वर्तते आस्ते । खिल्बति बाक्याखंकारे । इयमुक्ता शांभवी मुद्रा शांभवीनामिका खुद्रयाति क्षेत्रानिति सुद्रा सुरोर्देशिकस्य प्रसादात्त्रगौतिपूर्वकाद्वुत्रहालुन्धा प्राप्ता चेत्तदिः दीमति वक्तमञ्ज्यं शांमवं शांमवीसुद्रायां मासमानं पदं पद्यते गम्यते योगिभिरिति पदमारमस्वरूपं शून्याशून्यविलक्षणं ध्येयाकारवृत्तेः सद्भावाच्छन्यविलक्षणं तस्य। स्रापि ! भानाभावादशून्यविद्यक्षणं तत्त्वं बास्तविकं वस्त्र स्फूरति प्रतीयते । तथाचोक्तम्-वन्तः

र्रुंस्यमनन्यधीरविरतं पश्यन्युद्धा संयमी दृष्टचुन्येषनिमेषविज्ञतिमयं मुद्धा अवेच्छाम्मवी ॥ ग्रुप्तेयं गिरिदोन तंत्रविदुषा तंत्रेषु तस्त्राधिनामेषा स्याद्यमिनां मनोत्वयकरी मुक्तिश्वा दुर्लमा ॥ १ ॥ कम्बेद्दष्टिरधोद्दिष्टरूक्वेवेयो द्यायः द्विगाः । राधायंत्रविधानेन जीवन्युक्ती मवेरिसती । २ । 1 ॥ ३७ ॥

भाषार्थ-अन शांभनीसदाके सक्दपको घटाकर दिखाते हैं कि, जिस काल्में थोगी इस अकार वर्ते अर्थात् स्थित रहें कि, भीतर अनाहत (निब्बल) पद्म आदिमें जो सग्रण मूर्ति आदि एस्य है वा तत्त्वमासि आदि महावाक्योंसे एस्य वो नीव ईश्वरके अभेदरूप में जहा हूँ इस वाक्यका सर्यक्रप ब्रह्म है उसमेंही विशेषकर जिसके चित्त स्वीर मक्त (प्राण) ये दोनों लीन हों और निश्वल है तारे निसमें ऐसी दृष्टि (नेत्र)से देहसे बाहिरके देशमें देखताहुआभी सद्रधाके समान हो लयांच बाहिरके विषयको न जानताहुआ संपोद्धीष्ट रहताहै-यह पूर्वोक्त शांभवी नामकी ग्रदा हैं और नो क्वेशोंको छिपाले उसे ग्रदा यहते हैं-यादि यह गुद्रा गुरुके प्रसादसे प्राप्त होजाय तो वह शामन शंगुमगवानका तस्व जिसको इस अकार नहीं बता सबते कि, यह है शांभवाग्रदामें भासमान वह योगियाको प्राप्त होनेयोग्य आरमारूप तत्त्व अर्थात् ध्येयाकार शतिके होनेसे शुन्यसे विरुक्षण और अंतर्मे च्येयाकार इत्तिकेभी क्षमावसे अञ्चल्यसे विरुक्षण वास्तविकं वक्त योगीजनोंके मनमें रफुरती हैं सर्यात प्रतीत होती हैं-सोई कहा है कि अनन्यबुद्धि होकर अर्यात अन्यविषयमें बुद्धिको न रुगाकर भीतरके एक्य (ब्रह्म) को दृष्टिके उन्मेष निमेपसे वार्जित नेत्रोंसे निसंतर आनंदसे देखताहुझा संयमी (योगी) होय तो यह शामबी छुद्रा होती है और तंत्रके झाता गिरीश (शिव) ने यह ग्रत रक्षी है और यह इल्मछुद्रा तत्त्वके अभिकाषी योगीवनीके मनको स्य करती है और मुक्तिको भरूप्रकार देती है और उद्ये और अधोद्यष्टि होकर और उद्ये देघ और अपःशिर होकर स्थित योगी इस राधायंत्रके विधानसे भूमिमें रहताहुआमी जीव-न्युक्त होताहै-भावार्य यह है कि, भीतरके उस्यम उयहुये हैं वित्त पत्रन निसके और निश्चल हैं तारा जिसके ऐसी दृष्टिसे वाहिरके विषयको देखताहुआभी न देखनेके समान हो ऐसे योगीकी यह शांभवीमुदा होती हैं यदि यह गुरुके प्रसादसे प्राप्त हो जाय तो योगीको जून्य सञ्जन्यसे विकक्षण नो जंमुका पद्कप परम तत्त्व है वह प्रतीत होतीहे ॥ ३७ ॥

श्रीज्ञांभव्यात्र खेचर्यां अवस्थापामभेदतः ॥ भवेचित्तल्यानंदः ज्ञून्ये चित्सुखस्त्रिपिणि ॥ ३८ ॥

श्रीसांभस्या इति ॥ श्रीशांमस्याः श्रीमत्याः श्रामबीसुद्रायाः वेचरीसुद्रायाश्राव स्वाधाममेदतः अवस्थाऽविधिविधीन स्थानं तयोमदास्थाने वोहर्देष्ट्या, बहिरिस्य- विः तेचयी श्रूमध्यहरूषाइविधिविधीन स्थानं हृदयमादनादेशः वेचयी श्रूमध्य एव देशः । तयोमदास्था श्रून्ये देशकाल्वरत्यपिरच्छेदशुन्ये छानावीयविज्ञातीयस्थातमेद्रः श्रून्ये या चित्तसुत्वकिपिण चिदानंदस्यकिपणात्माने चित्तल्यानंदीः भवेत्त्यात् । श्री-शांभवीत्वेचर्योत्वर्याधामरूपताथनंदीः मेदः, नतु चित्तल्यानंदश्यकृष्ट्या इति मावः १८

माषार्थ-इस पुर्वोक्त श्रीमती शांभवीसुद्राके कीर खेक्सीसुद्राके द्वारा अवस्था और धाम (स्थान) के भेदसे अर्थात शांभवीसुद्रामें बाहिर हार्रिसे बाहिंगरियति जीर खेक्सीसुद्रामें श्रुष्ट- दीका मध्यते हिस्से स्थिति होती है और शांभवीमें ६दय मावनाका देश है और खेक्सीमें श्रुष्ट- दीका मध्यती देश है इन दोनों भेदोंसे देश काळ वस्तुके परिच्छेदसे और सजातीय विजातीय स्थातका भेदसे श्रुप्य (रहित) चिदानंद स्वरूप आरमार्थ चित्तके ळयका आनंद होता है अर्थात दोनों शांभवी खेक्सीसुद्राजोंका अवस्था और धामरूप साधन अंशोंम तो भेद है और चित्तळयके आनंदरूप फळके अंशोंमें भेद नहीं है ॥ ३८ ॥

तारे ज्योतिषि संयोज्य क्षिचिद्वन्नमयेदस्त्रेते ॥ . पूर्वयोगं मनो युंजन्तुन्मनीकारकः क्षणात् ॥ ३९ ॥

डनमनीसुद्रामाह—तार इति ॥ तारे नेत्रयोः क्षनीनिके ज्योतिषी तारयोनीसाप्रे योजनात्मकाश्चाने तेजिस संयोध्य संयुक्ते कृष्या श्रुवी किचित्स्वरुप्धन्नेयृद्धं नयेत् ॥ प्रवे: पूर्वोक्तोऽन्तर्थस्यविहेहीप्टेरित्याकारको योगो युक्तियस्मिन् तत्ताहशं मनोऽन्तःकरणं युजन् युक्तं कुर्वेन् योगी क्षणान्युहुर्तादुन्यंनीकारक उन्मन्यवस्थाकारको मवातं ॥३९॥

मानार्थ—अन जन्मनीहृद्राका वर्णन करते हैं कि, नेजेंकी वन्नीनिकारूप तारोंको ज्योतिमें जयाँत तारोंको नासिकाके अग्रमागमें संयोग करनेसे मकाशमान जो तेज उसमें संयुक्त करके धुक्वियोंको कि चित्त (कुळेक) उत्तरको करवे और पूर्वोक्त जो अंतरक्श्य बहिःबिष्ट (भीतर कश्य वाहिर बिष्ट) इत्तर योग है जिसमें ऐसा अंतरकरण (मन) उसको युक्त करता हुआ योगी क्षणमार्वेमें उन्मनी अनस्याका कारक होताहै अर्थात् पूर्वोक्त अनस्यासे स्थित योगीकी उन्मनी अनस्याका कारक होताहै अर्थात् पूर्वोक्त अनस्यासे स्थित योगीकी उन्मनीस्त्रा होती है ॥ ३९॥

केचिदागमजालेन केचित्रियमसंकुलैः॥ केचित्तर्केण युद्यंति नैव जानंति तारकम् ॥ ४० ॥

उन्मनीमन्तराऽन्यस्तरणोपायो नास्तीत्याह-किविदिति ॥ कीचच्छाखतन्त्रादिविदः सागच्छति दुद्धिमारोहंत्यथो येभ्य इत्यागमाः दाखतंत्राद्यस्तेपां जालेजीलबद्धंधन-साधनैस्तर्द्धक्तः फल्छेब्रेलंति मोहं प्राप्तुर्वति । तत्रासक्ता वच्यंत इति मानः । केचिद्धेदिनः का निगमसंकुछैनिगमानां निगमोक्तानां संकुछैः फल्बाइल्येध्रुंश्चाति । कीचिद्धेरोपिका-द्यस्तर्केण स्वकल्पिन्युक्तिविद्योपण सुद्धांति । तार्यतीति तार्कस्तं तार्कं तरणोपायं नैव जानंति । उक्तोन्मन्येव तरणोपायस्तं न जानंतीस्यर्थः ॥ ४० ॥

भाषार्थ-अब इसका वर्णन करते हैं कि, उन्मनीके बिना अन्य तरनेका उपाय नहीं है कि कोई शास्त्र और तन्त्र आदिके ज्ञाता आगमनके जाळसे अर्थात निससे बुद्धिमें पदार्थ आजाय उन्हें आगम कहते हैं वे शास्त्र और तंत्रकरोंके समूहसे मोहको प्राप्त होजाते हैं अर्थात जाळके समान वंधनके कर्ती जो शास्त्रतंत्रमें कहेन्द्रये फळ उनमेंही मोहित रहते हैं हनमें आसक्त हुये वंध जाते हैं-चीर कोई निगम (वेट) में वहे जी फलांके समुज्ञयः हिस्सिही मोहित रहते हैं-चीर कोई विदेशिक आदि अपनी करपना कियेहुये जो शक्तिकरा-विदेश तर्क उनसेही मोहित रहते हैं-परन्तु तारकको नहीं जानते हैं अर्थात् संसारसम्बद्धके तरेनका उपाय जो पूर्वाक उन्मनी उसको नहीं जानते हैं-माध्य यह है कि, कोई शाह आर तंत्रके जाहसे कोई वेदोक्त फलांसे कोई तर्कसे मोहित रहते हैं पांतु उन्मनीहरूप तारकको नहीं जानते हैं। ४०॥

> अर्घोन्मीलितलोचनः स्थिरमना नाष्टाग्रद्तेक्षण-श्रेद्राकाविपि लीनताम्रुपनयद्गिष्पंदशावेन यः ॥ ज्योतीरूपमशोपनीनमाक्षिलं देदीप्यमानं परं तत्त्वं तत्पदशेति वस्तु परमं वाच्यं किमञाधिकम् ॥ ४१ ॥

वर्धांन्मीलितेति ॥ अर्धम् उन्मीलिते वर्धांन्मीलिते अर्धांन्मीलिते लोवने चेन स अर्धांन्मीलितलोचनः वर्धांद्वाटिवलोचन इत्यर्थः। स्थिरं निश्चलं मनो चस्य स स्थितमनाः नासाया नासिकाया अग्रेऽग्रमागे नासिकायां द्वाइशांग्रलपर्यते वा द्वे महिते ईक्षणे येन स नासाग्रद्वतेक्षणः । तथाइ वसिष्ठः—'द्वादशांग्रलपर्यते नासाग्रे विमलेंऽवरे । संवि-हृक्षोः मृशाम्यंत्योः प्राणस्रंहो निरुच्यते ॥' इति । निष्पंदस्य निश्चलस्य भावो निष्पं-दमावः कार्योद्रयमनसां निश्चलखं तेन चंद्राको चंद्रस्यांविष लीनतां लीनस्य मावो लीनता लयस्तम्यनयन्यापयन्कार्योद्रयनसां निश्चलस्य माणसंचारमपि स्तंमयितः त्यर्थः । तद्वक्तं माक्न्-'मनो यत्र क्लियेत' इत्यादिष्ठ्वंक्तिवेशेषणसंपत्नो योगी ज्योती-रूपं ज्योतिसालिलप्रकाशकं रूपं यस्य स तथा समञ्जयविज्ञमाक्तराखुत्पचिद्वस्य सर्वकारणमालिलं पूर्णं देवीप्यमानमतिशयेन द्वैन्यत्व इति देवीप्यपानं तत्त्या स्वप्रका-शक परं कार्येद्वियमनसां साक्षणं तक्त्यमनारोपितं वास्तविक्तमस्यर्थः । तदिद्विमिति वक्तमशक्यं पद्यते यस्यते योगिभिगिति वदं परमं सर्वोक्कृष्टं वस्तु आत्मस्वरूपमिति प्रामोति । जन्मन्यवस्थायां स्वस्वरूपसस्यतो योगी भवतीत्यर्थः । अत्राधिकं किं झा-

__भामार्थ-ब्याये डन्मीडिल किये (खोळे) हैं नेन जिसने और निश्वर है मन जिसका और नासिकाके बारह ध्युटपर्यंत अग्रमागमें डगाये हैं नेन जिसने सोई बासिडने कहाई कि; द्वाद्श अंग्रुट पर्यंत निर्माट को नासिकाके अग्रमागमें आकाश उसमें यादे ज्ञान, दृष्टि दोनों महीप्रकार शांत होजाये तो प्राणींका ध्वंद (गति) रूक जाती है-ऐसा योगी और देह इंग्रिय मन इनके निस्पंदमान (निश्चरुता) से चंद्रमा और सूर्यंकी भी छीनताको करताहुआ अर्थात है, मन, इंग्रियोंकी निश्वरुतासे प्राणके संचारको भी रोकताहुआ सोई कहमी आये हैं कि, जहां मनभी विरुप हो जाता है इस पूर्वोंका प्रकारका योगाम्यासी ज्योतिके समान सबका

प्रकाशक-भोर आकाश आदिकी उत्पत्तिके द्वारा सबका कारण और अखिख (पूर्ण) रूप भीर अख्यत प्रकाशमान और देह इंद्रिय मन इनका साक्षीरूप पर और वासाविक तत्त्वरूप जो वह पद है जिसको यह नहीं कह सकते कि, नह यह है- और योगीजन जिसमें आये होस पद कहते हैं- उस परम (सबसे उत्तम) आत्मस्वरूपको प्राप्त होताहि अर्थात उन्मनी अवस्थामें योगी अपने स्वरूपमें दियत होताहै- इसमें अधिक और क्या कहने योग्य हे अन्य सहुजोंकी तो अवश्यही प्राप्ति होती है- मानार्थ यह है कि, जिसके आपे नेत्र खुटे हो मन स्थितहों नासिकाके अग्रमागमें दृष्टि हो और जिसने देह आदिकी निश्चिदतास प्राप्तकोमी छीन करालियाहो ऐसा योगी, ज्योतिस्वरूप सबके कारण, पूर्ण देशियमान साक्षीरूप हो तत्त्व उस परमपदको प्राप्त होताहै इसमें अधिक क्या कहने योग्य है ॥ ४१ ॥

दिना न पूजपेछिंग राज्ञे। चैव न पूजयेत् ॥ सर्वदा पूजपेछिंगं दिनाराज्ञिनिरोधतः ॥ ४२ ॥

उन्मनीमाननाथाः कालनियमाभावमाह-दिवा नेति ॥ दिवा सर्थेसंबारे लिंगं सर्वे-कारणमात्मानम् । 'एतस्मादात्मन वात्त्राद्याः इस्वादि श्चतेः । न पूजयेत न भावयेत् । च्यानमेवात्मपूजनम् । तहुकं वात्तिष्ठे-'च्यानोपहार एवात्मा ध्यानमस्य महा-चैनम् । विना तेनेतरेणायमात्मा लभ्यत एव नो हित । रात्री चंद्रसंचारे च नैव पूजः वेक्षेत्र मावयेत् । चंद्रसूर्यकंचारे चित्तसंथियाभावात् । 'चले वाते चलं चित्तम्' इस्युक्तः स्वात् । दिवारात्रिनिरोधतः सर्वचंद्रा निरुध्य । स्वच्छोपे पंचमी अस्यास्तरिख् । सर्वेदाः सर्वेदिमत् काले लिंगमात्मानं पूजयेहावयेत् । सर्वेचंद्रस्योनिरोधे कृते सुष्टुमांतर्गते प्राणे सनःस्यैयात् । तदुक्तम्-'चुषुम्नांतर्गते वायौ मनःस्यैयी प्रजायते ॥ इति ॥ ४२ ॥

भाषार्थ-अब डन्मनीमाननामें कालके नियमका समाव वर्णन करते हैं कि दिनमें स्थात सूर्यके संचारमें लिगका पूजन न करें अर्थात सबके कारण लिंगक्त आत्माका ध्यान करें सोई कहा है कि, इस आत्मासे आकाश उत्यन हुआ और यहां ध्यानहीं पूजनशब्दें लेग पुष्प आदिने पूजन नहीं सोई वासिडमें गिसेडकीने कहाहि कि, आत्माका उपहार (मेंट) ध्यानहीं है और ध्यानहीं इसका अर्थन (पूजा) है उसके विना यह आत्मा प्रात नहीं होता है और पात्रिमें अर्थात चंद्रमाके वार्त्ममी लिंगक्त आत्माका पूजन न करें क्योंकि, चंद्र और स्वर्थेके वार्त्म विकाश अर्थन होंनिस चित्तमी चलायमान होंनिस चित्तमी चलायमान होंनिस चित्तमी चलायमान होंनाताह और चंद्रम लिंग होनेपर माण सुर्थनाके करके सान कारमें लिंगका पूजन करें कराने होंनिस चित्तमी चलायमान होंनिस चंद्रम निर्माण करके सान कारमें लिंगका पूजन करें कराने स्थाता होंजाती है उस समय लिंगकर आत्माका ध्यान करें सोई कहा है कि, सुरुत्माके अंतर्शत सूर्यके होनेपर मनकी स्थिता होजाती है -भावार्य यह है कि, सुरुत्माके अंतर्शत सूर्यके होनेपर मनकी स्थिता होजाती है -भावार्य यह है कि, सूर्य और चंद्र संचारको रोककर सनकालमें आत्माका ध्यान करें ॥ धर ॥

सन्यदक्षिणनाडिस्थो मध्ये चराते मारुतः ॥ तिष्ठते सेचरी सुद्रा तस्मिन्त्याने न संज्ञयः ॥ ४३ ॥

खेचरीमाह-सच्येति ॥ सच्यवक्षिणनाडिस्यो वामतदितरनाडिस्यो महतो बायुर्वन्न मध्ये चरति यस्मिन्मध्यमदेशे राच्छति तस्मिन्स्ययोत् तस्मिन्मदेशे खेचरी मुद्रा विष्ठते स्थिता मवति । 'मकाशनस्ययाख्ययोश्य' इत्यास्यमपद्म् । न संशयः उत्तेष्ठये संदेहे नास्तीत्यर्थः ॥ ४३ ॥

भाषार्थ-अर खेचरीष्ट्रद्राका रर्णन करते हैं कि, इडा पिंगळा नामकी जो सच्य दक्षिण नाडी हैं उनमें स्थित प्राणवायु जिस भच्य प्रदेशमें गमन करताहै उसी स्थानमें खेचरीष्ट्रद्रा स्थिर होजाती हैं इसमें संशय नहीं है ॥ २३॥

इडापिंगलयोर्भघ्ये जुन्यं चैदानिलं प्रक्षेत् । तिष्ठते खेचरी सुद्रा तत्र सत्यं पुनः पुनः ॥ ४४ ॥

इडापिंगलचोरिति ॥ इडापिंगलचोः सन्यदक्षिणनाडचोर्मध्ये यच्छूर्यं लम् । कर्त् १ स्रिनेटं प्राणवार्धुं यत्र प्रसेत् । जुस्ये प्राणस्य स्थिरीमाव एव ग्रासः । तत्र तस्मिञ्कूर्ये खेवरी सुद्रा विस्ते । सुनः सुनः सत्यमिति योजना ॥ ४४ ॥

माषार्थ-इंडा पिंगला जो सच्य वृक्षिण नाडी हैं उनके मध्यमें जो शून्य (आकाश्) हैं वह शून्य जिसमें प्राणशपुको प्रसले लीर शून्यमें प्राणकी जो लियसा उसकोही ब्रास कहते हैं इस शून्यमें खेचरीमुद्रा लियर होती है यह बात बारंबार सत्य है ॥ ४४॥

सूर्योचंद्रमसोर्मध्ये निराठंबीतरं पुनः ॥ संस्थिता व्योमचके या साँ सुद्धा नाम खेवरी ॥ १५ ॥

स्योचंद्रमसोरिति ॥ स्योचंद्रमसोरिडापिगळ्योमंध्ये निरालंबं यदंतरमवकाश्-स्तत्र । पुनः पारपूराणे । व्योमनां खानां चक्रे समुदाये । धूनव्ये सर्वेक्षानां समन्व-यात् । तहुत्तस्न-'पंचस्रोतःसमिन्वते' इति । या संस्थिता सा मुद्रा खेचरीनाम ॥४९॥॥ भाषाय-मूर्य बीर चंद्रमा अर्थात् इडा और पिगळाके मध्यमं जो निरालंब अंतर (अव-काश्) है इस आकारोंके समुद्रायकर चक्रमें नयोंकि, धुम्हरीके मध्यमें सब आकारोंका समन्वय (मेळ) है सोई कहाहे कि, पांच स्रोतोंसे युक्त भूका मध्य है इस उक्त अवका-श्रमें जो मळीपकार स्थित हो वह खेचरी नामकी मुद्रा होती है ॥ ४९॥

सोमाचत्रोदिता धारा साक्षात्सा शिववस्थमा ॥ पूरयेदतुस्रां दिन्यां सुषुरनां पश्चिमे शुस्रे ॥ ४६ ॥

सोमादिति ॥ सोमार्चद्राधत्र यस्यां खेचयाँ धाराऽसृतधारा उदितोङ्कता. सा खेचरी साक्षाच्छिववञ्चमा शिवस्य प्रियेति पूर्वेणान्ययः । यञ्चलां निर्मलां निरुपमां दिन्यः सर्वेग्डञ्चतमां सुष्ठस्यां पश्चिमे सुले पूर्येत् । जिड्वयेति द्येषः ॥ ४६ ॥ माषाय-निस खेचरीमुद्रामें चंद्रमासे अमृतकी चारा उत्पन्न होती है वह खेचरीमुद्रा साक्षात् हित्वभीको बळम (प्यारी) है और अतुळ अर्घात् निसकी उपमा न हो और दिव्यरूप अर्घात् सब नाडियोंमें उत्तम जो सुपुन्ता है उसको पश्चिम मुखके विषे निह्नासे पूर्ण करें।। ४६ ॥

पुरस्ताचेव पूर्वेत निश्चिता खेचरी भवेत् ॥ अभ्यस्ता खेचरी मुद्राप्युन्मनी संप्रजायते ॥ ४७ ॥

पुरस्ताचैवोते ॥ पुरस्ताचैव पूर्वतोऽपि पूर्वेत । सुपुरमां प्राणेनीत द्वोषः । यदि ति हिं निश्चिताऽसंदिग्धा खेचरी खेचंबीख्या सुद्रा मवेदिति । यदि ते पुरस्तात्माणेन न पूर्वेत तिद्वामात्रेण पश्चिमतः पूर्वेत तीई मूद्धावस्थाजनिका । न निश्चिता खेचरी स्यादिति सावः । खेचरीसुद्राप्यभ्यस्ता सती उन्मनी संम्रजायते चित्तस्य ध्येयाकाराचेवाज्ञयीवस्था मवतीत्यथैः॥ ४७ ॥

साबार्य-जीर पूर्वमुखके विषेमी पूर्ण धरे अर्थात सुमुनाको प्राणसे पूर्ण करे तो निश्चयसे ध्यांत निश्चदेह खेचरी नामकी मुद्रा होती है जीर यदि पूर्वमुखमें प्राणसे पूर्ण न करे और पश्चिम मुख्यें केवल निह्नासेही पूर्ण करदे तो सेचरीमुद्रा मूढ अवस्थाकी पैदा करती है इससे वह निश्चित नहीं है और अभ्यास कीहुई खेचरीमुद्राभी उन्मनी होजाती है अर्थात चित्तके ध्येयाकार होनेसे तुर्याक्स्या होजाती है ॥ ४७ ॥

भुवोर्मेष्ये शिवस्थानं मनस्तत्र विखीयते ॥ ज्ञातव्यं तत्पदं तुर्यं तत्र फाट्टो न विद्यते ॥ ४८ ॥

भुनोरिति ॥ भुनोर्भस्य भुनोर्भतराले ज्ञिबस्यानं ज्ञिनस्य स्वानं ज्ञिबस्य सुस्रक्रिस्यातमोऽनस्यानमिति क्षेत्रः । तत्र तस्यन्त् ज्ञिबं प्रनो लीवते ज्ञिवाकारत्त्विः प्रवाहनद्वति ताचित्रल्यक्ष्यं तुर्यं पदं जाग्रस्त्वमुद्धविष्यश्चतुर्योक्ष्यं ज्ञातन्वम् । तत्र तस्यन् पदं कालः पृत्युनं विद्यते । यदा सूर्येचंद्रयोनिरोधादायुःस्यकारकः कालः समयो नं विद्यत इत्यक्षः ॥ तद्यक्तम् । 'मोक्षो सुद्धना कालस्य' इति ॥ ४८ ॥

भाषार्थ-दोनों भ्रुक्कटियोंके मध्यमें शिवहर ईसरका वा भ्रुक्तद्भ आत्माका} स्थान है उस शिव वा आत्मामें मन र्शन दोताहै अर्थात मनकी चुत्तिका प्रवाह शिवाकार होजाताहै और वह वित्तका रूप तृर्यपद अर्थात जाअत स्था भ्रुक्किस चौथा पद जानना और उस पदमें कार्ल (मृस्य) नहीं है अथवा सूर्य और चंद्रके निरोधसे अवस्थाके क्षयका करक समय नहीं है सोई कह आये हैं कि, मुकुना कार्लक मोगनेदार्की है ॥ ४८ ॥

अभ्यक्षेत्स्त्रेचर्रो ताबद्यावरस्याद्योगनिद्रितः ॥ संप्राप्तयोगनिद्रस्य कालो नास्ति कदाचन ॥ ४९ ॥

अभ्यसेदिति ॥ ताबरतेवर्धि सुद्रासम्यसेत् । याबद्योगनिद्रितः । योगः 'सर्वेद्यति-निरोधः सैव निद्रा योगनिद्राऽस्य संजाता इति योगनिद्रितः तादशः स्यात् । संगातः योगनिद्रा येन स संगप्तिबोगनिद्रस्तस्य कदाचन कॉर्स्मिश्चद्गि समये कालो सृत्युः गौस्ति ॥ ४९ ॥

मापार्य-योगी जबतक योगीनिर्द्रित हो सर्यात् संपूर्ण इत्तियोंका निरोषकःप जो योग वह निद्रारूप जिसको हो वह योगानिद्रित कहाताहै तबतक खेचरीम्रद्राका अभ्यास करे और जिस योगीको योगनिद्रा भकीपकार प्राप्त होगई हो उसका किसी कालमें भी मृत्यु नहीं होती॥४९।

निरार्छ्यं मनः ऋत्वा न किंचिद्ि वितयेत् ॥ स बाह्याभ्यंतरे व्योग्नि यटवतिष्ठति ध्रुवम् ॥ ५० ॥

निरालंबामिति ॥ यो निरालंबमालंबझून्यं मनः कृत्या किंबिद्धि न चितयेत् खेबरीबुद्धायां जायमानायां ब्रह्माकारामित वृत्तिं परमेथेराग्येण परित्यकोद्दित्ययः । स योगी बाह्माभ्यंतरे बाह्य बह्मिये व्याभ्यंतरेऽभ्यंतभेये च व्योग्म्याकाशे प्रद्विच्छति धुवस् । निश्चितमेतत् । यथाकाशे वटो बह्मितव्याकाशपूर्णो मक्ति चया खेबर्यामार्ड-बनपरित्यागेन योगी ब्रह्मणा पूर्णीत्वष्ठतीत्यर्थः ॥ ५० ॥

मापार्थ-चा योगी निराष्टर (निराध्यप) मनको करके किचित् भी चिता नहीं करताहै लयात खेचिएद्रमुक्ति सिंह होनेपर ब्रह्माकार इतिकामी परमेनेराय्येत त्याग करता है वर्द्ध्योगी माहिर कीर भीतरके आकाशमें घटके समान निश्चय कर दिश्ताहि अर्थात जेते वट आकाशके विषय बाहिर और भीतर आकाशसे पूर्ण होताहै तिसी प्रकार खेचरीष्ट्रमुके होनेपर आढंचनके परित्यागसे योगीभी ब्रह्मसे पूर्ण टिक्ताहि ॥ ५० ॥

वाह्यशाखुर्यया छीनस्तया मध्ये न एंश्वयः ॥ स्वस्थाने स्थिरतामेति पवनो मनसा सह ॥ ५१ ॥

वाहोति ॥ वाहो। देहाह्राहर्मेवे। वाह्यपंथा कीनो सवित खेवर्याम् । तस्यांतःप्रवृ-च्यमावात् । तथा मध्यो देहमध्यवती वाह्यकीनो मबित तस्य विहे:पह्त्यभावात् । न संश्चयः । व्यक्तिमत्रयें सेदेहो नास्तीत्यर्थः । स्थीयते स्थितीभूयवेऽस्मिनिति स्थानं स्वस्य प्राणस्य स्थानं स्थैर्याधिष्ठानं त्रक्षांभं वत्र मनसा विचेन सह पवनः प्राणः स्थिरतां निश्चलतामेति प्रामोति ॥ ५१ ॥

मायार्य-खेचरीमुद्राके विषय देहते बाहिरका पत्रन जिस प्रकार छीन होताहै, क्योंकि, उसकी भीतर प्रमृति नहीं होती, तिसी प्रकार देहके मध्यका बायुभी छीन होजाताहै व्योंकि, उसकी बाहिर प्रमृति नहीं होती इसमें संदाय नहीं है किंतु मनसहित पत्रन प्राणको स्थिरताका स्थान जो ब्रह्मस्त्र है उसमें निश्चलताको प्राप्त होजाताहै ॥ ९१ ॥

एवमभ्यसमानस्य वायुमार्गे दिवानिशस् ॥ अभ्यातान्त्रियेते वायुर्धनस्त्रत्रेष छीयते ॥ ५२ ॥ प्रविमिति ॥ प्रमुक्तप्रकारेण वासुमार्गे प्राणमार्गे सुमुक्तायामित्यर्थः । दिवानिशं रात्रिविद्यमभ्यसमानस्याभ्यासं कुनेतो योगिनोऽभ्यासाद्यत्र यसिमलाधारे वासुः प्राणो : जीर्षेते क्षीयते कीयते वायते वा

भाषार्थ-इस पूर्वोक्त प्रकारसे प्राणरूप वायुका मार्ग जो छुष्टमा उसमें राजिदिन अभ्यास करतेहुए योगीके अभ्याससे जिस आधारमें प्राणवायु जीण होजाताहै अर्थात रूय होजाता है

उसीवायुके ल्याविष्ठान (स्यान) में मनभी ळीन होजाताहै ॥ **५२** ॥

अमृतैः प्छावयेदेहमापादत्तरुमस्तकम् ॥ सिद्ध्यत्येव महाकायो महावरुपराक्रमः ॥ ५३॥ ः इति वेचरी ।

अमृतिहिति ॥ अमृतिः सुपिरिनर्थतैः पादत्वलं च मस्तकं च पाद्यलमस्तकम् । दृद्धभ्रं प्राणित्यंसेनांभानाम् इत्येकबद्धावः । पाद्यलमस्तकमाभिन्याप्येत्पापाद्यलमस्तकं द्विमाष्ठात्ययद्वादाः । पाद्यलमस्तकमाभिन्याप्येत्पापाद्यलमस्तकं द्विमाष्ठात्ययद्वाद्वादां कुर्यात । महानुत्कृद्धः कायो यस्य स महाकायः महाती बलप्रमाम्रमे पस्तित्याद्वाद्यो योगी सिद्धचल्येत । असृत्यल्यानेन सिद्धो भवत्येत ॥ ५३ ॥ भाषार्थ-योगी पाद्यल और सत्तक पर्यंत देहको द्वापिर (चन्द्रमा) से निकसे जो समृत वनसे सेचन कर सो तो जत्तम है काया जिसकी और अधिक वल पराक्रम जिसके ऐसा योगी पूर्वोक्त अमृतके लानसे शुद्ध होजाताहै ॥ ५३ ॥

शक्तिमध्ये मनः कृत्वा शक्तिं मानसमध्यगाम् ॥ मनसा मन आछोक्य धारयेत्परमं पदम् ॥ ५८ ॥

शक्तिमध्य इति ॥ शक्तिः कुण्डिली तस्या मध्ये मनः छूत्या तस्यां मनो घृत्या वद्यासं मनः कुत्याययः । शक्ति मानसमध्यागं कृत्या । शक्तिक्यानावेशाच्छितिः मन्स्येकीकृत्य तेन कुण्डिलं वोधियत्वेति यावत् । 'प्रजुद्धा विद्योगेन मनसा मरुता सह, इति गोरसोकोः । मनसांताकरणेन मन् आलोक्य द्युद्धि मनसाऽवलोकनेन स्थिरीकृत्ययेः । पर्पा पदं सर्वोत्कृद्धं स्वरूपं धारयेद्धारणाविषयं कुर्योदित्ययेः ॥ ५४ ॥ भाषार्थ-शक्ति । कुण्डिलंगी) के मध्येमं मनको घरकर अर्थात् सुंहर्णेक आकारका मनको करके और शक्ति क्षेत्रको मनके मध्यमें करके अर्थात् श्रिक्ति । जोविक्ति मनके मध्यमें करके अर्थात् कुर्योत् स्वरूपं । परमायक्षेत्रका मनके परमायक्षेत्रका मनके परमायक्षेत्रका मनके परमायक्षेत्रका मनके स्थानक स्यानक स्थानक स्थ

खमध्ये छुद चात्मानमात्ममध्ये च सं छुद्ध ॥ सर्वे च खमयं कृत्वा न क्लिंचदृषि चिन्तचेत् ॥ ५५ ॥ स्तमध्य इति ॥ सिमित्र पूर्ण ब्रह्म स्वं तन्मध्ये आत्मानं स्वस्त्रस्यं कुरु । ब्रह्माह्यं मिति भावयेत्यर्थः । आत्ममध्ये स्वस्वरूपे च स्वं पूर्णं ब्रह्म कुरु । ब्रह्मं ब्रह्मोति च मावयेत्यर्थः । सर्वे च स्वमयं कृत्ता ब्रह्ममयं विभाव्य किमपिन चिंवयेत् । ब्रह्मं ब्रह्मे-ति ध्यानगपि परित्यजोदित्यर्थः ॥ ६५ ॥

मापार्य-साकाशके समान पूर्ण जो ब्रह्म उसके विषे अपने आत्माको करके अयात ब्रह्म में हुँ, ऐसी भावना करके अपने रूप स्वरूप आत्मामें पूर्ण ब्रह्मको करो-में ब्रह्म हूँ ऐसी भावना कर, और संपूर्ण पर्पक्को ब्रह्मपय करके सर्वात ब्रह्मरूप विचारक किसीकीमी चिता न करें अर्थात में ब्रह्म हूँ इस ध्यानकामी परित्याग करते ॥ ५५॥

अन्तःशून्यो वहिःशून्यः शून्यः कुंभ इवांवरे ॥ अन्तःपूर्णो वहिःपूर्णः पूर्णः कुंभ इवार्णवे ॥ ५६ ॥

एवं समाहितस्य स्वरूपे स्थितियाह-जनतःश्च्य इति ॥ मन्तः अन्तःकरणे शून्यः । महातिरिक्तवृत्तेस्मताहितीयशून्यः । बहिर्तःकरणाद्धहिरपि शून्यः । द्वितीयादर्शनात् । मंबरे जाकाशे क्रम्मो घटो यथांतर्वहिःशून्यस्तद्वेतःकरणे हत्तः काशे बायुपूर्णः मदाकासत्वृत्तेः स्थानद्वस्तान्यस्य । वहिः पूर्णाञ्चाः स्रामाहिहे वया-काशाद्वहित् पर्णाः सत्तवा महातिहित्या-काशाद्वहित् पर्णाः । सर्णमे तस्द्वे क्रम्मो घटो यथा तर्वतो जलपूर्णा भवती-स्वर्ये समाधिनिष्ठो योगी प्रक्षपूर्णाः भवती-स्वर्ये ॥ ५२ ॥

बाह्याचिता न कर्तच्या तथेवांतरचितनम् ॥ सर्वचितां परित्यज्य न क्षिचिद्दपि चितयेत् ॥ ५७ ॥

वाहावितीत ॥ समाहितन योगिनत्यध्याहारः । वाहाविता वाहावियया चिन्ता न कर्तव्या तथै वाहाविताकरणवदांतराचितनमांतराणां मनसा परिकलिपतानामाञ्चामोद्द-कसीधवाटिकादीनां चिंततं न कर्तव्यामिति विद्यविपरिणामेनान्वयः । सर्वीचेतां वाह्या-भ्येतर्राचितनं परित्यच्य किंतचेदापं न चिंतवरेग्यविद्यायेणात्माकारवृत्तिमपि परित्यनेत । तेत्वाम स्वस्थाविधितेरूपा जीवन्यस्थितंत्रक्यां मात्रः ॥ ५७ ॥ भापार्थ-समाथिमें स्थित योगी बाहिस्के माठा, चंदन खादि विपर्योको चिंता न करे और तिसी प्रकार अंतःक्रणमें मनसे कल्पना किये जो आदामोदक, क्षेतमंदिर, वाटिका आदि हैं उनका भी चिन्तन न करे इस प्रकार बाहर भीतस्की सम्पूर्ण चिंताओंका परित्याग करके किंचित भी चिंता न करे सर्थात् परमंदैराम्यसे ब्रह्माकारहत्तिकामी परित्याग करदे क्यांकि ब्रह्माकारहत्तिका त्याग अपने स्वरूपमें स्थितिक्रप मुक्तिजीवन समयमें ही हो जाती है ५७॥

संकरपमात्रकठनेव जगरसमयं एंकरपमात्रकठनेव मनोविद्यासः ॥ संकरपमात्रमतिम्रुरसूज निविकरप-माश्रिस्य निश्चयमवास्तुहि राम ज्ञांतिम् ॥ ५८ ॥

वाह्याभ्यंतर्गांचतापरित्यागे शांतिश्च भवतीत्यत्र वसिष्ठवाच्यं प्रमाणयति—संकल्येति । संकल्पो मानसिको व्यापारः स एव संकल्पमात्रं तस्य कलनेव रचनेवेदं दृश्यमानं समग्रं जगत् वाह्यप्रपंचो मनोमानकृतिपत्त इत्यपंः । मनसो मानसस्य विद्यासो नाना-विषयाक्तारुकल्पना आशामोदकसिधवाटिकादिकल्पनाल्पो विद्यासः संकल्पमात्रकल्पनेव । मानसः प्रपंचोऽपि संकल्पमात्रस्वनिवेद्ययः । संकल्पमात्र वाह्याभ्यंतरप्रपंचे या मानसः प्रपंचोऽपि संकल्पमात्रस्वनिवेद्ययः । संकल्पमात्र वाह्याभ्यंतरप्रपंचे या मानसः प्रपंचोऽपि संकल्पमात्रस्वनिवेद्ययः । संकल्पमात्र वाह्याभ्यंतरप्रपंचे या मानसः मानसानि । विद्यान्यकल्पना विकल्पः । आत्मानि कर्त्यमोक्त्यस्वित्यव्यः । संकल्पमात्रीविज्ञातीयस्वात्यभिद्वेद्यान्यस्वत्यस्व वास्यानिकल्पान

मापार्थ-वाह्य और आम्पंतर वितालोंके परित्यागरे शांति भी होती है इसमें विसिष्ठके वाक्यका प्रमाण देते हैं, कि, मानसिक व्यापाररूप जो संकल्प है उसकी रचनारूपही यह इस्पमान संपूर्ण जगत है अर्थात वाह्य प्रपंच मनसेही किएत है और आशामोदक श्वेतमीद्दर वाटिका आदि नाना प्रकारेक विषयोंकी कल्पनाका जो विकास है वहमी संकल्पकीही रचनाहै क्याँत मानसप्रपंचमी संकल्पकीही रचनाहरूप है इससे हे राम ! संकल्प मानमें जो मात अर्थात बाह्य और आम्यंतर प्रपंचमें संकल्प ग्रुडि है उसको त्याग दे कदाचित कही कि, कि कर्वा कर्क इससे कहते हैं कि, निविकल्पके आश्रय होकर अर्थात आन्याके विषे जो कर्ता भोता प्रखीई प्रथी—स्वातीय—विजातीय—वर्गत मेद—देश—काळ-वरहन प्रश्निक याशिष्ठ कल्पना है उसके है उनसे रहित जो निविकल्पस्कूप अर्थात प्रशिक्त कालाव है उस स्वातीय जीवन करते है तम ! निव्ययसे हू अर्गिवको प्राप्त हो उस शांतिसे फिर सुलको भी प्राप्त हो जायगा—सोई मगवान्ते गीतामें कहा है कि विचारहीन प्रश्नको शांति नहीं होती हैं और अर्गात मनुष्यको सुल कहांसे होताहै ॥ ६८ ॥

कर्प्रमन्छे यद्वत्सेंधवं सिट्छे यथा ॥ तथा संधीयमानं च मनस्तत्त्वे विकीयते ॥ ५९ ॥

क्ध्र्मिति ॥ यह्यथाऽनलेऽत्री संधीयमानं संयोज्यमानं कर्ष्ट्रं विलीयते विशेषेणः लीयते लीनं भवति । वान्याकारं भवति । वया सल्लि बल्ले संधीयमानं सेंधरं लवणं विलीयते लवणाकारं परित्यज्य जलाकारं भवति तथा तहक्ते आत्मिन संधीयमानं कार्यमाणं मनो विलीयते आत्माकारं भवति ॥ ५९ ॥

भापार्थ-जेसे कपूर अग्निमं संयोग करनेसे विशेषकर छीन होता है अर्थात अग्निके आकार हो जाताह और जैसे जरूम संयुक्त किया संघव छवण विकीन होता है अर्थात छवणके आकारको त्यागकर जराकार होजाता है-तिसी प्रकार तत्त्वकर आत्मामें संयुक्त किया मन विद्यान होता है। अर्थात आत्माकार हो जाता है ॥ ९९ ॥

ज्ञेपं सर्वे प्रतीतं च ज्ञानं च मन उच्पते ॥ ज्ञानं ज्ञेपं समं नष्टं नान्यः पंथा द्वितीयकः ॥ ६० ॥

मनसो विरुपे जाते द्वेवमाप छोषत इत्याह त्रिभिः-होयमिति ॥ सर्व सक्छं ह्रेयं ह्ञानाई मतीतं च ङ्गातं च इालं च इदं सर्व मन उच्यते । सर्वस्य मनःकरननामान-त्वान्मनःशब्देनोच्यते । हानं होयं च समं मनं। विलीयते मनसा सार्धं नष्टं यदि दाई द्वितीयकः द्वितीय एव द्वितीयकः पंथा मनोविषयो नास्ति । द्वैतं नास्तीति फालिताधेःष्ठ०

भापार्थ-अब मनके छ्य होनेपर हेतकाभी ख्य वर्णन करते हैं कि संपूर्ण जो क्षेत्र (ज्ञांबर्क योग्य) अर्थात ज्ञात प्रतीयमान है और ज्ञान यह सब मन कहाता है क्योंकि थे सब मनकी करपनामात्र है यदि ज्ञान सीर ज्ञेय मन साहत नष्ट हो जाय तो ट्रसरा मार्ग नहीं है क्यांत् मनका विषय जो हेत है वह नहीं रहता है ॥ ६० ॥

मनोद्दर्यामेदं सर्वे यर्दिकचित्तस्वरावरम् ॥ मनसो ह्यन्मनीभावाद्द्वेतं नेवोषरुभ्यते ॥ ६३ ॥

मनोहस्यमिति ॥ इद्युष्टम्यमानं यास्त्रिचिद्यात्कमापि चरं ज्ञाममचरं स्थादरं चर् चाचरं च चराचरं ताम्यां सङ्घ वर्तत इति सचराचां यज्ञायत्तवे मनोहस्यं मनजा दृश्यम् । मनःसंकलपमात्रमित्यर्थः । मनःकलपनासन्ते मतीतिस्वद्मावे चाप्रतितिर्भ्रोत एव सर्वे जगत् । भ्रमस्य प्रतीतकश्रीरत्वात् । न च बौद्धमत्प्रक्षाः । भ्रमाविष्ठानत्य ब्रह्मणः सत्यत्वाम्युप्यमात् । सनस टन्मनीमावाद्विष्ठयद्वितं भेदः नैवीपळम्यते नैव प्रतीयते । द्वेतभ्रमह्तोमनःशंकलपस्यामावात् । हि तद्वेतवव्ययम् ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—यह दीखता हुआ जो स्थावर जंगम (चराचर) रूप सहित जगत जो कुछ है वह सब मनसे देखने योग्य है अर्थात मनसे करियत है अर्थात मनकी करपना होनेषर प्रतीत होताहै और करपनाके अभावमें प्रतीत नहीं होताहै इससे अमरूपहीं है और अमका क्रेस्ट्र प्रतीतिमान होता है कदाचित कही कि ऐसे कहोगे तो बीडमतका प्रसंग होजायगा सो अंक नहीं क्योंकि, असके अधिष्ठान ब्रह्मको सत्य मानते हैं जीर उक्त मनके उन्मनीमाव (बिख्य) से द्वेत (भेद) प्रतीतही नहीं होताहै क्योंकि, द्वेत अमका हेतु जो मनका संकृत्य है उसका अभाव है ॥ ६१॥

ज्ञेयवस्तुपरित्यागाद्धिख्यं याति मानसम् ॥ मनसो विख्ये जाते कैवल्यमवशिष्पते ॥ ६२ ॥

न्नेयमिति ॥ नेयं ज्ञानविषयं यद्वस्तु सर्वे चराचारं यद्वद्वयं तस्य परित्यागानामरू-पारमकृत्य तस्य परिवर्जनादिल्यं साचिदानंदरूपात्माकारं भवति मनतो विलये जाते सति कैवल्यं वेत्रलस्यात्मनो भावः कैवल्यमवशिष्यते । अद्वितीयात्मस्यरूपमवशिष्टं भवतीत्यर्थः ॥ ६२ ॥

भाषार्थ-ज्ञानका विषय जो चराचररूप दृश्य है उसके परित्यागसे अर्थात् नामरूपात्मंक चगतके वर्षितंत करनेसे मन विख्यको प्राप्त होजाता है अर्थात् सिच्चिदानंदरूप आत्माकार होजाता है और मनका विख्य होनेपर केवल्य रोप रहजाता है अर्थात् अदितीय आत्मारू-यही शेष रहजाता है ॥ ६२ ॥

ष्वं नानाविधोपायाः सम्यक्स्वान्त्रस्वान्यताः ॥ समाधिमार्गाः कथिताः पूर्वाचार्येर्महात्मस्यः ॥ ६३ ॥

एरिनाति ॥ एर्यन्तर्वर्थ्यं वहिर्देष्टिरित्यायुक्तप्रकारेण महान् समाधिपरिश्लीव्सरुद्धः व्यात्मांतःकरणं येषां ते महात्मानस्तेमेहात्मान्नः पूर्वं चं ते आचार्याश्च पूर्वाचार्याः मस्प्रेद्दाद्दपस्तैः समाधिश्चत्तवृत्तिनिरोधस्य मार्गाः प्राप्त्युपायाः कथिताः । कीहशाः समाधिमार्गाः । नानाविधोपायाः नानाविधा उपायाः साधनानि येषां ते तथा सम्यक् समीचीनवया संशयविपर्ययाहित्येन यः स्वानुमव आस्मानुभवस्तेनान्त्रिता युक्ताः ६३

भाषार्थ-इस प्रकार नानाप्रकारके उपाय (साधन) है जिनके और भर्कीप्रकार जो स्वाद-भव अर्थात संशय और विपर्ययसे रहित आत्मातुमव उससे ग्रक्त चित्तहत्तिनिरोषकर समा-चिक्त मार्ग अर्थात प्राप्तिके उपाय पहिले महात्मा क्षाचारोंने कहे हैं अर्थात समाप्रिके अभ्या-ससे महाद (ग्रुद्ध) है आत्मा (अन्तःकरण) जिनका ऐसे महात्मा मत्स्येंद्र आदि पूर्वा-चार्योंने अपने अतुमबुसे पूर्वोंक्त समाधिके मार्ग वर्णन किये हैं ॥ ६३ ॥

सुपुरनाये क्वंडिटन्ये सुघाये चन्द्रजन्मने ॥ मनोत्मन्ये नमस्तुभ्यं महाज्ञत्तये चिहारमने ॥ ६८ ॥

सुषुम्राविभ्यः कृतकृत्यस्ताः प्रणमति—सुषुम्राये शति ॥ सुषुम्ना मध्यनाहीतस्यै इंडक्रिन्ये आधारसन्त्ये चन्द्राद्ध्मध्यस्याजनम् यस्याः तस्ये सुधाये पीयूषाये मनो-न्यन्ये तुर्योवस्थाये चिच्चैतन्यमातमा स्वरूपं यस्याः सा तथा तस्ये । महती जडानां कार्यद्वियमनसां चेतन्यसंपादकत्वातसर्वोत्तमा याः शक्तिश्चच्छक्तिः पुरुपरूपा तस्यै। त्रस्यमिति प्रत्येकं संबद्धते । नमः प्रह्मीमायोऽस्त्र ॥ ६४ ॥

भापार्य-सपुन्ना आदि नाडियोंसे छत्तक्रत्य हुये आचार्य उनको प्रणाम करते हैं कि, मध्य-नाडीक्रप तपुत्राको और आधारशक्तिकृप छंडाँछनीको और चन्द्रमासे है जन्म जिसका ऐसी सुपाको और तुर्याक्त्याह्रप उस मनोन्मनीको नमस्कार है जो मनोन्मनी देह इंद्रिय मनहरूप नो जड पदार्थ है ठनकोभी नेतनताकी संपादक होनेसे सबसे वडी शक्ति!(वित् शिक्त पुरुप) रूप है सीर जो देतन आत्मा स्वरूप है-इस श्लोकमें तुमको नमस्कार है इस पदका सर्वत्र संबन्ध है ॥ ६४ ॥

अश्वयतत्त्ववोधानां मुढानामपि संमतम् ॥ श्रोत्तं गोरक्षनाथेन नादोपासनग्रच्यते ॥ ६५ ॥

नानाविधान् समाध्युपायातुनत्वा नादानुसंधानरूपं मुख्योपायं प्रतिजानीते-सञ्च क्योते॥ अन्यत्पन्नस्वादशश्यस्तस्ववोधस्तस्वज्ञानं येषां ते तथा तेषां मुद्धानामनधीतानां संमदम् । व्यपिशन्दातिसुदार्थातानामिति गम्यदे । नोरक्षनायेन प्रोक्तामित्यनेन महद्व-फालादपादेयत्वं गम्यते । नादस्यानाहतव्यनेहपासनेऽनुसंधानरूपं सेवनमुच्यते राध्यते ॥ ६५ ॥

भाषार्थ-अनेकप्रकारके समाधिक उपार्थाको कहकर नादानुसंधान रूप सुख्य जो उपाय है उसके वर्णनकी मतिज्ञा करनेहैं। कि, अन्युरपत्र (मूर्ख) होनेसे जिनको तत्त्वज्ञान अञ्चलप हैं उन मुहोंकोभी जो संमत है और अपिकान्द्रसे पठित मनुष्योंको तो संमत क्यों न होगा ऐसे गोरक्षनायके कहेहुये नाहोपासन अर्थात् धनाहतध्वनिका सेवन वर्णन करते हैं और यह नावृका अनुसन्धान गोरक्षनाय महान् पुरुषने कहाहै इससे अवश्य करने योग्य है ॥ ६५॥

श्रीआदिनाथेन सपादकोटिख्यप्रकाराः कथिता जयंति ॥ नादानुसंघानकमेकमेव मन्यामहे मुख्यतमं स्थानाम् ॥ ६६ ॥

श्रीआदिनायेनेति ॥ श्रीआदिनायेन शिवन कथिताः प्रोक्ताः पादेन चतुर्योज्ञेन सह वर्तमानाः कोटिसंख्याका छपप्रकाराश्चित्तछयसाधनभेदा जयत्युत्कर्षेण वर्तते । वयं द्व नादानुर्वितनमेव एकं केवर्छ लयानां लयसाधनानां मध्ये मुख्यतममतिश्चेन मुख्ये मन्यामहे जानीमहे उत्क्रष्टानां रूयसाधनानां मध्ये उत्क्रप्रतमत्वाहोरसामिमसत्त्वाच नादानुसंधानमेव अवस्यं विधेयामिति मावः ॥ ६६ ॥

भाषार्य-श्रीआदिनाय (शिवनी) ने सवा करोड चित्तके ल्यके प्रकार कहे हैं नीर दे सर्वेत्तम रूपसे वर्तते हैं हम तो एक नादानुसंघान (नादका सेवन) कोही केवल अत्यंत <u>झ</u>ख्य रुपके साधनोंमें मानते हैं क्योंकि, वह सबसे उत्तम है और गोरक्षनाथको अभिमतः है इससे अवश्य करने योग्य है ॥ ६६ ॥

मुक्तासने स्थितो योगी मुद्रां संघाय शांभवीस् ॥ ज्ञृणुयाद्क्षिणे कर्णे नादमंतःस्थमकर्षाः ॥ ६७ ॥

शांमवीसुद्रायां नांबाबुसंधानमाइं-सुकासन इति ॥ अक्तासने सिद्धासने स्थितोः योगी शांमवीं सुद्राम् 'संतर्लेक्यं बाहेर्देष्टिः' इत्यादिनोक्तां संधाय कृत्वा । एकधीरेका-श्राचित्तः संत् दक्षिणे कर्णेऽन्तःस्थश्चंयुग्नानाड्यां संतमेव नादं श्र्णुयात् । तहुक्तं त्रिषु-स्तांससुच्चेये-'आदौ मत्तालमालाजनित्तरसमस्तारसंस्कारकारीं नादोऽसौ बांशिकस्य निलमारेतलसईशनिःस्वानत्वस्यः। घंटानादानुकारी तद्यु च जलधिय्यानधीरो गमीरो गर्जेन्यकन्यवीपः पर इह कुहरे वसैते ब्रह्मनाड्या' इति ॥ ६७ ॥

भापार्थ-अब शांभवी सदासे नावातुसंघानका वर्णन करते हैं कि, मुक्तासन सिद्धासनमें खित बोगी भीतर एवच कीर वाहिर डांट इत्यादि अयसे कही हुई शांभवीसदाको करके और एक्सम्राचित होकर दृक्षिणकर्णके विषे सुप्तनानाडीमें वर्तमान जो देहके भीतरका शब्द है उसकी होने सोई विद्यासमाहक्वपमें कहाँहै कि, तारके संस्कारका करते नाद प्रथम तो उन्मत्त अमरीके समहतका जो शब्द उसके समान और फिर पवनसे भरेहुये शोभित वंशके शब्दकी सुव्य कीर किर, घंगके शब्द समान और सम्बद्धके शब्दकी तुल्य धीर और फिर गर्वतेहुये भेवका जो शब्द उसके समान और सम्बद्धके शब्दकी तुल्य धीर और किर गर्वतेहुये भेवका जो शब्द उसके समान गर्भार ऐसा प्रवासक सह देहमें सुप्रन्तानाडीके छिद्रमें वर्तता है ॥ ६७ ॥

श्रवणपुरनयनपुगुरुप्राणसुलानां निरोधनं कार्यम् ॥ शुद्रसुषुरनासरणे स्फुटममङः श्रूयते नादः ॥ ६८ ॥

पराङ्गुलीमुद्रया नादानुर्सधानमाह्—श्रवणेति ॥ श्रवणपुटे नयनयोर्नेत्रयांपुर्यलं सुग्नं प्राणक्षदेन प्राणपुटे मुखमास्यमेषाम् । द्वंदे प्राण्यंगत्वादेकबद्भावे प्राप्तेप्रध सर्व-स्थापि द्वंद्वेकबद्भावस्य वैकलिपककत्वात्र भवति । तेषां निरोधनं करांमुलिभः कार्यम् । निरोधनं चेत्थम्—अंग्रुष्ठम्यामुमी कर्णे। तर्जनीभ्यां च चशुपी । नातापुटी त्रयान्या-स्यां प्रच्छाय करणानि च इति । चकाराचदन्याभ्यां मुख प्रच्छायोत समुचीयते । मुद्धा प्राणायामेर्भव्यदिता या सुपुम्नासर्गणः सुषुम्नापद्धतिस्तरयाममलो नादः सुष्टं व्यक्तं श्र्यवे ॥ ६८ ॥

मापार्थ-अब पराङ्मुखीनाडींसे नादके अनुसंघानका वर्णन करते हैं कि, क्यें ऑर नेत्र जीर त्राण इन तीनोंके युगल (दोनों छिद्र) और मुख इनका निरोध करे अर्थात (हायकी अंगुलियोंसे इनको रोके और निरोध भी इस वचनके अनुसार करें कि अंगुलियोंसे दोनों कानों-का और तजिन्योंसे दोनों नेत्रोंका और मध्यमाओंसे नासापुटोंका और चकारके पढ़ेनसे तर्ज-नियोंते गुखंका आच्छादन करें इस प्रकारका इंद्रियोंका निरोध करनेसे प्राणायामोंसे मरूराहत जो स्रुपनाका मार्ग है उसमें स्कुट (प्रत्यक्ष) अमल (स्पष्ट) नाद सुनताह ॥ ६८ ॥

आरंभश्र घटश्रेव तथा परिचयोऽपि च ॥ निष्पत्तिः सर्वयोगेषु स्यादवस्थाचतुष्टयम् ॥ ६९ ॥

यय नादस्य जतनोऽवस्याः ग्राह-श्रारंमश्रेति ॥ आरंभावस्या घटावस्या परिचयाः वस्या निष्पत्त्यवस्था इति । सर्वयोगेषु सर्वेषु चित्तवृत्तिनिरोधोपायेषु आंभव्यादिषु

व्यवस्थाचतुष्ट्यं स्थात् । चचैवतथापिचाः पादपूरणार्थाः ॥ ६९ ॥

भाषार्थ-अव नादकी चार अदस्याओंका वर्णन करतेहें कि, आरंभ अवस्था-बटावस्था-परिचयावस्था और निष्पत्ति अवस्था ये चार अवस्था संपूर्ण चित्तवृत्तिके निरोधकूप योगोंमें होती हैं अर्थात सामग्रीमुद्रादिकोंमें ये चारही अवस्था होती है ॥ ६९ ॥

वयारंभावस्था ।

ब्रह्मत्रंथेभेवेद्भेदो ह्यानंदः शून्यसंभवः ॥ विचित्रः क्वणको देहेऽनाहृतः श्रूयते ध्वनिः ॥ ७० ॥

तत्रारमावस्यामाह-त्रक्षप्रयोरीति ॥ त्रक्षप्रयोरनाहतचके वर्तमानाया मेदः प्राणाया-माभ्यातेन भेदनं यदा भवेत्तदेति यत्तदोरध्याद्वारः। व्यानंदयतीत्यानंदः व्यानंदजनकः हुन्ये हृद्याकाहो संभवतीति हुन्यसंभवी हृदाकाहोत्पन्नो विचित्रो नानाविधः कणी भूपणिननदः स एव कणकः भूषणीननदसदश इत्यर्थः । 'भूषणानां तु शिजितम् । निकाणो निकणः काणः कणः कणनमित्यपि इत्यमरः । अनाहतो ध्वनिरनाहतो निर्होदो देहे देहमध्ये श्रूयते श्रवणाविषयो भवतीत्वर्थः ॥ ७० ॥

मापार्थ-उन चारामं आरंभादस्या जो सबसे प्रथम हे उसका वर्णन करतेहैं कि, अनाहत-पक्रमें वर्तमान ब्रह्मग्रंथिका जब प्राणायामांके अभ्याससे भेद होताहे तब आनंदका उत्पादक सीर हदयाकाजारूप जन्यमें उरपत्र-और अनेकविध और भूपणांके शब्दकी तत्य-अनाहत अर्थात् विना ताडनासे उत्पन्न ध्यानि (शृब्द्) देहके मध्यमें सुनता है-इस श्लोकमें कण-ज्ञन्द्रसे भूपणोंका ज्ञान्द्र-इस अमरके श्लोकसे हेना कि, भूपणोंके ज्ञान्द्रको ज्ञिजित-निकाण-

निकण-काण कण कजन कहतेहैं ॥ ७० ॥

दिन्यदेहश्च तेजस्वी दिन्यगंधस्त्वरोगवाच् ॥ संपूर्णहृद्यः ज्ञुन्य आरंशो योगवान्भवेत् ॥ ७१ ॥

दिव्यदेह इति ॥ ग्रुन्ये हदाकाशे य व्यारंभो नादारंभस्तास्मिन् सति हदाकाश्रवि-शुद्धाकाशञ्चमध्याकाशाः शून्यातिशृन्यमहाशृन्यशब्दैर्व्यवह्यिते योगिमिः संपूर्णहृदयः प्राणवायुना सम्यक् पूर्ण हृदयं यस्य स तथा बानदेन पूर्णे हृदय योगवान् योगी दिन्यो रूपलावण्यवलप्रंपन्नो देहो यस्य स दिन्यदेहः तेजस्वी अतापवान् दिन्यगंधः दिन्य उत्तमो गंधो यस्य स तया अरोगवान रोगरहिता मेनेटिति संबंधः ॥ ७१ ॥

मापार्थ-इदाकाशरूप शृत्यमें आरंभ (नाद्का प्रारंभ) होनेपर अर्थात् यदि इदयमें नादकी प्रतीति होय तो-प्राणवाधुसे मर्छोप्रकार पूर्ण है इदय जिसका और आनंदसे पूर्ण इद-यके होनेपर योगी रूपछावण्यसे संपन्नरूप दिव्यदेह होताहै और तेनस्वा (प्रतार्भ) और उत्तम गंपवात् और रोगोंसे रहित होताहै यहां शृत्यसे इदयाकाश इसिष्टिय कहाहै कि इदा-काश विश्वदाकाश श्रुद्धाटिमध्यका आकाश इन तीनोंको क्रमसे शृत्य अतिशृत्य महाशृत्य शब्दोंसे व्यवहार योगीजन करते हैं ॥ ७१ ॥

जय घटावस्था ।

द्वितीयायां घटीकृत्य वाद्यर्भवति मच्चगः ॥ इडासनो भवेद्योगी ज्ञानी देवसमस्तदा ॥ ७२ ॥

घटावस्थामाह्-द्वितीयायामिति ॥ द्वितीयायां घटावस्थायां वायुः प्राणः घटीकृत्य व्यात्मना सहायानं नादांविद् चिकीकृत्य मध्ययो मध्यचक्रमतः कण्ठस्थाने मध्यचक्रम् । तदुक्तमनेव जालंधावंधे—'मध्यचक्रमिदं त्रेयं पोडहााधार्यधनम्' इति । यदा भवेदि- स्थयाहारः । तदास्थामवस्थायां योशी योगाभ्याक्षी दृढमातनं वस्य स दृढासनः स्थि- सस्यो हानी पूर्वोपेक्षया कुश्चलुद्धिदेवसमी स्थयलाण्याधिक्याद्वेततुल्यो भवेत् । तदुः क्रियोक्षस्याक्षेत्रस्याक्ष्मायानी नादांविद् जीवात्मपरमात्मनोः । मिल्लिस्य घटते यस्माचस्मात्स घट उच्यते ॥ 'इति ॥ ७२ ॥

भापार्थ-अव घटावस्थाको कहते हैं कि, इसिरी घटावस्थामें प्राण वायु अपने संग अपान खीर नाद विंदु इनको एक करके क्रग्रस्थानके थिये वर्तमान जो मध्यचक उसमें गत हो (पहुँच) जाता है सोई जालंघर बन्धमें कह खाये हैं कि, सोव्यह आधार हैं चंपन जिसका ऐसा यह मध्यचक जानना अर्थाद यह पूर्वोक्त अवस्था होनाथ तो योगी उस अवस्थामें इड (स्थिर) आसन जीर ज्ञानी अर्थाद पूर्वेकी अपेकासे कुश्लखुद्धि और इस छावप्यकी अधिकतासे देवतुत्य होजाता है सोई ईश्वरोक्त राजयोगमें कहा है कि, जिससे प्राण अपान नाद विंदु जीवातमा परमात्मा इनको मिलकर यह घटती है तिससे घटावस्था कहाती है ॥ ५२॥

विष्णुप्रंथेस्ततो भेदात्परमानंद्रसूचकः ॥ व्यतिज्ञूत्ये विमर्देश्च भेरीज्ञान्द्रस्तया भवेत् ॥ ७३ ॥

विष्णुअंघीरिति ॥ ततो ब्रह्मप्रंथिमेदनानंतरं विष्णुअंघेः कण्ठे वर्तमानायां भेदारकुं अकैमेंदनात्परमानंदस्य माविनो ब्रह्मानंदस्य सचको ज्ञापकः । ञातेज्ञून्ये कण्ठानंकाशे विष्यदें उनेकनादसंग्रदें मेर्योः शब्द इव ज्ञब्दो मेरीज्ञब्दो मेरीनादश्च तदा तिसम्ब काले मवेत् ॥ ७३ ॥

भाषार्थ-फिर ब्रह्मग्रंथिभेदनके अनन्तर कष्ठके विधे वर्तमान जो विष्णुग्रंथि है उसके भेदसे अर्थाद र्जुमकप्राणायामाँसे विष्णुग्रंथिके खुळनेपर होनेवाळा जो परमानंद (ब्रह्मानंद)ह उसकी सूचक (ज़पक) अतिशून्यरूप कण्डाकाशमें विमर्द अर्थोव भेरीके शुद्ध समान अनेक नार्दोको संमर्द और भेरीका शुद्ध इस समय होते हैं ॥ ७३ ॥

व्यथ परिचयानस्था ।

त्तियायां तु विज्ञेयो विद्ययोमर्दछन्वानिः ॥ महाज्ञून्यं तदा याति सर्वेसिद्धसमाश्रयम् ॥ ७८ ॥

पौरच्यावस्थामाह सार्धद्राभ्याम्— जृतीयायामिति ॥ तृतीयायां परिचयावस्थायां विहायोमद्र स्वानीविहायसि हमस्याकारो मर्दछरम् वाद्याविद्योमस्य स्वानीविहायसि हमस्याकारो मर्दछरम् वाद्याविद्योमस्य स्वानीविहायसि हमस्याकारो मर्दाश्य स्वानाविहायस्य सर्वेसिद्धिसमाश्र्यं सर्वेसिद्धिसमाश्रयं सर्वेसिद्धिसमाश्रयं सर्वेसिद्धिसमाश्रयं स्वानम् । तत्र संयमाद्याणमादिनाते महासूर्यं हमस्याकारां याति गच्छति प्राण इति होदः ॥ ७४ ॥

भापार्थ-सब सडाई श्रोक्तेंसे परिचयातस्याका वर्णन करते हैं कि, तीसरी परिचयावस्यामें मुख्यिक मध्यरूप सावताओं मर्कुलनाम बावतीकीय (डोल) की दमनी विशेष करके जाननी सीर उस सावताओं मर्कुलनाम बावतीकीय (डोल) की दमनी विशेष करके जाननी सीर उस समझ्य जो (खान) महा-कृत्य है, श्रूमध्याकाश्रू ए उसमें पहुंच जाता है क्योंकि महाजूत्यमें वायुका स्थम करनेसे क्योंकमा सावि सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है॥ ७४॥

चित्तानंदं तदा जित्वा सहजानंदसंभवः ॥ दोपदुःसजराज्याधिक्षधानिद्वाविवर्जितः ॥ ७६ ॥

चित्तानंत्रमिति ॥ चित्तानंदं नाद्विषयांतःकरणञ्जतिकन्यं द्वुखं जित्त्वामिभूय सह-जानंदर्वमवः सहजानंदः स्वामाविकात्मप्रस्तं तस्य संमव आविभावः स दोषा घाताप-त्तकता दुःखं जजन्या वेदना आध्यात्मिकादि च जरा चुद्धावस्था व्याधिकारादिः क्षुषा इसका निद्रा स्वाप पत्तिर्विवर्षितो राहेतस्वदा योगी मवतीति ॥ ७५ ॥

भागार्थ-जीर उस योगीका नादका विषय जो अंताकरणकी शृत्ति है उससे उत्पन्न रूप जो चित्तका आनंद है उसका तिरस्कार करनेके अनंतर स्वामार्शिक आरमञ्जलरूप जो सह-जानंद है उसका आदिमाँव (प्रकटता) होता है-फिर वह योगी वातिपत्तकरारूप दोशींका सुरक, वृद्ध अतस्या, और आध्यारिक सुरक, और व्यर आदि व्यापि क्ष्या (भोजनकी इच्छा) निद्या-इनसे विश्वाल उस समय होताहै ॥ ७६ ॥

रुद्रग्रंथिं यदा भित्त्वा शर्वपीठमतोऽनिरुः ॥ निष्पत्तौ वैषवः शुन्दः कषद्वीषाक्रणो भवेत् ॥ ७६ ॥

तदा सदैत्यपेसायामाइ—स्ट्रोति ॥ यदा रुद्धगंर्थि भिरवा ब्याहाचके रुद्धगंथिः शर्व-स्पेथास्य पीठं स्थानं भूमध्यं तत्र गतः प्राप्तोऽनिकः प्राणो मवति तदा । निष्पस्यव-स्यामाह—निष्पत्ताविति ॥ निष्पत्ती निष्पस्यवस्यायाम् । ज्ञक्षरेष्टे गते प्राणे निष्य- त्त्यवस्या भवति । वैणवः वेणोरयं वैणवो वंशसंबंधी शब्दो निनादः क्षणेती शब्दाय-माना या वीणा तस्याः क्षणः शब्दो भवेत ॥ ७६ ॥

भाषार्थ-जिस समय प्राण उस स्द्रयंथिका भेदन करके जो स्द्रयंथि आज्ञाचुक्रमें होती है इर्व (ईश्वरका) पीठ (स्थान) जो अङ्ग्रविका मध्य है उसमें प्राप्त होजाता है-अन निष्प-त्तिअवस्थाका वर्णन करते हें कि, निष्पत्तिअवस्थामें अर्थात प्राणके ब्रह्मस्त्रमें पहुंचनेपर ऐसा वेणु (वंश) के राज्यकी तुल्य राज्य होताहै जैसा राज्य करती हुई वीणाका शब्द होताहै ७६

पकीमृतं तदा चित्तं राजयोगाभिघानकम् ॥ सृष्टिसंहारकर्तासौ योगीश्वरसमो भवेत् ॥ ७७ ॥

एकीमूतामिति ॥ तदा तस्यामबस्यायां चित्तमंतःकरणमेकीमूतमेकविषयीभृतम् । विषयीमूतम् । विषयविषयिणोरमेदोपचारात् । तद्वाजयोगामिधानकं राजयोग इस्य-मिधानं यस्य तद्वाजयोगामिधानकं विचत्तस्यकाप्रतेव राजयोग इस्यप्यः ॥ सृष्टिसंहा-रोते । असौ नादानुसंधानपरो योगी सृद्धिसंहारकर्ता सृष्टिं संहारं च करोतीति ताद्दशः। अतप्रवेश्यरसम ईश्वरतुल्यो मवेत् ॥ ७७ ॥

भागार्थ-जस निष्पत्तिखवस्थामें चित्त एकोमूतः होजाता है अर्थात विषय और विषयी (ज्ञान) इनका छमेद (एकता) होनेसे राज है नाम जिसका ऐसा यह िचित्त होजाता है म्योंकि, चित्तकी एकामताकोही राजयोग कहते हैं छोर वह योगी मृष्टि छोर संहारका कर्ता ईश्वरके समान होजाता है अर्थात नादके अनुसंधानसे रचना और संहारका कर्ता ईश्वरकर होजाताहै॥ ७७॥

अस्तु वा मास्तु वा धक्तिरत्नेवाखंडितं सुखस् ॥ ठयोज्जविमदं सौरूपं राजयोगादवाप्यते ॥ ७८ ॥ राजयोगमजानंतः केव्छं हठक्रिमणः ॥ एतानभ्यादिनो सन्ये प्रयासफळवर्जिताच् ॥ ७९ ॥

अस्तु बेति ॥ राजयोगामिति ॥ उसौ प्राग्व्याख्याते ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ भाषार्थ-पद्मापि इन दोनों छोकींका अर्थ पहिले लिख आये हैं तथापि यहांमी किन्दित लिखते हैं कि, प्रतित हो वा मत हो इस नाटाह्सपान करनेमेंही आबंड प्रख होता है और ल्यस्से उत्पन्न हुआ यह प्रख्यागयोगसे भात होता है ॥ ७८ ॥ और जो योगी राजयोगको नहीं जानते हैं और हुउयोगकी कियाको करते हैं उन अभ्यासियोंको में परिश्रमके फल्से श्राजत मानताहूँ अर्थात उनको हुउयोगका फल नहीं होता है ॥ ७९ ॥

वन्मन्यवातये ज्ञीत्रं भ्रूव्यानं मम संप्रतम् ॥ राजयोगपदं प्राप्तुं सुखोपायोऽल्पचेतसाम् ॥ सद्यः प्रत्ययर्सघायो जायते नादको लृयः ॥ ८० ॥

(१७१)

उन्मन्यवातय इति ॥ शीश्रं त्वरितमुन्मन्या उन्मन्यवस्थाया अवातये प्राप्यर्थं भूत्यानं भूतेव्यानं भूमध्ये व्यानं मम स्वात्मारामस्य संमतम् । गजयोगी योगानां राजा तदेव पदं राजयोगपटं तुर्यावस्थास्यं प्राप्तुं, छन्धुं पूर्वोक्तभूच्यानरूपः सुखोः पायः सलसाध्यः उपायः सुस्रोपायः अल्पचेतसामलपञ्चद्वीनामपि । किस्तान्येपापि-त्यभिमाषः । नाइजः नादाज्ञातो लयश्चित्तविलयः सद्यः शीत्रं शत्ययं प्रतीतं संदधा-तीति प्रत्ययसंधायी प्रतीतिकरो जायते प्राद्रमेवति ॥ ८० ॥

भाषार्थ-उन्मनीअवस्थाकी शीव्र प्राप्तिके लिये मुझ स्वात्मारामयोगीको भ्रुकाटियोंके मध्यमें जो ध्यान है वह संमत है और सब योगोंका राजारूम जो राजयोग है उस तुर्यक्षवस्थाना-मके राजयोगकी प्राप्तिके लिये पूर्वोक्त शृद्धियोंका ध्यानहीं अल्पबुद्धियोंके लिये सुख (सरल) वपाय है-और नादसे उत्पन्न भया जो चित्तका विख्य है वह शीन्नहीप्रतीतिको करनेवाला होता है ॥ ८० ॥

नादाञ्जसंघानसमाघिभाजां योगीश्वराणां त्रदि वर्धमानम ॥ आनंदमेकं वचरामगम्यं जानाति तं श्रीग्रह्माय एकः ॥८१॥

नादाद्वसंधानेति ॥ नादस्यानाहरुव्यनेरनुसंधानमनुर्चितनं तेन समाधिश्चित्तिकाध्यं तं भजेतीति नादानुसंधानसमाधिभाजस्तेषां योगिषु योगयुक्तेष्वीश्वराः समयस्तिपां हरि हटये वर्धते डाते वर्धमानस्तं वर्धमानं वचसां वाचामगम्यम् । इदमिति वक्तुमन शक्यं तं योगशास्त्रप्रसिद्धमेकं मुख्यमानंदमाह्यदमेकोऽनन्यः श्रीग्ररुनायः ग्रहरेव नायो जानाति बेचि । एतेन नादानसंधानानंदी ग्रहरास्य एवेति स्वचित्रसा८१॥

भाषार्थ-अनाहतध्वनिम्हप जो नाद है उसके अतुसंधान (स्मरण) से जो चितकी एका-व्रतारूप समाधि है उसके केंत्रों जो योगीखर (योगियामें जो उत्तम) हैं उनके हृदयमें बढ-ताहुमा और वाणी जिसको 'यह है' इसप्रकार नहीं कहसकती है-ऐसा जो योगशास्त्रमें प्रसिद्ध एक (मुख्य) आनंद होता है एक श्रीग्रहनाय अर्याव श्रीयुत ग्रिहसामीही जानते हैं-इससे यह सूचित किया कि नादके अनुसंघानका आनंद गुरुकी द्यासेही प्रतीत हो सकता है अन्य पकारसे नहीं हो सकता II ८१ II

कुर्णी विधाय हस्ताभ्यां यं शृणोति घ्वानें म्रानिः ॥ तत्र चित्तं स्थिरीकुर्याद्यावितस्थरपदं वजेत् ॥ ८२ ॥

नादानुसंधानात्प्रत्याहारादिकमेण समाधिमाह-कर्णावित्यादिमिः ॥ सनिर्मननशीलो योगी हस्ताभ्यामित्यनेन हस्तांगुष्ठौ ठक्ष्यते । ताभ्यां कर्णी श्रोत्रे पिधाय । हस्तां-गुष्ठौ श्रोत्राविष्योः कृत्वेत्यर्थः । यं व्यानेमनाहतनिःस्वनं ऋणोत्याकर्णयति तिस्मन् व्वने। चित्तं स्थिरीकुर्योदास्थरं स्थिरं संपद्यमानं कुर्योन् । यानतिस्थरं पदं स्थिर-पदं तुर्यास्यं गच्छेत् । तदक्तम्-तुर्यावस्या चिदिभिव्यंजकनादस्य वेदनं प्रोक्तामिति

नादानुसंधानेन बायुरचैर्यमणमाद्योऽपि मर्वतीति । उक्तं च त्रिपुरसारसमुचये-ंवि-ज्ञितो भवतीह तेन बायुः यहजो यस्य सम्रतियतः प्रणादः । आणिमादिग्रणा भवति तस्यामितपुण्यं च महाग्रुणोद्यस्य ॥ सुरराजतनुजविरिग्ने विनिरुच्य स्वक्त ग्रुव्हिस्येन । जल्लेचेरिव धीरनाद्यंतः प्रसरंतं सहसा ऋणोति मर्त्यः ॥ ' इति । सुर-राज इहस्तस्य तनुजोऽर्जुनस्तस्य वैरी कर्णस्तद्वेधे स्पष्टमन्यत् ॥ ८२ ॥

मावार्थ-नावृक्ते अनुसंधानसे अत्याहार आदिके कमसे समाधिका वर्णन करते हैं कि मन-नका कर्ता योगी हाथोंके अंग्रठांसे कर्णोंको ढक्कर ज्याद अंग्रठांको कर्णोंके छिद्रोंमें ल्याकर जिस अनाहृतष्वनिको सुनता है उस अनाहृतष्वनिमें अस्थिरभी चिंतको ने तथतक स्थिर केरे जनतक तुर्यावस्थारूप स्थिरपदको प्रात न हो-सोई कहाहै कि, तुर्यावस्था, जेतनका अभिव्यंजक (ज्ञापक) जो नाद उसका ज्ञानकूप है और नादके अनुसंधानसे वासुकी स्थिरता और अणिमा अपादि सिंडिभी होती हैं-और त्रिपुरसारससुव्वयंभभी कहा है कि जिस योगीके देहमें स्वामाधिक क नाद मलीशकार उठता है वह वासुको जीतलेताहे और उसको अणिमा ऑविस्टुण, और उस महोदयको अतुल पुण्य होते हैं, अपने हायकी दो अंग्रहिस्मासे कर्णोंके सिद्रोंको रोककर-सपु-क्षेत्र समान धीर जो नाद देहके भीतर फैलता है उसको मनुष्य (योगी) शीवही सुनतहिंदर

अभ्यल्यमानो नादोऽयं बाह्यमावृणुते व्वनिम् ॥ पक्षाद्विक्षेपमस्तिङं जित्वा योगी सुक्षी भवेत् ॥ ८३ ॥

अभ्यस्यमान इति ॥ अभ्यस्यमानोऽन्तर्सधीयमानोऽयं नादोऽनाहतारुयो वाह्य-व्वीन वाह्यभेवं शब्दमावृष्टुते क्षरयोविषयम् । योगी नादाभ्यासी पक्षान्मासाधीदावैळं सर्वे विक्षेषं चित्तवांचरुयं जिस्वाऽमिभृय सुखी स्वानंदो भवेत् ॥ ८३ ॥

मामार्थ-अभ्यास कियाहुआ अर्थात् अनुसंपान किया यह नाद वाहिरका जो राज्द है उसका आवरण करता है अर्थात् वाहोके ज्ञावकोभी योगी छुनलेका है और वह नादका अभ्यासी योगी एक पक्षमरसेही चित्तकी चंचलता रूप मंपूर्ण विक्षेपको जीतकर छुखी होता है अर्थात् आत्मानंत्रकप छुखो ग्राप्त होताहै ॥ ८३॥

श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधो महान् ॥ ततोऽभ्यासे वर्धमाने श्रूयते सुरूमसुरूमकः ॥ ८८ ॥

श्रूपते इति ॥ पथमाभ्यासे पूर्वभ्यासे नागाविधोऽनेकाविधो महाच् चळाधिजीसत-भेषांदिसहरो नावोऽनाहतस्त्रः श्रूपते आकर्ण्यते । ततोऽनंतरमभ्यासे नावानुसंधा-नाभ्यासे वर्धमाने सावि सङ्भव्यक्ष्मकः सङ्भः स्रक्ष्म एव श्रूपते अवणविषयो अवति ॥ ८४ ॥

भापार्थ-प्रथम २ के अभ्यासमें अनेकप्रकारका अर्थात् सम्रद्ध मेघ. भेरीके शुन्दकी हुल्य महात् (भारी) नाद् धुना जाताहै और उसके अनंतर अभ्यासके होनेपर स्ट्रम २ शब्द धुना जाताहै ॥ ८८॥

(803)

आदो नरुधिनीमृतभेरीझईरसंभवाः ॥ मध्ये मर्देलज्ञेंखोत्या षंटाकाहरूजास्तया ॥ ८५ ॥

नानाविधं नादमाह् द्वाभ्याम्-आदाविति ॥ आदी वायोर्वहारंधगमनसमये जलकिः समद्रो जीमृतो मेवो मेरी वाद्यविशेषः । 'मेरी खी दुंदुामः पुमान्' इत्यमरः । झईरि वाद्यविशेषः । 'वाद्यप्रभेदा उमरुमङ्बुडिंडिमझर्शराः । मर्दछः पणवोऽन्येऽपि' इत्यमरः । जलियमुखेभ्यः संभव इव संभवे। येषां हे तथा मध्ये ब्रह्मां वे वयोः स्वैर्याः नंतरं मर्दछो बाद्यविशेषः शंखो जळजस्ताभ्यामृत्या इव मर्दछशंखोत्याः घण्टाकाहरूी वाद्यविशेषी ताभ्यां जाता इव घण्टाकाहरूजाः ॥ ८५ ॥

भाषार्थ--अब दो खोकोंसे नाना प्रकारके नादका दर्णन करते हैं कि प्रथम २ प्राणवायके ब्रह्मरंत्रमें गमनसमयमें समुद्र, मेघ, भेरी (धांस) जो बाजे हैं और झईरी (झांझ) जो बाद्य निशेष हैं उनके शब्दके समान शब्द बहारंत्रमें सुने जाते हैं। और मध्यमें अर्थात् सुपुन्तामें प्राणनायुकी स्थिरताके अनंतर मर्दछ, शंख इनके शब्दकी तुल्य शब्द तने जाते हैं[,] और तिस प्रकार पंटा और काहलनामके जो बाजे हैं उनके सुब्दकी सहस सब्दमी प्रतीत होते हैं॥८५॥

अंते तु क्षिंकिणविंज्विणाश्रमसनिःस्वनाः ॥ इति नानाविधा नादाः श्रूयंते देहमध्यबाः ॥ ८६०॥

थंते त्विति ॥ अंते तु प्राणस्य ब्रह्मसंधे बहुस्यैयनितरं तु किनिणी क्षुद्रशंदिका वेशी बेणुः बीणा तंत्री भूमरी मञ्जपः तेषां निःस्वना इति पूर्वत्ताः नानाविधा अनेक मकारका देहस्य मध्ये गताः त्राप्ताः श्रूयंते ॥ ८६ ॥

भाषार्थ-फिर प्राणकी ब्रह्मरंष्ट्रमें स्थिरताके अंतमें किश्विणी-वंश-वीणा-अमर इनके अव्दर्की तुल्य शब्द क्षुनेजाते हैं-इस प्रकार देहके मध्यमें नाना प्रकारके शब्द क्षुने जाते हैं '॥ ८६ ॥

महित शूयमाणेऽपि नेवभेर्यादिके धनौ ॥

तत्र सुक्ष्मारसुक्ष्मतरं नाद्मेव परामृशेत ॥ ८७ ॥

महतीति ॥ मेघत्र मेरी च ते आदी यस्य स मेघमेयीदिकस्तिसम् मेघमेरीशब्दी तज्जन्यनिर्घोषपरी । महति बहुले ध्वनी निनादे श्रयमाणे आकर्ण्यमाने सत्यपि तञ् तेषु नादेषु सङ्मात्स्रङ्मतरमतिसङ्मं नादमेव परामृशोधिन्तयेत् । सङ्मस्य नादस्य विरस्थायित्वात्तत्रासक्तवित्तिश्चरं स्थिरमतिर्मवेदिति मावः ॥ ८७ ॥

भाषार्थ-भेच, भेरी, आदिका जो महान शब्द है उसकी तुल्य शब्दके छुननेपरभी उन शब्दोंमें सूक्ष्मसेभी सूक्ष्म जो नाद है उसको चिंतन करे क्योंकि सूक्ष्मनाद चिरकाळतक रह-ताहै दसमें आसक्त हुआ है चित्त जिसका ऐसा मनुष्यभी चित्काळतक स्थिरमति होजा-ताहै ॥ ८७ ॥

वनसुत्सृज्य वा सूक्ष्मे सूक्ष्मसुत्सृज्य वा घने ॥ स्ममाणमपि क्षिप्तं मनो नान्यत्र चाड्येत् ॥ ८८ ॥

यनिमिति ॥ वनं महातं नादं मेवमेर्योदिकसुरुष्य धने वा नादे रममाणं धनसुरुमा-न्यतरनादश्रहणपारित्यागाभ्यां कीर्डवमपि क्षिप्तं रजसात्यंतचंचळं मनोऽन्यत्र विषयांतरे न चाळयेत्र प्रेरवेत् । क्षिप्तं मनो विषयांतरासक्तं न समाधीयते नादेषु रममाणं द्व

समाधीयत इति मानः ॥ ८८ ॥

भाषार्थ-मेष, भेरी आदिके महाच नादको त्यागकर सुक्ष्ममें वा सुक्ष्मनादको त्यागकर महानतादमें रमण करतेहुथे रजोग्रणसे अत्यंत चंचल चित्तको अर्थात महान, सुक्ष्म शब्दके प्रहुण वा परित्यागसे क्रीडा करतेहुथे मनको चलायमान न करे-न्ययांकिः,विषयांतराम आसक्त नम समाधान नहीं होसकता है और नादमें रमताहुआ जो मन उसका समाधान होसकताहै

यत्र कुत्रापि वा नादे रुगति प्रथमं मनः ॥ तत्रैव मुस्थिरीभूय तेन साधै विर्छीयते ॥ ८९ ॥

यत्रेति ॥ वा अथवा यत्रकुत्रापि नादे यस्मिन्कस्मिश्चिद्धने सङ्गे वा ,नादे प्रथमं वूर्वे मनो लगाति लग्नं भवति तज्ञैव तस्मिन्नेव नादे द्वास्थिरीभूय सम्यक् स्थिरं भूत्वा तिन नादेन साधै साक्षं विलीयते लीनं भवतीत्पर्यः । अत्र पूर्ववाक्येन प्रत्याहारो द्विती-चेन धारणा तृतीयेन ज्यानद्वारा समाधिकक्तंः ॥ ८९ ॥

मापार्थ-अथवा जिस किसी घन वा सुरूम नादमें प्रथम मन रंगे उसी - नादमें मळीप्रकार स्थिर होकर डिंसी नादके संग रुप होजाताहै-यहां पूर्व वाक्यसे प्रत्याहार दूसरेसे धारणा और सीसोसे ध्यानके हारा समाधि कही है ॥ <९॥

मकरंदं पिवन्भूंगो गंधं नापेक्षते यथा ॥ नादासक्तं तथा चित्तं विपयात्र हि कांक्षते ॥ ९० ॥

मकरंदिमिति ॥ सक्र्स्ट् पुष्परलं पिवन धयन् स्ट्रेगो भ्रमरो यंथं यथा नापेक्षते नेच्छाते । तथा नादासक्तं नाद आसक्तं चिक्तमंतःकरणं विषयान् विपिण्वंत्यववझंति प्रमातार् स्वसंगेनोति विषयाः सक्क्वंदनवनिताद्यस्थान् न कांक्षते नेच्छाति । हीति निश्चये ॥ ९० ॥

मापार्थ-जैसे मकरंद (पुप्पका रस) का पान करताहुआ अमर पुप्पके गांवकी अपेक्षा सुर्ही करता है तिसी प्रकार नाटमें आसक्त हुआ चित्त भी अपने वंधनके कर्ता जो अरु चंदन आदि निषय हैं उनकी आकांक्षा नहीं करना है यह निश्चित है ॥ ९०॥

मनो मत्तवर्नेद्रस्य विषयोद्यानचारिणः ॥ नियन्त्रणे समर्थोऽयं निनादनिह्यतांक्रसः ॥ ९१ ॥ मन इति ॥ विषयः शन्दादिरोबोधानं वनं तत्र चरतीति विषयोधानचारी तस्य मन एव मत्त्राजंद्रः । दुर्निवारखात । तस्य निनाद एवानाहतध्वनिरेव निाशितां-इकः तीरुणांकुशः निर्यत्रणे परावर्तने समर्थः दानः । एतैः श्लेकः। 'चरतां चक्षरादीनां विषयेषु ययाक्रमम् । यस्त्रत्य हरणं तेषां प्रत्याहारः प्रकीवितः ॥' इदियाणां विषयेभ्यः प्रत्याहरणं प्रत्याहार इत्युक्तश्रक्षणः प्रत्याहारः प्रोक्तः॥ ९१॥

मापार्थ-शन्य आदि विषयरूप जो ज्यान उसमें विषयता हुआ जो मनरूप उन्मत्त गजेंद्र हैं उसके परावर्तन (छोटाना) में यह-नादरूप जो तीरूण अंद्रश्च हैं वहीं समर्थ है-इन श्चोकेंसि इंद्रियोंका विषयोंसे यह प्रत्याहार कहाहै जो इस श्चोकर्म कहाहै कि विषयोंम क्रमसे चरते हुये जो नेत्र आदि इन्द्रिय हैं उनकी जो विषयोंसे निवृत्ति उनको प्रत्याहार कहते हैं ॥९१॥

वद्धं तु नाद्वंधेन मनः संत्यक्तचाप्रस् ॥ प्रयाति सुतरां स्थेयं छिन्नपक्षः खगो यथा ॥ ९२ ॥

वहं त्विति ॥ नाट् एव वंशः वध्यतेऽनेनिति वंशः वंधनसाधनं तेन स्वश्तस्या स्वाधीनकरणेन वदं वंधनमिव प्राप्तस् । नाट्धारणादावासक्तमित्यर्थः । अतं एव स्म्यक्त् स्वक्तं चावर्थं क्षेत्रस्य । व्यतं एव स्म्यक्त् स्वक्तं चावर्थं क्षेत्रस्य त्वातः स्वक्तं चावर्थं क्षेत्रस्य साहतः वि वच्छाति नित्तां धारणमिति । तत्र दृष्टान्तमाह्—छित्री पक्षी यस्य साहतः वि वच्छातीति स्वगः पक्षी यया । एतेन—प्राणायामेन पवनं प्रत्यादारेण चेद्रियम् । वशीकृत्य ततः क्ष्यीचिक्तस्यर्थे शुमाश्रये ॥' शुमाश्रये चिक्तस्थापनं धारणोत्सुक्तंष्ठक्षणा धारणा प्रोक्ता ॥ ९२ ॥

मापार्थ-नावृहरा जो बंधनका साधन है उससे अपनी शक्तिके अनुसार बंधनको प्राप्त हुआ मन अर्थाद नावृद्धी पारणा आहिमें आसक्त हुआ चित्त और इसीसे मळीमकार त्याग-दृद्धि अण २ में विषयोका प्रहणहरा चपलता जिसने ऐसा मन निरन्तर रियरताको प्राप्त होता है अर्थाद पारणाको प्राप्त इस प्रकार होताहै जैसे डेवन किये हैं पक्ष जिसके ऐसा पक्षी हो जाताहै इस श्लेकसे शुभ आश्रयमें चित्तका स्थापनहरा उस धारणाको कहाहै जो इस क्वनमें छहीह कि प्राणायामसे पदमको और प्रत्याहारसे इंद्रियोंको वशॉम करके शुभाश्रय (क्वमंत्र) में चित्तकी रियरताको करें ॥ १२ ॥

सर्वचितां परित्यज्य सावधानेन चेतसा ॥ नाह् एवाद्धर्सयेयो योगसाम्राज्यपिच्छता ॥ ९३ ॥

सर्वीवतामिति ॥ सर्वेषां वाह्यान्यंतरिषयाणां या चिताः चितनं तां परित्यज्य त्यक्ता तावधानेनेकाप्रेण चेतता योगानां ताझाव्यं समाजो भावः ।। योगशब्दोडका चर्नतः । राजयोगित्वमिति यावत् । इच्छता बांछता पुना नाद एवानाहतव्यनिरेवाहुः संध्योऽहांचितनीयः । नादाकारकृतिप्रवाहः कर्तव्य इत्ययः । एतेत् (तहप्रश्ययकाष्ट्रय संततिश्चान्यनिस्पृहा । तद्धचानं प्रथमेरंगेः पड्मिनिंग्पाचते नृप ॥' तत्र प्रत्ययेकः

िउपदेशः

तानसः ध्यानवित्युक्तलक्षणं ध्यानमुक्तम् ॥ ९३ ॥

भाषार्थ-बाह्य और भीतरके जो संपूर्ण विषयहैं उनकी चिंताको त्यागकर सावधान (एकाम्र) चित्तसे राजयोगका अभिलापी योगी नादकाही अनुसंघान करे अर्थात् नादाकार द्वितका प्रनाह करें इससे वह चित्तकी प्रत्ययेकतानतारूप ध्यान कहा जो इस वचनमें कहाहे कि नहारूप श्रत्ययकी जो एकाय (एकरस) संतति और अन्य विपयोंकी निःस्पृहा वह ध्यान हे तृप: छः प्रथम अगोंसे प्राप्त होताहै अर्थात् उसकी प्राप्तिके छः अंग कारणहे ॥ ९३ ॥

नादोत्तरंगशारंगबंधने वागुरायते ॥ खंतरंगक्ररंगस्य वधे व्याधायतेऽपि च ॥ ९४ ॥

नादों इतरेगेति ॥ नादः अंतरेगं मन एव सारेगो सृगस्तस्य वंधने चांचल्यहरणे बागुरायते बागुरेवाचरति बागुरा जालम् । यथा बागुराबंधनेन सारंगस्य हरति तथा नादोऽन्तरंगस्य स्वशक्त्या चांचल्यं हरतीत्यर्थः । अंतरंगं मन एव सारंगो हरिणस्तस्य बंधने ' नानावृत्युत्पादनापनयनमेव मनसो बंधस्तास्मिन् व्याधायते क्याध इवाचरति । यथा व्याधी वाग्रताबद्धं सूर्गं इति एवं नादोऽपि स्वासक्तं सनी इतीत्यर्थः ॥ ९४ ॥

भाषार्थ-नाद अंतरंग (मन) जो सारंग मृग उसके वंधन (धंचळताका हरण) में वाग्ररा (मुगबंधनमें जाल) के समान है अर्थात् जैसे वारायके वंधनसे मुगदी चंचलता हरी जाती है इसीप्रकार नादभी मनकी चंचळताको अपनी शक्तिसे हरताहै और नादही अंतरंग (मन) हरिणके बंधनमें व्याधके समान है अर्थात् जैसे व्याध बागुरामें बन्धेहरे मुगको हरताहै इसी प्रकार अपनेमें आसक्तरूपे मनको नादभी हरताहै अर्थात नानावृत्ति जो मनमें उत्पन्न होती हैं चनको दर करताहै ॥ ९४ ॥

अंतरंगस्य यमिनो वाजिनः परिघायते ॥ नादोपास्तिरतो नित्यमवधायां हि योगिना ॥ ९५ ॥

अंतर्रमस्येति ॥ यमिनो योगिनोऽतरंगं मनस्तस्य; चपछत्वाद्दाजिनोऽधस्य परिघाः यते वाजिशाला झरपरिय इवाचराते नाद इति शेषः । यथा वाजिशालापरियो वाजिः नोऽन्यत्र गार्ति रुणाद्धि तथा नादोऽन्तरंगस्येत्यर्थः । अतः कारणाद्योगिना नादस्योपा-स्तिरुपासना नित्यं प्रत्यहमस्थायावधारणीया । हीति निश्चयेडव्ययम् ॥ ९५ ॥

भापार्थ-और योगीजनका जो अंतरंग (मन) रूप बाजी है उसकें परिष अर्थात घड-शास्त्रके हारमें अवरोधक स्रोहदंडके समान नाद है निदान जैसे वानिशास्त्राकाका परिघ वानीकी अन्यत्र गतिको रोकताहै इसीप्रकार नादमी मनकी अन्यत्र विपयादिकोंमें जो गति है उसको बोकेंहे इस कारणसे योगीजन निश्चल करके नादकी लपासनाका निश्चय करे ॥ ९५ ए

बद्धं विमुक्तचांचरुयं नादगंचक्रजारणात् ॥ मनःपारदमात्रोति निराछंबाख्यखेऽटनस् ॥ ९६ ॥ बद्धामिति ॥ नाद् एव गंधक उपधातुविद्योपस्तेन जारणं जारणीकरणं नाद्गंध-कर्सवंधेन चांधल्यहरणं तस्माद्रव्यं नादैकासक्तम् । एते ग्राटेकाक्कार्वे प्राप्तम् अत एव विद्यंकं त्यंकं चांधल्यमनेकविष्याकारपरिणामक्ष्यं येन । पत्ते विद्युक्तकील्यं मनःपारदं मन एव पारदं चंधलं निरालंशं ब्रह्मा तदेवाल्या यस्य तिक्रसालंबाल्यं वदेव सम्परि-च्लिक्ताक्तासिकारमं गामनं तदाकारवृत्तिमबाहस् । पत्ते आकाञ्चाममं प्रामीति । यथा बद्धं पारद्मसकाञ्चाममं करोति । एवं बद्धं मनो ब्रह्माकारवृत्तिप्रवाहमित्रविद्यं करोती-स्यर्थः ॥ ९६ ॥

भाषायं-नाव्हें प्रवादि ने गंधक उससे जारण (मस्म) करनेसे वर्षांत् नाव गंधकके संयोगसे चंडलतावे ह्रनेसे वह (एकनाव्मेंसी व्यासक) और पाराके पक्षमें गृटिकारून हुआ सम झाना शोर जारणतेही त्यागाविया है विषयाकार परिणामरूप चोडल्य जिसने जार पाराके पक्षमें त्यागावी है स्वाभाविक चंडलता जिसने वह समझना ऐसा मनरूप पाराव (चंडल्रूप निराहंच नामके आकाशकार अपिएचिक ब्रह्म गमनको अर्थात् ब्रह्मकार इतिके प्रवाहको प्राप्त होता है सीर पाराके पक्षमें जावकशममनको प्राप्त होता समझना तारपर्य यह है कि इस प्रकार बंधाहुना मन निराहंच्या (एकरस) ब्रह्मकार इतिके प्रवाहको ज्याही ॥ ९६॥

नादश्रवणतः क्षिप्रमंतरंगभुनंगमः ॥ विरुप्तरय सर्वमेकाञः छत्रचित्र हि घावति ॥ ९७ ॥

नादेवि ॥ नाद्स्यानाहतस्वनस्य श्रवणतः श्रवणात् 'सिगं हृतमंतरंगं मन एव सुर्वन्गमः सर्पश्चपकत्वात्राद्विपत्वात्र सुर्वनगमः सर्पश्चपकत्वात्राद्विपत्वात्र सुर्वनगमः सर्पश्चपकत्वात्राद्विपत्वात्र सुर्वनगमः सर्वे विश्व विस्तृतः विस्तृति विद्यात्र स्वत्यात्र स्वत्य स्वत्यात्र स्वत्य स्वत

मापार्य-कानाहत इन्द्रुक्तप नादके श्रवणसे श्रीव्रह्म मनक्तप सुवंगम (सर्प) यहां चपक्र और नादाग्रिय होनेसे मनको सुवंगम समझना संपूर्ण विचका विस्मरण करके एकाग्र हुआ अर्थात् नादारकाखितमबाही होवर किसी विषयमें नहीं दीवताहै व्यानसे पीठे कहेहुये श्लोकांस इस विच्छुप्राणके वचन और इस पातंजक सूत्रमं कमसे कहीहुई समापि और संम्नात समाधि कही है कि, उसकाही करूनाहुनि जो स्वक्तपका ग्रहण मनसे है वही व्यानसे उपक होताहै और उसकोही समापि बहते हैं वस आत्माकाही चो अर्थमात्र निर्मास स्वक्तप शून्यके समान् है उसको संग्रवात समापि बहते हैं ॥ ९७ ॥

काष्टे प्रवर्तितो वाहिः काष्ट्रेन सह ज्ञाम्याते ॥ नादे प्रवर्तितं चित्तं नादेन सह छीयते ॥ ९८ ॥ काप्र इति ॥ काष्टे दारुणि प्रवर्तितः प्रव्याखितो विद्धः काष्टेन सह झाम्यति व्याखाः कर्षं परित्यच्य सन्मात्रक्षेणावतिष्ठते यया तथा नादे प्रवर्तितं चित्तं नादेन सह क्षेत्रते । राजसनामसञ्जूचिनाझारसस्यमात्रावदेषं संस्कारदेषं च भवति । तत्र च मैत्रा-यणीयमंत्रः । 'यथा निरिधने बाह्यः स्वयोनाखुवज्ञाम्यति । तथा वृत्तिक्षयाच्चित्त स्वयोनाखुवज्ञाम्यति' इति ॥ ९८ ॥

भाषार्थ-काष्ट्रमें प्रवृत्त की अर्थात् जळाईड्राई आग्ने च्यायक्त्र फोसे काष्ट्रके संग कांत होजाती है अर्थात् काष्ट्रक्त्य रहजाती है तिसी प्रकार नादमें प्रवृत्त किया चित्त नावके संग छीन होजाता है अर्थात् रजोग्रणी और तमोग्रणी वृत्तियोंके नाशसे सत्तामात्र या संस्का-रमात्र शेष रहजाताहै इसमें भैजायणीय शास्त्राक्ष यह मंत्र प्रमाण है कि जैसे इंघनपीहित आग्ने अपने योनिक्त्य काष्ट्रमें शति होता है इसी प्रकार व्यत्योंके क्षयसे चित्तमी अपनी योनि

(ब्रह्म) में शांत होजाता है ॥ ९८ ॥

चंटादिनादतत्त्वस्तव्यांतःकरणइतिणस्य ॥ प्रहरणमपि सुकरं ज्ञारसंचानप्रनीणश्चेत् ॥ ९९ ॥

धंदादीति ॥ वंदा बाहिवेंपां अंत्यनदैव्हाईग्हर्जुं भजीमूनादीनां ते वंदाद्यस्तेषां नादस्तेषु नक्तः । अत एव स्तव्यो निख्छो योऽन्दाकरणवेद हरिणो स्नास्तस्य महर्गं नानाद् तिम्रतिवंधनर्वतःकरणपदो । हरिणपदो तु महर्गं हननम् पि श्रवहः स्तवामिनो वायोः अंधानसुसुम्नायांगं व्हारंग्रे निरोधनपदो श्ररस्य वाणस्य संधानं ध्ताष योजनं तिमन् प्रवीणः कुकल्केस्सुकरं सुत्वन कर्तु श्वयम् ॥ ९९ ॥

भाषार्थ-चंद्रा आदि निनके ऐसे जो इांख मर्द्छ, एक्ट्रार, हुंद्रभी आदिके नाद हैं उनमें आसक्त और निश्चल जो अन्तःकरणरूप प्रग टसका प्रहार करनामी प्रकर है यदि वाणके संघानमें मनुष्य प्रवीण हो यहां अन्तःकरणका प्रहार नाना इत्तियोंका प्रतिबन्ध रूप टैना और इरिणयक्षमें हुनन टैना और वाणका सन्धानमी बाणके समान इक्षिगामी जो वायु उसका प्रपुन्नामागैसे ब्रह्मांश्रमें प्रवेश करलेना और इरिणयक्षमें घनुषपर वाणका योजन (इन्गाना) हैना ॥ १९॥

अनाहतस्य ज्ञन्दस्य घ्वनिये उपरुभ्यते ॥ घ्वनेरंतर्गतं ज्ञ्यं ज्ञेयस्यातर्गतं मनः ॥ मनस्तत्र रुपं याति तद्विष्णोः परमं पृदम् ॥ १०० ॥

वनाहतस्येति ॥ जनाहतस्य शब्दस्यानाहनस्वनस्य चो ध्वनिर्मिहीद उपल्ययते श्रूपते तस्य ध्वनेरंतर्गतं होयं ज्वेतिः स्वमकार्यवनम्यं होयस्यांनर्गतं हायाकारतामापत्रं भनोधन्तःकर्णं तम्र होये मनो विलयं याति पर्वराग्येण सख्लवृत्तिश्रूम्यं संस्कारहोणं मवति । तक्षिण्योविष्मोत्यनः परममैतः इत्यवृत्तस्युपाधिगाहित्याचिरुपाधिकं पद्यते सम्पते चौगिमिरिति पदं स्वस्पम् ॥ १०० ॥

भापार्थ-अनाहृत अर्थात् िना ताडनाके उत्पन्न जो शब्द इसकी जो ध्वनि प्रतीत होती है एस ध्वनिके अन्तर्गतही श्वेयद्भ प्रकाशमान चेतन्य है और उस क्षेत्रके अन्तर्गत अन्तरक्षफ रूप मन है और उस श्लेपही मन विख्यको प्राप्त होताहै अर्थात् परमवैराग्यसे संपूर्णः ष्टित्यांसे शन्य होकर संस्कारमान शेप रहनाता है और वही विष्णु (ध्यापक) आत्माका परमप्द है अर्थात् योगीलनींशी प्राप्तिके योग्य अन्तरकरणकी बृत्तिद्धप स्पाधिसे रहित आत्माद्धप है ॥ १००॥

तावदाकाशर्संकरपो यायच्छन्दः प्रवर्तते ॥ निःज्ञन्दं तत्परं त्रह्म परमारमेति गीयते ॥ २०३ ॥

वावदिति ॥ यावच्छव्दां इनाहतव्यक्तिः प्रवर्तते श्रूयते तावदाकाशस्य सम्यक्षत्वनं मवति । शवदस्याकाशस्य सम्यक्षत्वनं मवति । शवदस्याकाशस्यावादगुणग्राणिनोरमेदाहा मनसा सह शब्दस्य विख्यान्निः शब्दं शब्दर्राहितं चरपरं त्रहा परत्रहाशब्दवाच्यं परमारमेति गीयते परमारमशब्देन स उच्चते । सर्वष्ट्रीतिवच्ये यः स्वरूपेणावरियवः स एव परत्रह्मपरमारमञ्जदाभ्याष्ट्रच्यतः इति भावः ॥ १०१ ॥

भापार्थ-जितने अनाहत ध्यनिरूप शब्द छुनेवाते. हैं उत्तनीही: आकाशकी मुलेपकार फरुवना होती है क्योंकि शब्द आकाशक्य है और गुणगुणीका अभेद है और मन साहत जब शब्दका विख्य होजाताह तब शब्दगहित जो पत्नस्म है वहीं परमारमा शब्दसे कहाजाता-है वर्षाद संर्ग शक्तियोंका छय होनेपर जो स्वरूपसे स्थित है वहीं परमहम परमात्मा-संक्रम है ॥ १०१॥

यत्किविन्नादृद्धपेण श्रूपते ज्ञितितेव सा ॥ यस्तर्त्वातो निराकारः सः एव परमेश्वरः ॥ ३०२ ॥

मापार्य-नो इन्छ नादारूपसे छुनाजाता है वह शक्तिहीं है और निसमें तत्त्वोंका रूप होता है वह निराकार परमेखर है जर्यात संपूर्ण ग्रांत्त्योंका क्षय होनेपर जो स्वरूपावस्थित है वहीं सारमा है इन पूर्वोक्त पांच खोकॉसे राजयोग नामकी असंप्रज्ञातसभाषि कहीं है ॥ १०२ ग्रं

सर्वे इउछयोपाया राजयोगस्य विद्यये ॥ राजयोगक्षमारूटः पुरुषः काळवंचकः ॥ १०३ ॥

सर्वे इति ॥ इटश्र लयश्च इटलयौ तयोरुपाया इठलयोपाया इठोपाया आसन-कुंमन्द्रपुराक्ष्ण लयोपाया नादानुसंधानशांमदीस्त्राद्यः । राजयोगस्य मनसः सर्वेद्रनितिरोधदक्षणस्य शिद्धये निष्पत्तये प्रोत्ता इति शेषः । राजयोगस्यसम्बद्धः सम्यनारूदः मात्रशन् यः पुरुषः स कालवैचकः कालं मृत्युं वैचयति जयतीति ताह्यः स्याविति शेषः ॥ १०३ ॥

मापार्थ-हठ भीर लयके जो संप्रण जपाय हैं अर्थात आसन वंभक छहा आदि हठके छपा-य और नादानुसंघान शांभवीछ्य आदि लयके उपाय हैं ने संप्रण मनकी संप्रण इत्तियोंकी निरोधकर जो राजयोग उसकी सिद्धिके विये ही कहे हैं, और इस राजयोगमें भलीपकार आहळ (प्राप्त) जो पुरुष हैं वह कालका विनक अर्थात् मृध्युका जीतनेवाला होजाता है॥ १०३॥

तत्वं वीवं हटः क्षेत्रमोदाषीन्यं जर्छं त्रिभिः ॥ उन्मनी कल्पलतिका सद्य प्रवर्तते ॥ १०४ ॥

तत्त्विमिति ॥ तत्त्वं चित्तं चीत्तं चीत्रवन्दुन्मन्यवस्यांकुराकारेण (परिणममानत्वात । इटा प्राणापानचीरैक्यलक्षणाः प्राणायामः क्षेत्रे इव प्राणायामे उन्मनी वःरण्लिकोत्प-त्तेरीदासीन्यं परवैराग्यं जलं तस्या उत्यित्तकारणत्वात् । परवेराग्यदेवुकः संस्कारविद्ये-पश्चित्तस्यासंप्रजात इति तल्लक्षणात् । एतैखिभिष्ठन्मन्यसंप्रज्ञातावस्था सेव करप्लिका सक्लेष्टसाधनत्वात्सय एव शीघ्रमेव प्रवर्तते प्रवृत्तः मवति उत्पन्ना मवति ॥ १०४ ॥

भापार्थ-तत्त्व (चित्तं) ही बीज है, वर्योंकि चित्तही उन्मनी अवस्थारूप, जो अंदुर है उसके आकारसे परिणामको प्रास होता है और प्राण अपानकी एकतारूप जो हुठ है, वही क्षेत्र है क्योंकि क्षेत्रके समान प्राणायाममेंही उन्मनीरूप करवरूता उत्पन्न होती है और उदा-सीनता (परम बेरान्य) जल है क्योंकि, उदासीनताही उन्मनी करवलताओ उत्पातिका कारण है क्योंकि, उदासीनताही उन्मनी करवलताओ उत्पातिका कारण है क्योंकि, परम बेरान्यका हेतु जो वित्तका संस्कारिकोष है वही असंप्रज्ञात समाधि है इन बीज, क्षेत्र, जल रूप पूत्रोक्त तीनींसे असंप्रज्ञात जहरूपाक वित्तका संस्कारिकोष है वही असंप्रज्ञात तीनींसे असंप्रज्ञात जहरूपाक वित्तका संस्कारिकोष है वही असंप्रज्ञात व्याप्तिक वित्तका संस्कारिकोष करवरूता कहते हैं । १९०४ ॥

सदा नादान्तर्रधानात्स्रीयंते पापसंचयाः ॥ निरंजने विधीयेते निश्चित्तं चित्तमासूतौ ॥ १०५ ॥

सदेति ॥ सदा सर्वेदा नास्मुसंधानान्नाद्मनुद्धितमात्पापसंचयाः पापसमृहाः क्षीयते नर्व्यति निरंजने निर्मुणे चैतन्ये निश्चितं ध्रुवं चित्तमारुतौ मनःप्राणौ विस्त्रीयते । विस्तृति भवतः ॥ १०५ ॥

भाषार्थ-संदेव नाद्के अनुसंवानसे पापाँके समूह क्षीण होते हैं ओर निर्गुण चेतन्यमें चित्त स्त्रीर पवन ये दोनों अवश्य छीन होजाते हैं अर्थात् मन ओर प्राण इन दोनोंका ब्रह्ममें छय स्त्रोनाताहि ॥ १०५ ॥

> शंखदंदुभिनादं च न शृणोति कदाचन ॥ काष्ट्रवञ्जायते देह जन्मन्यावस्थया श्रुवस् ॥ १०६ ॥

उन्मन्यवस्थां प्राप्तस्य योतिनः स्थितिमाहाष्ट्रभिः—शंखदुंदुमीति ।॥ शंखो जल्जो दुंदुभिवीयविज्ञेषस्तयोनीदं घोषे कदाचन व्हर्सिमीयद्गिष समये न ऋणोति । शंखदुंदुः मीत्युपलक्षणं नाद्मात्रस्य । उन्मन्यवस्थया देही धुर्वं काध्वज्ञायते । निश्चेष्ट्वा-दित्यर्थः ॥ १०६ ॥

मापार्य-स्थन आठ खोकोंसे उत्मतिअवस्थाको प्राप्त जो योगी है उसकी स्थितिका वर्णन करते हैं कि, वह योगी जोल हैड्मी इनके शब्दको कदाचित्रभी नहीं सुनता है यहां ज्ञंख हैड्मी शब्दमानके उपलक्षक हैं जीर उत्मती अवस्थासे देह काष्ठके समान चेटारहित हो जाता है ॥ १०६॥

सर्वावस्थाविनिर्मुक्तः सर्वेचिताविवर्जितः ॥ चृतनित्तष्ठते योगी स मुक्तो नात्र संज्ञयः ॥ ३०७ ॥

सर्वेति ॥ लाव्यस्वनसुपुतिमूच्छोनरणलक्षणाः पंच ध्युत्थानावस्यास्तात्मिवंबोवेण अक्तो रहितः सर्वा वार्थियाः रम्हतयस्तामिवंबार्वतो विरहितो वः चोगः सक्तल्हत्ति-निरोधोऽस्यास्ताति योगी तुर्यावस्थावान् स तुक्ता जोवन्नेव क्षक्तः । सक्तल्हित्तिनिरोधे व्यात्मनः स्वरूपावस्थानात् । तदुक्तं पातंजलस्वेन-'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' इति । स्पष्टमन्यत् ॥ १०७ ॥

भाषार्थ-और जायत, ६३८, ह.५ि, मूच्छी, मरणहूप जो पांच खुरवानावस्या हैं उनसे विशेषकरके रहित होता है और संपूर्ण चिताओंसे विवॉजत जो योगी हे अर्थात संपूर्ण चरित-गोंके निरोषद्धर योगमें दित्त है वह जीवन्य्रक्त है इसमें संशय नहीं है क्योंकि संपूर्ण मृतियोंके निरोषमें आत्मा अपने स्वहरमें स्थित होजाता है सोई पातंनल सुनमें कहाहै कि, उस समय द्रधा अपने स्वन्दर्भ स्वित होता है ॥ १०७ ॥

खावते न च काठेन वाच्यते न च कर्मणा ॥ साच्यते न स केनापि योगी युक्तः समाधिना ॥ १०८ ॥

खादात इति ॥ समाधिना युक्तो योगी कालेन मृत्युना न खाद्यते न मध्यते न इन्द्रात इत्यर्थः । कर्मणा कृतेन शुभेनाशुभेन वा न वाध्यते जनममरणादिजनने न क्रिस्यते । तथा च समाधियकरणे पातंत्रलस्त्रम् । 'ततर क्षेत्राकर्मनिवृत्तिः' इति । केनापि प्रस्पतिरण चंत्रमंत्रादिना वा न साध्यते साधिवृद्धं शक्यते ॥ १०८ ॥ र

मापार्य-समाधित युक्त योगीको मृत्युभी मक्षण नहीं करता है और शुम अशुम रूप किये हुये कर्मास जन्म मरण आदि छेशभी नहीं होते हैं और न वह योगी किसी उपायसे साध्य होसकताहै जर्यात कोई पुरुप यंत्र मंत्र आदिस साथ नहीं सकता सोई समाधिपकरणमें पर्त--जालेका सूत्र है कि, उस समाधिके समय छेशकी निश्चि होती है ॥ १०८॥

न ग्रंथं न रसं रूपं न च स्पर्शे न निःस्वनम् ॥ नात्मानं न परं वेत्ति योगी युक्तः समाधिना ॥ ३०९ ॥ न गंधामिति ॥ समाधिना युक्तो योगी गंधं सुरिभमसुर्गि वा न रसं मधुरास्ट-खबणकटुकषायतिक्तभेदात् पडिधं न रूपं शुक्कनेळपीतरक्तहारिकावित्रमदात्सस-विधं न रपद्यं ज्ञीतसुष्णमसुष्णाशीतं वा न निःस्वनं शंखदुंद्वीमज्ञरुधिजीम्हतादिनिनाद्दं बाह्यमाञ्चेतरं वा न आत्मानं देहं न परं पुरुपातरं वेत्तीति सर्वत्रान्वेति । 'आत्मा देहे वृत्ती जीवे समावे प्रसारमाने' इत्यमरः ॥ १०९ ॥

माषार्थ-समाधिसे युक्त योगी सुर्सि, असुर्सि रूप गंध और मधुर, आग्रु, छ्वण, कहुक, कषाय तिक्तरूप छ: प्रकारका रस और शुक्त, नीछ, भीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्ररूप सातप्रकारका रूप और शति, उप्ण, अतुष्णाशिनरूप, तीनप्रकारका स्पर्श और शंख, इंडमी, सम्रुद्ध, मेच इनका बाह्य शब्द, और नादरूप भीतरका शब्द और अपना देह अन्य अन्य

पुरुप इन पूर्वीक्त गंघ आदिको नहीं जानता है ॥ १०९ ॥

चित्तं न सुप्तं नो जाअरस्यृतिविस्मृतिवर्जितम् ॥ न चारतमिति नोदेति यस्यासी सुक्त एन सः ॥ १९० ॥

चित्तमिति ॥ यस्य योगिनश्चित्तमंतःकरणं न सुप्तम् । आवर्द्धस्य तमहोऽमाहा-श्चिष्टणेऽन्तिःकरणे,यदा सम्बरनसी आभिम्य समस्तकरणागरकं तम आविर्भवति तदांता-करणस्य विषयाकारपरिणामाआवात्तस्प्रप्तमित्युच्यते । ने नात्रत् हंद्रियेरवैत्रहणाभा-वात् । स्मृतिश्च विस्मृतिश्च स्मृतिविस्मृती ताभ्यां वर्षितस्य । मृतिसामान्याभावाद्वद्रोः धकामानाच स्मृतिवर्षितम् । स्मृरयञ्चक्रुव्हसंस्कारामाबाद्विस्मृतिवर्षितस्य । न च.स्तं नाक्षमेति प्रामोति । संस्कारक्षेपस्य चित्तस्य सस्वात् । नोदेस्मृद्भवति मृत्यव्रुत्वाद्नात् ।

स्रोडसी सुक्त एव जीवनसुक्त एव ॥ ११० ॥

मापार्थ-जिस योगीका चित्त आच्छाद्क तमोग्रुणके अभावसे तोवता न हो, क्योंकि विश् ग्रुण अंतःकरणमें जिस समय सच्च्युण और रजोग्रुणका तिरस्कार करके सन इंदियोंका आच्छाद्क तमोग्रुण अधिक होताहै उस समय अंतःकरणका विपयाकारकप परिणान न होनेसे क्षात अवस्था (श्वात) कहाती है जीर इंदियोंसे विषयोंका ग्रहण होनेसे योगीको जाग्रतमें न हो, और स्मरण विस्मरणसे वाजत हो अर्थात् सम्पूर्ण श्वीत्योंके और छडोषकके अभावसे स्वृतिरिहत हो जीर स्वृतिका जनक जो संस्कार उसके अभ्यवसे विस्वति हो स्वृतिरहत हो और स्वृतिका जनक जो संस्कार उसके अभ्यवसे विस्वति उस्पत्तिके अभावसे उदय . (उसके) भी न होताहो वहभी योगी ग्रुक्तही है ॥ ११० ॥

न निजनाति श्लीतोष्णं न दुःखं न सुखं तथा ॥ न मानं नापमानं च योगी युक्तः समाधिना ॥ १९५ ॥

न विजानातीति ॥ समाधिना युक्तो योगी शीतं च उष्णं च शीतोष्णाम् । समा-है।रहेंद्रः । शीतगुष्णं न पश्चें न दृश्वं दुःखजनकं परहृतं ताडनादिकं न सुखं सुखसाधनं सुरिभेचंद्नाचनुळेपनादिकम् । तथा चार्ये । मानं परकृतं सरकारं न अप-मानमनादरं च न विजानातीति क्रियापदं प्रतिवाक्यमन्वेति ॥ १११ ॥ भाषार्थ—समाधिसे युक्त योगी शीत, उच्च पदार्थको और ताइना आदि दुःखको और सुर्राभ चंदनाआदिके ठेपनरूप सुखको और मान अपमानको अर्थात दूसरेके किये सत्कार और अना-दरको नहीं जानता है ॥ १११॥

> स्वस्थो जायद्दस्थायां सुप्तवद्योऽवतिष्ठते ॥ निःखासोच्छासद्दीनव्य निश्चितं सुक्त एव सः ॥ ११२ ॥

स्वस्थ इति ॥ स्वस्थः प्रसर्तेद्वियांदाकरणः । एवेन तंद्रामूर्च्छोदिव्याद्वाताः । जाञ्च-द्वस्थायामित्यनेन स्वप्नसुषुप्त्योगिद्वतिः। सुप्तवत् सुमेन तृत्यं कार्योद्वेयस्यापारसूत्यो यो. योगी अवतिष्ठते स्थितो मवति । 'समवभविष्यः स्थः' त्यात्मनेपदम् । निश्वाताः च्छासहीनः वाह्यवादोः काष्टे ग्रहणं निश्वासः काष्टस्थतस्य वायोविहिनिःसारणसुच्छ्वा-सस्ताभ्यां होनश्रावतिष्ठत इत्यत्रापि संवस्यते स निश्चितं निःसदिग्धं सुक्त एव। जीवस्य-क्तरूपसुक्तं द्वात्रेयेण-'निर्गुणस्यानसंपन्नः समाधं च ततोऽभ्यसेत् । दिनहाद्वाकेनैव समाधि समवाप्त्रयात्॥ वासुं निरुष्य मेधावी जीवन्युक्ते अवद्धुवस्॥'इति ॥१९२॥

भाषाथँ-जो बोगी स्वस्थाज्वस्यामें जयाँत इंद्रिय और अंतःकरणको प्रसन्नता स्थित होकर जाग्रत अवस्थामेंभी देह और इंद्रियों के ध्यापारसे ग्रन्थ इसके समान और बाहिरकी वायुका देहों ग्रहणकर निःश्वास और देहमें फिरत वायुका वाहिर निकासनेकर उच्छास इन दोनोंसि रहित होकर निश्चल दिकारोंहे वह बोगी निश्चयसे ग्रुक्तही हैं और इसामेथने जीवन्युक्तका कर यह कहा है किं, निग्रंणके ध्यानमें संपन्न मनुष्य समाधिका अभ्यास करें फिर वारह निस्तिही समाधिको प्राप्त होता है और बारह हिन्सिही समाधिको प्राप्त होता है और बारह हिनसिही समाधिको स्वर्थन होता है और बारह होता है ॥

अनुम्यः सर्वेज्ञसाणासज्ञवयः सर्वेदेदिनाम् ॥ अम्राह्मा मंत्रमंत्राणां योगी द्वातः सन्तिपना ॥ ११३ ॥

व्यवस्य हित । समाधिना युक्तो योजी । सर्वेकस्याणामिति संबंधसामान्ये वृद्धी । सर्वेशस्वित्तरपर्थः । अवस्यो ह्रंद्वमधानम्य इत्यर्थः । सर्वेदहिनामित्यत्रापि सर्वंधमात्रविव । सर्वेशस्वित्तरपर्थः । अवस्यो ह्रंद्वमधानम्य इत्यर्थः । सर्वेदहिनामित्यत्रापि सर्वंधमात्रविव । सार्यं प्रिष्ठो । अश्च अस्यः सर्वंद्वाधामः बर्छन श्वन्यो न अवतित्यर्थः । अश्चरंत्राणां वर्षान्त्रत्यामान्याणीचान्यान्त्रत्यामान्यान्त्र योजनां विद्वा बहुवः समामाति । तिन्न्वस्णायं तज्ज्ञानस्यापित्रत्यान्तेष्वर्यः । स्वां प्राप्तेष्वर्यः । स्वांप्त्रस्वर्यः । स्वांप्त्रस्वरं प्राप्तेष्वर्यः । स्वांप्त्रस्वर्यः । स्वांप्तिः प्राप्तेष्वर्यः । स्वांपत्रस्वर्यः । स्वांपत्रस्वरं प्राप्तेष्वर्यः । स्वांपत्रस्वरं । स्वांपत्यस्वरं । स्वांपत्रस्वरं । स्वांपत्रस्वरं । स्वांपत्रस्वरं । स्वां

यत्नाखोभी निवर्तेषेत् ॥ ब्रह्मासंगि मनः कुवैन्दुपसंगैः प्रयुष्ट्यते ॥' इति । षद्मपुराणे— 'बेदेभिरंतरायेने क्षिप्यतेऽस्य दि मानसम् । तदाये तमवामीति परं ब्रह्मातिदुर्कमम् ॥' योगमास्करे—'सान्त्रिकों धृतिमार्कव्य योगी सच्चेन सुस्थिरः । निर्धुणं मनसा ध्याप-न्तुपसर्गैः प्रयुच्यते ॥ एवं योगमुपासीनः शक्कादिपदिनस्पृद्धः । सिद्धचादिवासनात्याभी जीवन्युक्तो भवेग्युनिः ॥ विश्वरस्य मिया नोक्ताः संति विद्या द्योनकक्षः । ध्यानेन विष्णवहरयोगोरणीया हि योगिना' इति ॥ ११२ ॥

भापार्थ-समाधिसे युक्त योगी संपूर्णशस्त्रोंसे वघ करनेके अयोग्य होता है और सब देहधारियोंको वज् आदि करनेमें अज्ञानय है और वशीकरण, मारण, उच्चाटन हैं फल जिनके ऐसे मंत्र यंत्रोंसिभी वर्शमें करने अयोग्य है इस प्रकारके, योगीको अनेकप्रका-रके जो वित्र होतेहैं उनको दिखातेहैं-दत्तात्रयने वहाहै कि, पहिछा वित्र आछस्य और इसरा पूर्तीकी सभा और तीसरा मंत्रसाधन और चौथा धातुबाद ये योगके ज्ञाताओंने वित्र कहे हैं और मार्कडेयपुराणमें ये विन्न कहे हैं कि, योगिकी आत्माम देखनेसे जो विन्न होतेहैं उनको में तेरे प्रति संक्षेपसे कहताहुँ तू उनको छन-कामनाके छिये कर्म और कामनाओंकी जो मतुष्य बोळा करताहे खी, दानका फल, विद्या, माया, ग्रुप्त और प्रकट धन, देव, और इन्द्र होना शीर रसायनरूप देहकी किया मेरू, यत्न, यज्ञ, जल और अब्रिमें प्रवेश, श्राद और शक्तिस दान, फल और नियम और उपनास वापीक्षपतडागादि पूर्त, देव और पितरींका पूजन, अतिथि थीर कर्म इनसे युक्त हुआ योगी जो उछ वांछा करताहै उसके योगमें विन्न प्रवृत्त हो .जाता है इससे योगी यत्नोंसे विवको निवक्त करें, ब्रह्ममें आसक्त मनको करताहुआ योगी विव्रोंसे हुट ताहै और पत्रपुराणमें लिखाँहै कि, जब इन विज्ञांसे जिस योगीके मनमें विक्षेप न हो वह व्यति दुर्छम उस परब्रह्मको प्राप्त होताहै योगमास्करमें हिस्सा है कि, सात्त्विकी धीरताको करके सत्त्वगुणसे भकीप्रकार स्थिर और मनसे निर्गुणका ध्यान करता हुआ योगी निर्ह्मोंसे अवश्य छुटताहै इस प्रकार योगका उपासक और इन्द्रकादिक पदकी इच्छासे रहित और सिद्धि आदिकोंकी वासनाका त्यागी मुनि जीवनमुक्त होताहै, विह्न अनेक प्रकारके हैं परन्तु विस्ता-रके मयसे यहां नहीं कहे हैं और वे सब विद्य विष्णु और ज्ञिवजीके ध्यानसे योगियोंको निवारण करने योग्य है ॥ ११३ ॥

यानम्नेन प्रविद्याति चरन्माहता भन्यमार्गे यानाईदुने अनति हडप्राणनातप्रवंधात् ॥ यानद्वचाने सहन्नसहशं नायते नेव तत्त्वं तान्वानं वत्ति तदिदं दंभमिष्याप्रछापः ॥ ३१४ ॥ इति श्रीसहनानंदसंतानर्धितामणिस्वारमारामयोगीद्वविराचितायां हठ-योगप्रदीपिकायां समाधिख्सणं नाम चसुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥ इति हटयोगप्रतीपिका समाप्ता ॥

वयोगिनां ज्ञानं निराक्तर्वन्योगिनामेव ज्ञानं मवतीत्याह-यावदिति ॥ मध्यमर्गि सुपुमायां चरन् गच्छन् मारुतः भाणवायुः यावत् यावत्कालपर्यतं न भावेजाति अवतः र्षेण त्रहारंअपर्यतं न विशति बहारंधं गतस्य स्वैर्घाद्वहारंधं गत्वा न स्थिरो भवती-र्त्यर्थः । सुषुम्रायामसंचरन् वायुरावेळ इत्युच्यते तहक्तममृतासळी-'वावळि मार्गतो वीयुनिश्वलो नैव मध्यमः । व्यसिद्धं तं विजानीयाद्वायं कर्मवशालगम् ॥ इति । प्राणयाते जीवयतीति प्राणः स चासो वातश्य प्राणवातः तस्य प्रवंधाःकुंमकेन रियरी-करणाद्धिंदुर्वीर्ये हदः स्थिरो न मवति प्राणवातस्यैयं विदुस्यैर्यमुक्तमन्त्रेव प्राक्तु । 'मनः स्येपं त्या वायस्ततो विद्रः स्थितं भवेत । इति । तद्भावे त्वसिद्धत्वं योगिनः । उक्तममृतासिङ्को-'ताबद्वद्वोऽप्यसिद्धोऽसो नरः सांसारिको मतः । याबद्ववति देहस्यो रसंद्रो ब्रह्मरूपकः ॥ असिद्धं तं विजानीयात्ररमब्रह्मचारिणम् । जरामरणसंकीणै सर्दे॰ हेरासमाश्रयम् ॥ इति । यावत्तवं चित्तं ध्याने ध्येयं चित्तं न सहजसदृशं स्वामा-विकथ्येयाकारवात्तेप्रवाही नेव जायते नेव भवति प्राणवातप्रवंधादिति देहलीदीपकन्या-येनात्रापि संबच्यते ।। बायुरवैर्ये चित्तस्वैर्धमुक्तममृतासद्भी-'यदासी श्रियते बायुर्म-घ्यमां मध्ययोगतः । तदा विंदुश्च चित्तं च ज्ञियते वायुना सह ॥ ' तदभविद्यासिद्ध-त्वमुक्तममृतिरही-'यानत्मस्यंदते चित्तं वाह्याभ्यंतस्वरहु । वासिहं तहिनानीयाः थित्तं कर्मग्रुणान्वितम् ॥' इति । तावद्यङ्कानं शान्दं वदति काश्चित् तार्विदं हान कर्यं दंममिथ्याप्रहापः दंभेन ज्ञानकथनेनाई होके पूज्यो भविष्यामीति विथ्या मिथ्याप्र-लापा मिथ्यामापणे दंमपूर्वकं मिथ्यामापणमित्यर्थः । प्राणार्वेद्वाचित्रानां जयामावे ज्ञानस्याभागात्संभृतिर्दुर्वारा । तदुक्तममृताप्तिदौ- वलन्वेष यदा बायुस्तदा विदुश्वलः रमृतः । बिंदुश्रलति यस्पांगे चित्तं तस्येव चंचलम् ॥ चले विदी चले वित्ते चले दायी च सर्वदा ॥ जायते ज्ञियते लोकः सत्यं सत्यमिदं वचः ॥' इति। योगवीजेऽः प्यक्तम्-'चिचं प्रनष्टं चादि भासते वै तत्र प्रतीती मरुतोऽपि नाशः । न वा यदि स्यान त्र तस्य शास्त्रं नात्मप्रतीतिर्ने ग्रुक्ते मोक्षः ॥' इति । एतेन प्राणविद्यमनतां जये त् ज्ञानद्वारा योगिनो सुक्तिः स्वादेवेति सुचितम् । तदुक्तममृतसिद्धौ-यामवस्यां वजेद्वासुः विदुस्तामधिगच्छति । यथाहि साध्यते वायुस्तया विदुमसाधनम् ॥ मृध्छितो हराते व्याधि वृद्धः खेचरतां नयेत् । सर्वसिद्धिकरो छीनो निश्वलो स्राक्तिदायकः ॥ यया-वस्या भवेदिद्दोश्चित्तावस्था तथा तथा ॥' नतु-'योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृष्णां श्रेयो-विधित्सया । ज्ञानं कर्म च माक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति क्रुत्रचित् ॥' इति मगबद्धकाः खयो मोक्षोपाचास्तेषु सत्सु कथं योग एव मोक्षोपायत्वेनोक्त इति चेन्न । तेषां योगांगेष्वंतमीवात् । तथाहि-'ञात्मा वा चरे द्रष्टव्यः श्रीतव्यो मंतव्यो निदिष्याः सितन्यः' इति श्रत्या परमप्रस्पार्थसाधनात्मसाक्षारकारहेत्रतया श्रवणमनननिदिध्या-

सनान्युक्तानि तत्र अवणमनने नियमांतर्गते स्वाध्यायेऽन्तर्भवतः । स्वाध्यायश्च मोक्ष-शास्त्राणामध्यपनम् । स च तात्पर्यार्थनित्रयपर्यवतायो ग्राह्मः । तात्पर्यार्थनिर्णयस श्रवणमननाभ्यां भवतंति श्रवणमननयोः स्वाच्याथेऽन्तर्मोदः । नियमदिवरणे याज्ञवः हरकेन-'सिद्धांतश्रवणं प्रोक्तं वेदान्तश्रवणं खुधैः' इति स्पष्टमेव श्रवणस्य नियमात-र्गतिरुक्ता-'अधीतवेदं सूत्रं वा पुराणं सेतिहासकम् । पदेष्वध्ययनं यश्च सदाभ्यासी जपः स्मृतः ॥' इति युक्तिमिरनवरतमनुर्वितनव्क्षणस्य सदाभ्यासक्पस्य मननस्यापि नियमांतर्गतिरुक्ता । विजातीयप्रत्ययनिरोधपूर्वकसजातीयप्रत्ययप्रवाहरूपस्य निदि॰ च्यासनस्य उक्तद्रक्षये द्यानेऽन्तर्मोदः । तस्यापि तत्परिपाद्मद्रपसमाधिनात्मसाक्षात्काः रद्वारा मोक्षदेतुत्वमीश्वरार्वणञ्जल्ञा निष्कामकर्मोनुषानलक्षणस्य कर्मयोगस्य 'दपः' स्राध्यायेश्वरमणिधानानि ऋियायोगः' इति पतंजल्यिमोक्ते नियमांतर्गते क्रियायोगेऽन्तर र्मोदः । तत्र तप उक्तमीन्बरगीतायाय्—'उपवासपराकादिकुच्छ्रचांद्रायणादिभिः । बरिरेखोपणं पाहुस्तापसास्तप उत्तमम् ॥' इति । स्वाध्यायेऽपंप तत्रोक्तः—विदान श्रतरुद्रेथप्रणवादिजवं बुधाः । सस्वश्राद्धकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते ॥ 'इति । ईश्वरमाणिधानं, च तत्रोक्तम्-'स्तुतिसमरणपूजामिर्वाङ्गनःकायकर्शभिः । सुनिश्चला मरेझिक्तिवदीश्वरपूजनम् ॥' इति । क्रियायोगश्च परंपरयाः समाधिनात्मसाक्षात्कारझः रेव मोक्षहेद्वाराति समाधिमावनार्थः । 'क्षेत्रवसृकराणार्थ्य' इत्युचरस्त्रोण स्पष्टीकृतं पर्तः जाळेना । भजते सेव्यते भगवदाकारमंतःकरणं क्रियतेऽनयोति भक्तिरिति करणब्यु-स्वत्या 'श्रवणं कोर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वेदनं दास्यं सरव्यमारमः निवेदनम् ॥ इति नवधाक्ता साधनमन्दिरमिधीयते । उस्या ईश्वरमणिधानरूपे नियगेऽ-न्तर्भावः । तस्याश्च समाधिः तुन्वं चोक्तं पर्तजातःना-'ईन्वरमणिधानाद्वा' इति । ईश्वरविन षयकात्र्याणधानाद्वतिविद्येषात्समाधिळामः समाधिफळं मववीति सत्रार्थः। मजनमंतरः करणस्य भगवदाकारतारूपं माक्तिरीते मारव्युत्पस्या फलभूता माक्तिरामिधीयते । सैव प्रेममाक्तिवृद्यते । तक्षक्षणमुक्तं नारायणतीर्थैः-'प्रेममाक्तियोगस्तु हैश्वरचरणाः रविदाचिषयकैकांतिकात्यविकप्रममशहोऽविच्छित्तः' इति । मधुखद्वस्यस्वतीभिस्छ-'द्रवीमावपूर्विका मनसो मगवदाकारतारूपा सविकल्पन्नाचिमीक्तः' इति । 'तस्यासतु अद्यामक्तिव्यानयोगादवेहिं इति अतेः । 'भक्तया मामभिजानाति ' इति स्फृतेश्च । व्यातमसाक्षातकारहारा मोक्षहेतुत्वम् । मक्तास्तु सुखस्येव पुरुषःर्थत्वादुदुःखासंमिन्ननिः रातिशयसुखताराक्त्या प्रेममक्तिरेव पुरुवाये इत्याहुः (तस्यास्त संगन्नातसमाधानंतमविः) वर्वं च अष्टांगयोगातिरिक्तं व्हिमपि परमपुरुषार्थसाधनं नास्तीति सिद्धम् ॥ ११४ ॥

त्राह्ममेष विद्ववां हितं यतो भाषणं समयदश्वेसंस्कृतम् । रक्ष गच्छति पयो न छेहितं हांत्र हत्यभिहितं विद्यारायेषा ॥ १ ॥ सदर्षयोतनकरी तमस्तोमविनाशिनी ॥ ब्रह्मानेदेन ज्योत्सेयं शिवांध्रियुगुलेऽर्विता ॥ २ ॥

इति श्रीहरुयोगप्रदीपिकाव्याख्याचां ब्रह्मानंदृष्ट्यतायां व्योत्साभिधायां समाधिनिक्षणं नाम चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥ यीकाग्रंयसंख्या ॥ २४५० ॥

भापार्थ-अब अयोगियोंको ज्ञानका निराकरण करतेहुए योगियोंकोही ज्ञानकी उत्पत्तिका वर्णन करते हैं कि, जनतक सुपुन्ताके मार्गमें वहताहुआ प्राणवायु ब्रह्मस्त्रमें प्रविष्ट होकर लिर नहीं होता, क्योंकि सुपुमानें नहीं वहते हुए प्राणवायुको भसिद्र कहतेहैं, सोई असृत-सिद्धिमें यहा कि, जनतक अपने गार्गसे वाय सुप्रनामें पात होकर निश्चल न हो-कर्मवसकी अनुपायी एस वायुको असिद्ध जाने और जीवनका आधारकाप जो प्राण । उसके हढववंन लर्थात् इंभक्ते दृढ करनेते जवतक विंदु (वीर्थ) स्थिर नहीं होताहै और प्राणवायुकी स्थिर-ताते विंदुकी स्थिरता इसी ग्रंथमें कह वायहैं कि, मनकी स्थिरतासे वायु ओर वायुकी स्थिर-तासे निंहकी रियरता होतीहें वह न होय तो योगी आसेड होताहै सोई अप्रतसिद्धिमें कहा है कि, तदतक बद्र और असिद्ध यह सांसारिक जन मानाह इतने रसेंद्र जो बहारूप है वह देहमें स्थित हो सर्थात सपने स्थानसे पतित होकर देहमें आनाय और प्रह्मपर्यसे हीन उस मनन्यको असिद्ध जाने और जरामरणसे युक्त और संपूर्ण हेड्गोंका आश्रय होताहै और जब-तक चित्तक्रप तत्त्वयानमें ध्येय चित्त नहीं होताहै अर्थात सामानिक ध्येयाकार जी द्वाति-योंका प्रवाह उससे सहज सददा प्राणके वंघनसे नहीं होताहै जीर वायुकी स्थिरतासे वित्तकी स्पिरता अनुतसिद्धिमें कही है कि, जब यह बायु सुचुम्नाके योगसे प्रविष्ट होजाताहै तब विंडु थीर चित्त ये दोनों वायुके संग होकर गरजातेहें और इसके अनावमें, असिद्धतामी अमृतासी-द्विमें पहीं है कि, इतने वाह्य कीर भीतरकी वस्तुमें चित्तका स्पंदन (बेप्टा) होताहै, कर्मकें गुणोंसे युक्त उस चित्तको अभिद्र जाने तवतक सो यह ज्ञान दंगिभध्या प्रकाप होताहै अर्थाव में जगतमं पूच्य हूंगा इस पतार द्रमपूर्वक ज्ञानके कथनसे शुद्धिसे मिय्यामापणही होताहै क्योंकि प्राण, बिन्टु, बिक्त इनके जयके अभावसे ज्ञानका अभाव होताहै और उससे जन्ममर-णरूप संसारकी निश्चति नहीं होसकतीहै सोई अप्रतासिद्धिमें कहा है कि, जब यह प्राणवायु चठताहै तब बिहुभी चल कहाहै और जिसके अवमें बिहु चंचल है उसका कित्तभी चंचल होताहै और बिंह, चित्त, वासु इन तीनींके चंचल होनेपर संपूर्ण जगत उत्पन्न होताहै और मरताहै, यह बचन सत्य है योगबीजमेंभी कहा है कि, यदि चित्त नष्ट हुआ भासे तो वहां वायुकाभी नाइ। प्रतीतं होताहै यदि चित्त वायुका नाइ। न होय तो उसको शाखका ज्ञान और आत्माकी प्रतीति और गुरु सीर मोक्ष ये नहीं होतेहें-इससे यह स्वित किया कि-प्राण, वंदु, मन इन तीनोंके जयमें ज्ञानके द्वारा योगीकी सुक्ति होही जाती है-सोई अप्रतासिद्धिमें कहा है कि, जिस अवस्थाको वायु प्राप्त होताहै उसी अवस्थाको विदुमी प्राप्त होजाताहै और निस प्रकार वायु साध्य किया नाताहै उसी प्रकारते बिंदु साध्य किया जाताहै और मुन्डिक इमा वायु व्याधियोंको हस्ताहै भीर वंधन किया वायु आकाशगतिको वेताहै भीर छयको

शात हुआ निश्चल वायु संपूर्ण सिद्धियोंको करताहै और मुक्तिको देताहै और जैसी जैसी अव-स्या बिंहुकी होती है तैसी २ ही अवस्या चित्तकी होती है कदाचित कोई शंका करे कि मतुष्योंके कल्याण करनेकी इच्छासे ज्ञान कर्म मक्ति ये तीन योग मेंने कहेहें अन्य कोई **उपाय किसी शास्त्रमें भी नहीं है इस मगवानके वाक्यसे तीन** मोक्षके उपाय हैं तो योगही मोक्षका उपाय कैसे कहा सो ठीक नहीं, क्योंकि उनका योगके अंगोंमें अंतर्भाव है-सोई दिखातेहैं कि, आत्मा-देखने, सुनने, मानने, निदिव्यासन करने योग्य है । इस श्रुतिसे परम प्रस्वार्थका साधन जो आत्माका साक्षात्कार है उसके हेत अवण, मनन, निविध्यासन कहे हैं, उन तीनोंमें अवण मनन ये दोनों नियमके अंतर्गत् होनेसे स्वाध्याय (पठन) में अंतर्गत होतेहैं और मोक्षशास्त्रके अध्ययनको खाध्याय कहतेहैं और वह अध्ययनभी तात्पर्यार्थके निश्चय पर्यंत हेना वह तात्पर्यार्थके निर्णयका अवण मननसे होताहै इससे अवण मननका स्वाच्यायमें . संतर्भाव है-और नियमोंके विवरणमें याजवल्क्यने कहा है कि, बुद्धिमानः मनुष्यांने वैद्तिका अवण सिद्धांतश्रवण कहाहे इससे स्पष्टही श्रवणका नियममें अंतर्भाव कहाहे-और जिसने वेद पढ़ा हो, सत्र वा पुराण वा इतिहास पढ़े हीं इनके अध्ययन और उत्तम अभ्यासको जप कहतेहैं इस यक्तिसे निरंतर अतिचितन है लक्षण जिसका ऐसा को उत्तम अभ्यास रूप मनन हैं उसकाभी नियममें अन्तर्भाव कहाँहै-और विजातीय प्रतीतिके निरोधपूर्वक सनातीय प्रत्य-यका प्रवाहरूप जो निद्विष्यासन है उसकांभी पूर्वोक्त ध्यानमें अन्तर्माव है, क्योंकि वहमी तिसके परिपाकरूप समाधिसे आत्मसाक्षात्कारके द्वारा मोक्षका हेत है-और ईश्वरार्पण शुद्धिसे निष्काम कर्मका अनुष्टानरूप नो कर्मयोग है उसका नियमके अंतर्गत इस पतंजिंछके कहेद्वए क्रियायोगमें अंतर्भाव है कि, तप, स्वाच्याय, ईश्वरका प्रणिधान (स्नरण) इनकी कियायोग कहतेहैं और वे तीनों ईश्वरगीतामें इन वचनोंसे कहे हैं कि, उपनास पराक और क्रुन्यदायण आदि वत इनसे जो रारीरका शोपण वहीं तपरिवयोंने उत्तम तप कहा है और सनुष्योंके शंतः भरणकी शुद्धिका कर्ता जो वेदान्त, शतस्द्रीय प्रणव आदिका जप है वहीं बुद्धिमार् मनुष्योंने खाध्याय कहाँहै और स्तृति, स्मरण, पूजा इनसे और वाणी मन काया कर्म इनसे जो भर्लीप्रकार निश्रन्छ मक्ति वही ईश्वरप्रजन कहाताहै और क्रियायोग परंपरासे समा-विसे आत्मसाक्षात्कारके दाराही मोक्षका हेत[.] होनेसे समाधिकी भावनाके लिये और छेशोंकी टूर करनेके लिये है यह बात उत्तरसूत्रसे पतनलिने स्पष्ट की है निससे अंतःकरण भगवानके आकार होजाय उसे मक्ति कहतेहैं, इस कारण व्युत्पत्तिसे वह नौ ९ प्रकारकी साधनमक्ति कही वह इस श्लोकमें वर्णन की है कि विष्णुका श्रवण कीर्तन, रमरण, पादसेवन, अर्चन, वदन, दासता, मित्रता और आत्माका निवेदन, यह नौ प्रकारकी मिक्क होतीहै और उस भक्तिका **ई**श्वरके प्रणिषानरूप नियममें अंतर्माव है और उसे मक्तिकी हेतता समाधिमें पतंजिंछने इस सूत्रसे कहीं है कि, ईश्वरविषयक जो भक्तिविदेशपरूप प्रणिधान उससे समाधिका लाभ (फल) होताहे और अंतःकरणका मगवदाकारतारूप जो मजन उसे भक्ति कहतेहैं. इस भात्रव्युत्प-तिसे तो फळ्सूत मिक्त कही है उसकोही प्रेममिक कहतेहैं उसका ळक्षण नारायणतीयाने यह कहाहै कि ईश्वरके चरणारविदमें जो एकाग्रतासे निखिच्छन अत्यंत प्रेमका प्रवाह उसकी प्रेम भिक्त कहते हैं और मधुसुद्तसारखितयोंने तो भिक्तम यह छक्षण कहा है कि, इत होकर भनकी जो भगवदाकारूप सविकल्याति उसको भिक्त कहते हैं यह भी आत्मसाक्षात्कारके हारा भोद्दाका हैत है क्योंकि इन श्रुति और स्तित्योंसे यह दिखा है कि अवहा, भिक्त, ध्यान-योगसे भारत्मको जानो ओर भोक्तस हो जानताह और मक तो यह कहते हैं, कि, सुखही पुरुषोर्थ है इसी सुरुषोर्थ है उस भिक्तम है स्ति एक्पोर्थ है उस भिक्तम समाधिमें अत्तर्भाव है -इसे यह सिद्ध भया, कि अद्याग्योगसे मित्र परमा प्रकार कोई भी साथन वहीं है भावार्थ यह है कि, इतने मानन करते हुए साणवास सुख-माने साथने माने स्वार्थ यह है कि, इतने मानन करते हुए साणवास सुख-माने साथने माने साथन यह है वितर पर हो जीर हतने चिक्त ध्यानके विवर ध्यानके विवर स्वार्थ सुख-

इति. ओस्तात्मारामयोगीन्द्रनिरिष्दायां हुउम्डोपिकायां श्रीकृतपण्डित-रामरक्षाद्वनदांख्यामनिवासिषण्डेत-मिहिरचंद्रकृतमापाविद्यत्तिसहितायां समाधिल्यणं नाम चतुर्योपदेशः समाधिमगात् ॥ आरस्त ।



पुस्तक भिल्नेका डिकाना-

गंगारिष्णु श्रीकृष्णदासः, '' छक्षीरेंकटेश्स'' स्टीस श्रेसः, कल्याण-सुंबई. खेमराच श्रीङ्गण्यातः '' श्रीङेंकटेश्वर'' स्टीम् भेसः स्तत्वाडी—धुंबहः

जाहिरात.

				नाम		कि० रुज्या
Ģ	विक्मीता—भ	ाषा टी कासाहित	। श्रीमद्रा	ा वतान्तर्गत	श्रीभगवान	कींप
	छदेवजीने व	भपनी माता	वहतिको	संपूर्ण ज्ञान	ोपदेश किय	夏 0-9
ग		नाषाटीका सहि त				
		से वर्णित है-	***			0-90
ਬੇ	(ण्डसंहिना-र	मायाटीकासा हित	। इसमें	अष्टाङ्गयोग	ार्णन मछीमं	ॉिंत
	ल्लिगया	į	PT 600	• ••••	****	0-20
पु	उ झल्योगदर्	नि-अत्युत्तम	मापाटीका	समेत । इस	में अंशङ्कयो	1 1-
	निखपण वर्	इतही सरल अ	र सुगम वि	व्यायया है.	••••	9-0
स	क्तेसम्यादे (१७) प्रन्य	-श्रीस्वामी	चरणदासर्ज	ोकृत । जि	समें
	ब्रज्यरित्र, (वमरलोक, धूर्म	जहाज, श्री	मप्टाङ्गयोग,	षद्कर्महरुयो	ग,
	योजसन्देहस	गर, ज्ञानस्वरो	र्यः, पश्चउप	निषदु, द्वित	यि सर्वोपानिष	ाहू
	छतीय तस्वर	रोगोपनिषद, च	तुर्थ, योगाः	ग्र कोपानिप द्	तेजविंशतो	7-
	निषद, यक्ति	पदार्थ, मनवि	कृतकरण,	श्रीत्रह्मज्ञानस	तामर, शब्दव	र्फ
		गर ये हैं ग्लेक	•	****	****	···· ₹-0
	³⁰ तथा रफ		****		****	··· ?-c
योग	तिस्वमकाश-	भाषामें बत्युत्त	म योगमार्ग	विंगत है।	4000	0-2
योग	माधेत्रक शिव	п−अर्थात् यो	गरहस्य भाष	विकासहित	****	0-97
योग	वित्-भाषाटी	कासमेत•	4400	****	****	o-8
योग	क्लपहुम ् मा	पाटीका सहित	Acce	****	****	3-0
याग	समाचारसंत्रह	-डॉक्टर गोवि	न्द्रमसाद् ।	रार्गवनिर्मित	। इसमें राज	
4	सम, इठयाम	, स्वराद्यसार,	स्वास्थ्यरक्ष	के सम्पर्ण	नियम, ब्रह्म	•
333	स्तलाधन व	धिसहित उक्त	समी विषय	g. 1	*****	?-0
वशा	^{५क्} दश्न−(कणादसुनिप्रणी	त) सथा ।	गपाटीकासाँ	हेत	*** 30
સુવ	अहता-मावा	टीकासहित ।	समं शिवर्ज	से कहाहुवा	ा, योगोपदेश	
3	लिहान, हर्ट्य	गिकिया तथा	राजयोगाः	का नाम है		_
स्रद	क्राइय-भाष	विकासहित ।	इसमं स्वरी	का और :	हरा, पिंगला	•
2	જિન્લા નાહિ	पास प्रश्नादि उ	ीर राजयोह	रक्षा ।	प्राणायामादि	
4	चतत्त्वाक जा धरिक्षपणं=र्स	ननका विधि म	क्षेत्रकार वर्ष	गवहै-	4000	0-20
V. V.	द्धश्वश्वभूण≂स	P56				• • •

	14.	4-414
सर्वदर्शनसंत्रह-श्रीउद्यनारायणसिंहकृत मापाटीकासहित । इस		
अन्यमें कमसे १ चार्वाकदर्शन, २ वीद्धदर्शन, २ वाहतदर्शन, ४		
रामाञ्चनदर्शन, ५ पूर्णप्रज्ञदर्शन वा वेदान्तदर्शन, ६ नक्लीकापाक,		
पतदर्शन, ७ शहदर्शन, ८ प्रत्यभिज्ञानदर्शन, ९ रसेश्वरदर्शन, १०		
औल्रुक्यदर्शन, ११ अक्षपाददर्शन, १२ जैमिनिदर्शन, १३ पाणि-		
निदर्शन, १४ सांख्यदर्शन, १५ पातंजलदर्शनमत यानं सम्पदा-		
यसिद्धान्तींका पूर्णतासे वर्णन है		. 2 - 0
सर्वेशिरोमणिसिद्धान्तसार-भाषा-अलबरनिवासी योगमार्गीनेषुण श्री-	***	4-0
स्वामी आवन्दमङ्गळजीका अनुभव १२ वारह मदाज्ञींमें		
बणित है। जितमें चोगमार्ग, कर्ममार्ग, छहों शाख, वैद्यक, कर्म-		
काण्ड, ज्योतिप, मन्त्रशस्त्र इत्यादि १५ विवर्योमें ज्ञीसमाधान		
पूर्वेश तिद्धान्त भलोगाँति लिलागयाँहै		
सहजप्रशास्त्रभी सरणदासवीकी वहिन सहजावाहकृत		3-0
सांक्यदरीन-भाषाटीकासमेत । (भगवान् कपिलदेवजीकृत)		0-E
		8-6
स्वरोद्यसार-चरणदासकृतः		115-0
स्वरदर्षेण राटीक-मापामें स्वरपर प्रश्न वर्णित है		5-0
ज्ञानस्वरोदय -व रणदासजीकृत• ··· ··· ···	4649	0-85
योगवासिष्ट वडा-मापा-छः प्रकरणोंमें श्रीग्रुरु वसिष्ठजी और		
श्रीरामचन्द्रजीका संवादोक्त अपूर्वे ग्रन्थेह (खुलापत्रा	****	13-0
योमवासिष्ट वडा-भाषा छः मकाणांमें उपरोक्त,सर्वाह्नेकारोंसे युक्त २ जि	ल्डों	186-0
योगवानिष्ट-मापामें वैराग्य श्रीर सुमुक्षुप्रकरण'वडा श्रक्षर रहेज कागज	4000	8_¥
योगनानिष्ठ-भाषामं वैराग्य और मुमुक्कुमकरण छोटा गुटका पाकिट	••••	
	****	0-6
योगवासिष्ट-सार-संपूर्ण योगवासिष्ठका सार भाषामें वर्णित है उद्धेज	4000	₹-€
तथा रफ	-	5-0
विष्पुतागर-सटीक स्वामी निश्रवदासजी कृत'सर्वेत्तम संब्राह्य हैं	9100	7-0
वेचारतागर्-तटेक-शिताम्बरदासकृत नापाटोकासाहेत	0 504	4-0.
रेचारचन्द्रोद्य-सटोक-स्वामी श्रोगोवेन्द्दास कृत सरल आपाटीकासाहर	ī.	8-0
क्रियाचारमा - प्रतिस्तात चेठ पीता स्वासायकन सामसी प्रेमी श्रीकार्योक		

की. रु.खा. विज्ञानगीता-काविवर श्रीकेशवदासकृत अपूर्व वेदान्त है 58-0 वृत्तिप्रशाकर-स्शामिश्रीनिश्चलदासजीकृत पट्याखके मतसे भलीपकार वेदान्त मत पतिपादन किया है श्रुतिसिद्धान्तरत्नाकर-अर्थात् दैवदिववेदान्तका सार भाषामं अनेकानेक श्वतिस्मृतिकी दिप्प-णियोंसे विमृपित है सन्तप्रमान-साध् श्रीमाणिकदासजीकृत । यह ग्रन्य सत्सं-गादि विषयमें अद्वितीय है अवस्य संप्रह कविसे सन्तोषञ्चरतरु-साध् श्रीमाणिकदासजी कृत । इस प्रन्यके पढनेसे डाकिनीरूप तच्याका व्यवस्य नाश होताहै. स्वरूपानसन्धान-वेदान्तियोंको अवश्य देखने तथा हेने योग्य है. सारुक्तावली-भाषा हरदयाङकृत• स्वानुभवप्रकाश-इनुमद्वचासविराचितः स्र-दरविलास−(ज्ञानसमुद्र ज्ञानाविलास सुन्दराष्ट्रकादि• साहित) संटिप्पण आहिसे अन्ततक पटनस अवस्य ब्रह्मविचार होगा उलेज कागज.

पुस्तकें मिछनेका ठिकाना— गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णद्वास, '' छहमीवेंकटेश्वर '' छापाखाना, क्रल्याण—पुंबई.